शिक्षा मनोविज्ञान
की
नई रूपरेखा

(Educational Psychology)

A New Concept

(B.T., B.Ed, L.T., M.Ed, तथा M.A. (Psychology))

के विद्यार्थियों के लिये

डी० एस० रावत

एम० एस० सी, एल० टी०, एम० ए०

एडूकेशन (बर्मिंघम)

बी० आर० कालेज आफ एडूकेशन

आगरा

विनोद पुस्तक मन्दिर

हॉस्पिटल रोड, आगरा

To my wife

प्राक्कथन

शिक्षा मनोविज्ञान पर अंग्रेजी भाषा में अनेकों पुस्तकें उपलब्ध हैं परन्तु हिन्दी भाषा में इसका अभाव है। कुछ लेखकों ने हिन्दी में मनोविज्ञान की पुस्तकों को लिखा है और उनमें अपने विचारों को प्रकट करने का प्रयास भी किया है। लेखक उनके कार्यों की सराहना करता है।

प्रस्तुत प्रस्तक को लिखने में लेखक ने एक नई रूप रेखा को अपनाया है। जो भी विषय शिक्षा से सम्बन्धित होता है वह अवश्य ही शिक्षा के उद्देश्य पर आधारित होता है। शिक्षा मनोविज्ञान पर विचार करने के पूर्व हमें शिक्षा का उद्देश्य निर्धारित करना आवश्यक है। इस पुस्तक में आरम्भ ही में कहा गया है कि शिक्षा का उद्देश्य बालक के व्यक्तित्व का पूर्णरूपेण विकास करना है। बालक के मानसिक विकास के अन्तर्गत सबसे प्रमुख चीज है सीखना। सीखने के अनेकों मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त हैं, सीखने में रुचि और अवधान की आवश्यकता होती है, सीखना स्मृति, संवेग, बुद्धि, निर्देश, अनुकरण आदि पर भी निर्भर करता है। यदि इस प्रकार देखा जाय तो सीखने के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर शिक्षा मनोविज्ञान की पूर्ण पुस्तक आधारित रहती है। लेखक ने इस छोटी सी पुस्तक में सीखने के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को आधार मानकर ही इस पुस्तक को लिखने का प्रयास किया है और इसीलिये पुस्तक का नाम 'शिक्षा मनोविज्ञान की नई रूप रेखा' रखा है।

इस पुस्तक में लेखक ने अपने पूज्य गुरु Dr. E. A. Peel, Head of the Education Department, Birmingham University, से प्रभावित होकर उनकी अनेकों पुस्तकों से निःसंकोच सहायता ली है। अन्य विद्वानों जैसे–वाटसन, हल, पैभलभ, कॉफका और कोहलर आदि की पुस्तकों की झलक भी इस पुस्तक में स्पष्ट है। इतना अवश्य है कि लेखक ने इस पुस्तक में मनोविज्ञान के कठिन से कठिन सिद्धान्तों को सरल रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। आशा है कि प्रशिक्षण महाविद्यालयों के छात्र तथा वे छात्र जो शिक्षा मनोविज्ञान के प्रेमी हैं इस पुस्तक से लाभान्वित होंगे।

लेखक उक्त लिखित विद्वानों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करके उऋण नहीं हो सकता। पुस्तक की भाषा सम्बन्धी कठिनाइयों को सुलझाने के लिये श्री० डी० बी० सिंह, एम. ए., एल. टी, एसिसटैन्ट प्रोफेसर, बी. आर. कालेज आॅफ एडूकेशन, आगरा, ने जो सहयोग दिया उसके लिये लेखक आभार प्रकट करता है।

पुस्तक के इस रूप में प्रकाशन तथा छपाई में सहयोग के लिये प्रकाशक तथा प्रेस के अध्यक्ष को लेखक हृदय से धन्यवाद देता है।

बी० आर० कालेज
आफ एडूकेशन,
आगरा
३० मई १९६०

डी० एस० रावत

विषय सूची

अध्याय १

प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा में मनोविज्ञान का स्थान :—

आधुनिक विचारधारा के अनुसार शिक्षक को केवल शिक्षक ही नहीं अपितु एक मनोवैज्ञानिक भी होना चाहिए। यदि इस कथन में जरा भी सत्यता है तो शिक्षा में मनोविज्ञान का एक निश्चित एवं महत्वपूर्ण स्थान है। अब प्रश्न यह है कि मनोविज्ञान के बिना शिक्षा का विकास संभव क्यों नहीं है? इस प्रश्न को समझने के लिए हमें शिक्षा का वास्तविक अर्थ समझना होगा। डा० पील के शब्दों में, "The purpose of education is to promote the development of a well integrated person, capable of exercising such responsibility in society as his powers allow."[१]

इस कथन को संक्षेप में कहा जा सकता है कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तिगत उन्नति के लिए मार्ग प्रस्तुत करना है। अंग्रेजी में इसे इस तरह भी कहा जा सकता है : 'The purpose of education is the nurture of personal growth'.

जीवित (living) और निर्जीव (non living) दोनों में ही विकास

१. Peel, E. A.: 'Psychological Basis of Education'; Oliver and Boyd. London, 1956 Page, 4.

(growth) होता है परन्तु निर्जीव वस्तु का विकास जीवित वस्तु से सर्वथा भिन्न होता है। जीवित वस्तु का मूल्य उसकी विकास की प्रत्येक अवस्था में विद्यमान रहता है जबकि निर्जीव के उत्पादन (manufacture) में वस्तु की अन्तिम रूप के अतिरिक्त विकास की भिन्न भिन्न अवस्थाओं का कोई मूल्य नहीं होता। दूसरे शब्दोंमें, उत्पादन एक उद्देश्य विशेष को प्राप्त करने का साधन मात्र है जबकि विकास एक स्वयं उद्देश्य है। यदि मानव जीवन अमूल्य है तो उसका मूल्य बीस अथवा किसी निश्चित अवस्था के बाद न होकर प्रत्येक अवस्था में है। यदि परिवार में किसी सदस्य की असामयिक मृत्यु हो जाती है तो उसकी अल्पायु एवं सीमित कारनामों का अपना मूल्य है जिनकी पूर्ति अन्य से नहीं हो सकती। यही नहीं, विकास का नियम प्रत्येक अवस्था की पूर्ति चाहता है केवल अपने लिए न कि अन्तिम वस्तु की तैयारी के रूप में। वस्तुतः यह कहना बड़ा मुश्किल होगा कि अमुक अवस्था के बाद कार्य बिल्कुल पूरा हो गया और अब करने को कुछ शेष नहीं रह जाता। शिक्षा का यह पहला सिद्धान्त है और प्रत्येक शिक्षक का यह कर्तव्य है कि वह बढ़ते हुये व्यक्ति को उसकी प्रगति की प्रत्येक अवस्था में अपना पूर्ण विकास करने के योग्य बनाये। भविष्य की सबसे अच्छी तैयारी वर्तमान की चुनौती को पूर्ण रूप से स्वीकार करना है। सर् जान ऐडम्स के शब्दों में "Childhood has a meaning and a value in itself apart from its value as a step on the way to maturity. The better the child ; that is the truer he is to his child nature as such, the better man will be make when the proper time comes."[१]

एडम्स का संकेत है कि शिक्षक बचपन एवं बच्चे के विकास में पूर्ण रूप से रुचि ले। विकास से तात्पर्य है, मानसिक (mental) एवं संवेगात्मक विकास विशेषतया, बचपन और किशोराबस्था में—सीखना (learning) और वैयक्तिक (Personal) पूर्णता। इसके अतिरिक्त प्रत्यक्षीकरण (Perception), उत्साह (motivation) विकास के अन्तर्गत आते हैं। इसलिए शिक्षक को इन विषयों का पूरा पूरा ज्ञान होना चाहिए।

हमारे विवेचन में एक और शब्द आता है, 'वैयक्तिक'। शिक्षा के क्षेत्र में हम विकास, जो सर्वथा उत्पादन से भिन्न है, का ही विचार नहीं करते परन्तु हमारा तात्पर्य है किसी विशेष स्तर का विकास। 'विकास' शब्द के प्रयोग से हमारा मतलब है विवेकयुक्त (Rational) और नैतिक स्तर (moral level)

१. Adams, J. : The Evolution of Educational theory ; Page, 63.

से न कि पशुओं के मूलप्रवृत्त्यात्मक (Instinctive) स्तर से। 'वैयक्तिक' के अन्तर्गत व्यक्तित्व (individuality) और समुदाय (community) दोनों ही आते हैं। व्यक्तित्व इसलिए कि हम पशुओं के झुंड अथवा असभ्य जातियों के लोगों को व्यक्तित्व का चोला नहीं पहना सकते। उदाहरणार्थ, पक्षियों के झुंड जो एक जगह इकट्ठा हो जाता है हम नहीं कह सकते कि उनका यह कार्य एक बुद्धिमान और जिम्मेदार व्यक्ति के निर्णय जैसा है। व्यक्तिगत जिम्मेदारी का अभिप्राय बहुधा सर् परसी नन् (Percy Nunn) के कथन में सर्वथा स्पष्ट हो जाता है—

"Nothing good enters into the human world except in and through the free activities of individual men and women."[1]

व्यक्तिगत का सम्बन्ध समुदाय से भी है क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपनी उन्नति समाज से दूर, एकान्त में नहीं कर सकता। व्यक्तित्व का विकास भी समुदाय अथवा समाज में ही सम्भव है। व्यक्ति के महान कार्यों—नैतिक-चरित्र का अस्तित्व भी समाज में है—अन्य कहीं नहीं।

शिक्षक का कार्य बच्चे को समाज का जिम्मेदार सदस्य बनाना है। उसको व्यक्ति और समाज,समाज के अन्य छोटे छोटे अंगों विशेषतयः परिवार, पाठशाला जिनका वह स्वयं सदस्य है, का ज्ञान होना परमावश्यक है। उसे यह भी जानने की आवश्यकता होगी कि values and attitudes (अभिवृतियाँ) कैसे बनते हैं और किस प्रकार से व्यक्ति सामाजिक मूल्यों (values) और व्यवहार में प्रवेश करता है।

हमारी परिभाषा का तीसरा शब्द 'Nurture' है। वैयक्तिक विकास न तो विवशता और न उदासीनता की दशाओं में फलता फूलता है। शिक्षक का एक माली की भाँति, कर्तव्य है कि बच्चे के सही विकास के लिए अच्छे से अच्छे शुभ अवसरों को प्रदान करना। विकास उचित, असाधारण (abnormal) और मन्द (retarded) हो सकता है। शिक्षक को समन्वय व्यक्ति उत्पन्न करना है। अतः उसे व्यक्तित्व का मनोविज्ञान भी जानना होगा।

इस बात को हमें स्मरण करना होगा कि जीव अपना विकास स्वयं करता है। कोई आदमी न तो किसी के लिये विकास कर सकता है और न दूसरे के लिये सीख ही सकता है। वातावरण और वंश परम्परा के अनुसार

१. Nunn, T. P. : 'Education, its data and First principles'; Edward Arnold and co, London, 1949.

व्यक्तियों की निधि (endowments) में भिन्नता होती है। व्यक्ति अपने सामर्थ्य व निधि के अनुसार ही अपना विकास करता है। फिर भी पूर्ण विकास के लिए समय समय पर उसे सहायता की आवश्यकता होती है। भिन्न २ व्यक्तियों को भिन्न २ प्रकार की सहायता की आवश्यकता होती है। अतः व्यक्तियों के बौद्धिक व स्वभाव (temperament) सम्बन्धी अन्तर का भी अध्ययन करना आवश्यक है। हमें बच्चों की रुचि, अभिरुचि (aptitude) और योग्यता (attainments) से भी परिचित होना चाहिये ताकि हम उनके सही विकास के लिये सहायक हो सकें।

अब हमें विश्वास हो जाना चाहिए कि बच्चे के सही विकास के लिए शिक्षक को मनोविज्ञान की सहायता लेनी होगी। मनोविज्ञान की परिसीमाओं के बावजूद भी यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आधुनिक मनोविज्ञान का शिक्षा के क्षेत्र में महान योग है। यह भी प्रश्न उठता है कि मनोविज्ञान द्वारा अर्पित ज्ञान को समझने के लिए शिक्षक के पास पर्याप्त समय कहाँ है ? बहुत से ज्ञान को पाठ्य पुस्तकों व (Refresher course) द्वारा उपलब्ध करना होगा परन्तु इस सम्बन्ध में एक उद्धरण आवश्यक है :—

"No text book, or indeed any book whatever can take place of personal observation, as an important part of every teacher's work is the systematic study of children, both as individuals and groups...........

All that psychologist can do for us teachers, and indeed it is an enoromous debt we owe them, is to suggest wise lines of thinking about children and so help us to understand them."[१]

बच्चों को व्यक्तिगत् और सामूहिक दोनों ही दृष्टियों से क्रम बद्ध अध्ययन करने के लिए व्यक्तिगत् निरीक्षण के समान अन्य कोई भी पुस्तक सहायक नहीं हो सकती। मनोवैज्ञानिकों ने हमारी बच्चों को समझने व उनके सम्बन्ध में सही सही विचार करने के ढंग को बताया जिसके लिए हम उनके प्रति हृदय से से आभारी व ऋणी है और रहेंगे।

१. Nancy Catty : 'The Theory and Practice of Education'; Methuer, ed. 1954, p. XI.

अध्याय २

सीखना (Learning)

सीखने का अर्थ :—

व्यक्ति के वातावरण का परिवर्तन उसके व्यवहार में भी परिवर्तन ले आता है और इसी को सीखना कहते हैं। वातावरण भौतिक (Physical), सामाजिक (Social) अथवा घनिष्ठ वैयक्तिक सम्बन्धों वाला (interpersonal relationships) हो सकता है। सीखने में ये विभिन्न वातावरणों का अपना महत्व है। इन वातावरणों के उदाहरण असंख्य हैं।

बच्चा गर्म चीज़ को छूकर दुख का अनुभव करता है। यह भौतिक वातावरण के परिवर्तन का उदाहरण है और इसके द्वारा उसके व्यवहार में परिवर्तन आता है कि गर्म चीज़ों को भविष्य में न छुयेगा। हम कहते हैं बच्चा यह सीख गया है कि गर्म चीज़ों को नहीं छूना चाहिये।

बच्चा एक सामाजिक प्राणी है और सामाजिक वातावरण में ही रहता है। वह अपने मित्रों के साथ खेलता है। कभी वह अपने मित्रों में प्रशंसा का पात्र बनता है और कभी-कभी उसके कार्यों की अवहेलना भी की जाती है। बच्चा उसी के अनुसार अपने व्यवहार में परिवर्तन लाता रहता है और नई-नई बातें सीखता रहता है।

घनिष्ठ वैयक्तिक सम्बन्धों (Interpersonal relationship) का भी वाता-
वरण होता है। बच्चे और माँ, शिक्षक और शिष्य के सम्बन्धों से हमारा
तात्पर्य्य है। बच्चा माँ बाप और शिक्षक के आदर्शों, विश्वास, विचारों में परि-
वर्तन के साथ-साथ अपने अनुभवों और व्यवहारों में भी परिवर्तन करता रहता
है। पिता यदि अहिंसा के सिद्धान्त पर विश्वास करते हैं तो बच्चे से आशा की
जाती है कि वह भी इसी सिद्धान्त को मानने वाला होगा। माता पिता के
आदर्शों का बच्चे पर भी प्रभाव पड़ता है और वह उन्हीं आदर्शों को
सीखता है।

सीखने के मनोविज्ञान की आवश्यकता

(The need for the psychology of learning)

शिक्षा के उद्देश्य के सम्बन्ध में पिछले अध्याय में विषद् विवेचना की जा
चुकी है। उसी को दूसरे शब्दों में यहाँ वर्णन किया जा रहा है। व्यक्तिगत
विकास को बढ़ावा देना ही शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है। व्यक्तिगत विकास न
तो विवशता (compulsion) की और न उपेक्षा (neglect) की दशाओं में
होता है। शिक्षक का उद्देश्य एक माली की भाँति सही विकास के लिए शुभ
अवसरों को प्रदान करना है। विकास तो प्राणी स्वयं करता है। कोई व्यक्ति
न तो दूसरे के लिए विकास कर सकता है और न उसके लिए सीख ही सकता
है। परन्तु विकास और सीखने दोनों के लिए सहायता की आवश्यकता होती
है और तभी विकास पूर्ण रूप से हो सकता है। जितनी ही दीर्घायु होगी उतनी
ही बढ़ने और सीखने की सहायता की आवश्यकता भी होगी। सब प्राणियों में
मनुष्य के बच्चे का बचपन सबसे बड़ा, सबसे असहाय और सबसे अधिक
आवश्यकतापूर्ण होता है। उसका विकास मानसिक, आध्यात्मिक और शारीरिक
सहायता पर ही निर्भर रहता है। शिक्षक को क्या करना है और क्या नहीं
करना है दोनों ही बातों का जानना आवश्यक है। उसे बच्चे की सहायता की
मांग का स्वागत करना चाहिए। इसलिये बच्चे के मानसिक विकास में सही-
सही योग देने के लिए उसे सीखने के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों से परिचित होना
आवश्यक है। यहाँ पर स्मरण करा देने की आवश्यकता है कि सही सीखना
(right learning) भी सम्भव है और गलत सीखना (wrong learning) भी हो
सकता है। हम कोई बात ऐसी सीखते हैं जिसे समाज स्वीकार करता है और कुछ
ऐसी जिन्हें समाज अस्वीकार करता है। इसलिए बच्चे को सही बातें सिखाने के
लिए शिक्षक को काफी असुविधायें उठानी पड़ती हैं।

सीखने की अवस्थायें : (Stages of learning)

हमने प्रारम्भ में ही इस बात की चर्चा की थी कि वातावरण का परिवर्तन बच्चे के व्यवहार में एक नया परिवर्तन लाता है और यही सीखना है। इस बात को यहाँ विस्तारपूर्वक समझाया जायेगा। छोटा सा बच्चा 'बाबा' 'पापा' कह कह कर बोलना सीखता है। माँ बाप उसके इस प्रयत्न की प्रशंसा करते हैं; अन्य लोग भी बच्चे की प्रशंसा करते हैं। बच्चा इसे सुनकर प्रसन्न होता है और इन शब्दों को दोहराने में एक विशेष आनन्द का अनुभव कर कर इन शब्दों को सीख लेता है। आगे चलकर यदि बच्चा अपने पिता को देखते ही 'पापा' शब्द कह देता है तो हम जान लेते हैं कि बच्चे ने इस शब्द को सीख लिया है। अब बच्चा स्कूल में जाता है और संख्याओं को सीखता है। अभी वह कुछ गिन नहीं सकता या अपने इस नए परिवर्तन को प्रकाश में नहीं ला पाता। कुछ दिनों पश्चात् वह प्रारम्भिक गणित को सीख कर चीजें खरीद सकता है और उनका लेखा जोखा भी रख सकता है। यही उसके व्यवहार में परिवर्तन है। अब वह एक छोटा मोटा गणित के पंडित के समान व्यवहार करने लगता है। हम कहते हैं उसने गणित सीख ली है। सीखने के सिद्धान्तों की कई अवस्थायें होती हैं।

(१) प्रयास अथवा त्रुटि से सीखना (Trial and Error learning)

अभ्यास का नियम (Principle of effect)

यह नियम स्वर्गीय थार्नडाइक (Thorndike) के द्वारा प्रतिपादित किया गया था। यह नियम सम्बन्धवाद (Connectionism) का एक अङ्ग है। सम्बन्धवाद (Connectionism) के साथ ही साथ अभ्यास के नियम का भी विकास हुआ। प्रारम्भ में यह नियम एक साधारण रूप में आया। सन् १९११ में इसे क्रमिक रूप दिया गया है और सन् १९३१ में अन्तिम रूप से इसे फिर प्रचलित किया गया। आज थार्नडाइक का यह सिद्धान्त वाद-विवाद का विषय नहीं रहा। आजकल कई अन्य सिद्धान्तों पर काफी वादविवाद हो रहा है और उन्होंने गम्भीर रूप धारण कर लिया है। परन्तु थार्नडाइक के इस सिद्धान्त का सीखने के अन्य सिद्धान्तों पर काफी प्रभाव है। इस सिद्धान्त के सर्वप्रथम रूप को ठीक-ठीक समझ लेना हमारे लिए उपयुक्त होगा।

थार्नडाइक के वास्तविक सिद्धान्त का विवेचन करने से पूर्व यह जानना अधिक उचित होगा कि इसके सिद्धान्त को सम्बन्धवाद (Connectionism) क्यों कहते हैं। थार्नडाइक के प्रारम्भिक लेखों में सीखने का आधार संवेद अनुभवों (Sense impressions) और क्रियात्मक प्रवृत्ति (impulse) के बीच सम्बन्ध माना गया है। और यही सम्बन्ध एक 'बन्ध' (bond या Conne-

ction) के नाम से प्रचलित है । चूँकि यही सम्बन्ध आदत के बनने या समाप्त होने में शक्तिशाली या कमजोर हो जाते हैं इसीलिए थॉर्नडाइक का सिद्धान्त 'सम्बन्धवाद' के नाम से विश्व विख्यात है । निम्नकोटि के पशुओं और मनुष्यों में सीखने के विशेष रूप को थॉर्नडाइक ने प्रयास और त्रुटि द्वारा सीखना (Trial and error learning) कहा है । बाद में उसने यह कहना और भी अधिक उपयुक्त समझा कि चुनाव और सम्बन्ध स्थापित करके (Connecting) लोग सीखते हैं । थॉर्नडाइक ने सिद्धान्तों को कई प्रयोगों द्वारा ज्ञात किया । किसी प्रयोग में सीखने वाले को समस्या पूर्ण परिस्थिति का सामना करना होता है जैसे उसको (Problem box) (समस्या सन्दूक) में बन्द कर दिया जाता है और उसके बाहर खाना रख दिया जाता है । सीखने वाले का खाना प्राप्त करने का उद्देश्य रहता है । वह सभी सम्भावित प्रतिक्रियायों में से सबसे अधिक उपयुक्त प्रतिक्रिया (Response) का चुनाव करता है । किसी उद्देश्य को प्राप्त करने या पहुँचने में जो समय लगता है अथवा की गई त्रुटियों की संख्याओं को हर प्रयास में नोट कर लिया जाता है । थॉर्नडाइक ने सर्वप्रथम प्रारम्भ में इसी प्रकार के प्रयोग बिल्लियों पर किये थे । उन्होंने कुछ प्रयोग कुत्तों, बन्दरों और मछलियों पर भी किये थे । सबसे विचित्र प्रयोग एक क्षुधा पीड़ित (hungry) बिल्ली पर किया गया जिसे एक सन्दूक में, जिसमें गुप्त रूप से लैंच (Latch) द्वारा चालित एक यंत्र लगा दिया गया, बन्द कर दिया गया । यदि बिल्ली सावधानी से latch (लैंच) को सम्हाल (manipulates) लेती थी तो सन्दूक का दरवाजा खुल जाता था और वह बाहर रक्खे हुये खाने तक पहुँच जाती थी । प्रथम प्रयत्न में बिल्ली बहुत बार हारी । वह काट पीट करती रही, बहुत देर तक इधर उधर फिरती रही और तब कहीं दरवाजा खुला । इस प्रयास में काफी समय लगा । इसके बाद के प्रयासों (trials) में अनियमित और मन्द गति से समय में कमी होती गई । यह मन्द गति इस बात को प्रमाणित करती है कि बिल्ली बाहर निकलने के तरीके को एकदम पकड़ नहीं पाती थी पर गलत प्रतिक्रियाओं (responses) को हटाकर (stamping out) सही प्रतिक्रियाओं को अपनाकर (stamping in) वह इस बात को (बाहर निकलने को) सीख लेती थी ।

इस सिद्धान्त को सरल तरीके से निम्नलिखित ढंग से वर्णन किया जा सकता है ।

किसी भी क्रिया में एक उत्तेजक या उद्दीपक (stimulus) व्यक्ति को प्रतिक्रिया (Response) के लिए बाध्य करता है । उद्दीपक को 'S' और प्रतिक्रिया को 'R' की संज्ञा, साधारणतयः दी जाती है । एक विशेष उद्दीपक अपनी

प्रतिक्रिया में 'S—R' के सम्बन्ध से जुड़ जाता है जिससे कि भविष्य में उसी उद्दीपक 'S' के पुनः प्रस्तुत होने पर वही प्रतिक्रिया (R) होगी। यदि 'S' के बाद 'R' के पुनरावृत्ति की सम्भावना अधिक बढ़ जाय तो 'S—R' सम्बन्ध अधिक गहरा समझा जाता है। यह S–R सम्बन्ध संवेगात्मक (Emotional), प्रतिबोधिक (perceptual), गतियुक्त (motor), और ideational (कल्पना-पूर्ण) हो सकता है। इनको सम्बधों के क्रम में गूँथा जा सकता है। ज्ञान ही एक ऐसा क्रम है और सीखने की क्रिया ही में सम्बन्ध बनते हैं, मजबूत होते हैं और उनको क्रम में बाँधा जाता है।

थॉर्नडाइक ने तीन नियमों को जन्म दिया है—वांरवारता (Frequency), नवीनता (recency) और प्रभाव (effect) के नियम।

वांवररता (frequency) के नियमानुसार प्रायः होने वाले कार्यों की पुनरावृत्ति होती है। नवीनता (Recency) के नियमाकूल उन क्रियायों की पुनरावृत्ति होती है जो अभी हमने हाल में की हों, और प्रभाव के नियम के अनुसार उन्हीं प्रतिक्रियाओं (responses) की पुनरावृत्ति जानवरों के व्यवहार में होती है जो उनको सफलता व पारितोषिक (reward) प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होती हैं। यह अन्तिम नियम बड़ा मूल्यवान है क्योंकि प्रारम्भिक सीखने पर इसका काफी प्रभाव है। इस पद्धति से सीखने के असंख्य उदाहरण हैं।

बच्चों का प्रायः सभी सीखना माता पिता व शिक्षक की प्रशंसा पर बहुत कुछ निर्भर करता है। मान लीजिए बच्चा स्नान करने से इन्कार करता है। उसकी माँ स्नान करा कर बच्चे की स्वच्छता व सुन्दर व आकर्षक, शरीर की स्नानोपरान्त प्रशंसा करती हैं। इस प्रशंसा के कारण बच्चा फिर कभी भी स्नान करने से पीछे न भगेगा।

इस प्रकार का सीखना ही प्रत्येक बच्चे की आदतों का निर्माण करता है। इसी से बच्चा अच्छी व सुन्दर बातें करना सीखता है जबकि दूसरी ओर उसका न भाने वाला व्यवहार, बिगड़े बालक का व्यवहार आदि में उसके दुष्परिणाम देखने को मिलते हैं।

शिक्षक का कर्त्तव्य है कि वह बच्चे की प्रत्येक अपेक्षित क्रिया की सराहना कर उसे बढ़ावा दे। इस बात को भी नोट कर लेना चाहिए कि यदि बच्चे को उसके अच्छे कार्य की सराहना नहीं की जाती या उसे दंड दिया जाता है तो 'S—R' सम्बन्ध शिथिल हो जाता है जिससे वह चीजों को भूल जाता है। यदि बालक का कोई कार्य अवांछनीय है तो उसे तत्काल अस्वीकार कर देना चाहिए। यहाँ यथोचित दण्ड भी देना

उचित होगा। जब बालक देख लेता है कि उसके अवाँछनीय कार्य की सराहना नहीं की गई तो उसे सदा के लिए त्याग देता है।

(२) **सम्बद्ध प्रत्यावर्तित या अभिसंधानित प्रतिक्रिया का सिद्धान्त** (conditioned response theory)—

सर्व विदित सम्बद्ध प्रत्यावर्तित (conditioned response) उस परि-स्थिति की ओर संकेत करता है जिसमें कुत्ते को चमकदार रोशनी दिखलाई जाती है और उसके बाद ही शीघ्रता से उसे खाना खिला दिया जाता है। खाना खाने के बाद उसके मुँह से लार निकलती है। इसी प्रकार के बहुत से अनुभवों के बाद रोशनी देखते ही उसके मुंह से लार बहना शुरू हो जावेगी यद्यपि उसे अभी खाना नहीं मिला। प्रारंभ में इस साधारण बात की ओर सर्वप्रथम रूस के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक पैभलभ (Pavlov) का ध्यान आकर्षित हुआ और उसने इसका विस्तृत अध्ययन किया। इसके बाद यही सिद्धान्त सीखने के कई सिद्धान्तों की आधार शिला बन गया है। Pavlov के प्राचीन सम्वद्ध (conditioned) के प्रत्यय (concept) के अनुसार खाना या और कोई उद्दीपन (stimulus) जो कुत्ते के मुँह में रख दिया जाता है उसका विशेष महत्व है। सर्वप्रथम, कुत्ता इसके कारण लार गिराना सीखता है और इसके बाद 'रोशनी को देखते ही' उसके अन्दर 'लार गिराने' या 'बहाने' की प्रवृत्ति (tendency) उत्पन्न हो जाती है। कुछ समय उपरान्त अगर यह प्रवृत्ति मिटती हुई जान पड़े तो हमें पुनः रोशनी के पश्चात् ही खाना देने की क्रिया को दोहरा देना चाहिए और इस तरह से मिटती हुई विशेषता को पुनः जागृत व सशक्त बनाया जा सकता है। यदि इस प्रकार की उत्तेजना समय पर प्रदान न की गई तो कुत्ते की नई प्रवृत्ति का विलयन (inhibition) होकर अन्त में वह सदा के लिए समाप्त हो जावेगी।

यद्यपि पैभलभ (pavlov) का अनुसन्धान कार्य दैहिक मनोविज्ञान (physiopsychological) की सीमित समस्या तक ही रहता है फिर भी इसके अन्तर्गत कक्षा व घर पर होने वाली साधारण सीखने की क्रिया को भी शामिल किया जा सकता है। इस सिद्धान्त के विषद रूप का वर्णन निम्नलिखित ढंग पर किया जा सकता है।

"Any of the contents of a child's experience which are present as he acts or behaves in a certain way will tend to become linked up with the activity, so that if the expriences

recur they will tend to evoke the connected actions or behaviour.[1]

यदि बच्चे के किसी व्यवहार या क्रिया करने के समय उसके अनुभव का कोई अंश उस समय रहता है तो वे अनुभव उस क्रिया के साथ सम्बद्ध हो जावेंगे। यदि भविष्य में वे अनुभव फिर जागृत हुए तो उससे सम्बन्धित व्यवहार व क्रियाओं का भी स्पष्टीकरण होगा, अर्थात् वे क्रियाएँ भी उस अनुभव के समय जागृत हो उठेगीं।

सन् १९२४ में वाटसन (Watson) ने Behaviourism[2] (व्यवहारवाद) का प्रकाशन किया। इसमें ऊन्होंने प्रत्यावर्तित सहज क्रिया (conditioned reflex) को व्यवहारवाद (Behaviourism) का आधार माना है। उन्होंने तीन वर्ष के बच्चे पर अप्रतिबन्धित या असम्बन्धित (unconditioning) करने का प्रभाव बतलाया है।

Watson ने इस बात की भी खोज की है कि बच्चे अन्धकार व स्त्रियाँ साँप व कीड़ों से क्यों डरती हैं। वाटसन ने एलबर्ट नामक बच्चे पर किये हुये सम्बद्ध प्रत्यावर्तित के प्रयोग का वर्णन अपनी पुस्तक में निम्न प्रकार से किया है।

वाटसन (Watson) अपनी 'व्यवहारवाद' नामक पुस्तक में लिखते हैं—

"How can we square these observations with those which show the enormous complexity in the emotional life of the adult?[3] अर्थात् हम इन निरीक्षणों (observation) से उन तथ्यों को कैसे जान सकते हैं जो एक किशोर के संवेगात्मक जीवन की जटिलता का प्रदर्शन कराते हैं। हम सभी को मालूम है कि सैकड़ों बच्चे अन्धेरे से डरते हैं और स्त्रियाँ साँप व कीड़ों से डरती हैं। परन्तु ये क्यों डरते हैं या डरती हैं, यह हमारी समस्या है। हम यह भी देखते हैं कि हमारे संवेग (emotions) व्यक्तियों, साधारण परिस्थितियों और जगहों के किये जागृत होते हैं। पानी और जंगलों से भी इनका सम्बन्ध होता है। केवल वस्तु के दर्शन मात्र से ही प्रेम और क्रोध की उत्पत्ति नहीं होती। बाद में, जीवन में आगे चलकर हम देखते हैं कि व्यक्ति के दर्शन मात्र से ही ये दोनों पाशविक संवेग (primitive emotion) भड़क उठते हैं। अब प्रश्न उठता है कि जो वस्तुएँ सर्वप्रथम इन संवेगों

१. Peel, E. A.: 'The Psychological Basis of Educat'; Oliver & Boyd, P. 17 1959.
२. Watson, J. B.: 'Behaviourism'; Kegan Paul, Londan.
३. Watson, J. B.: 'Behaviourism' Kegan Paul London.P.126

को उत्पन्न नहीं कर पाती वे आगे चलकर इन्हें भड़का-कर हमारे संवेगात्मक (emotional) जीवन को मधुर या कटु कैसे बना देती हैं।

आइए हम इस बात का पता लगायें कि सहज क्रिया (reflex) का सम्बद्ध प्रत्यावर्तन (conditioning) किस प्रकार से होता है। हम इस बात को पहिले ही मान लेते हैं कि आप यह जानते होंगे कि सम्बद्ध प्रत्यावर्तित प्रतिक्रिया (conditioned reaction) बनने के पूर्व प्रारम्भ में आपको एक आधारभूत उद्दीपन (stimulus) का अनुभव होना आवश्यक है जिससे एक प्रतिक्रिया (response) को जन्म दिया जाता है। इस प्रतिक्रिया की पुनरावृत्ति के लिए आपको अन्य उद्दीपनों की भी आवश्यकता होती है। उदाहरण के तौर पर यदि आप प्रत्येक बिजली की सीटी. (Buzzer) की ध्वनि पर अपने हाथ को धक्के से उठाना चाहें तो आपको electric shock या इसी तरह के अन्य हानिकारक उद्दीपनों का बिजली की सीटी की प्रत्येक ध्वनि के बाद प्रयोग करना होगा। कुछ देर बाद आप देखेंगे कि बिजली की सीटी की ध्वनि को सुनते ही हाथ उठने लग जावेगा मानो कि electric shock (बिजली का धक्का) ही लगा हो। जैसा कि हम पहिले से ही जानते हैं कि एक आधारभूत या अप्रत्यावर्तित उद्दीपन होता है जो भय की प्रतिक्रिया को शीघ्रता व सरलता सेप्रदर्शित कर देता है और यह है जोर की आवाज।

वाटसन का प्रयोग—यह एक ग्यारह महीने के Albert B नामक बच्चे, जिसका वज़न इक्कीस पौंड था, पर किया गया था। यह बच्चा Harriet lane Hospital की नर्स का था। इसका सारा जीवन अस्पताल में बीता। यह बहुत ही अच्छा बच्चा था। Watson ने कई महीने तक उसके साथ रह कर उसे देखा था पर उसने बच्चे को रोता हुआ न पाया। "हमारा Albert पर पहिला प्रयोग सफेद चूहे के प्रति भय की प्रतिक्रिया के सम्बन्ध प्रत्यावर्तन(conditioning) के रूप में हुआ। हमने अपने बार बार किये गए परीक्षणों से देखा कि जोर की आवाज और सहारे को हटा देने पर इस बच्चे में भय की प्रतिक्रिया उत्पन्न होती थी। जोर की आवाज के प्रति इसकी वही प्रतिक्रिया थी जो अन्य बच्चों में होती हैं। तीन फीट लम्बे और एक इंच के व्यास के लोहे के टुकड़े को बढ़ई के हथोड़े पर मारे जाने के कारण जो प्रतिक्रिया हुई वह एक बड़ी ही विचित्र और विशेष थी।

चूहे को ऐलबर्ट के पास लाया गया—

(१) ऐलबर्ट ने इसे पसन्द किया और उससे खेलना चाहा। बांये हाथ से उसने पकड़ने की भी कोशिश की। जैसे ही बच्चे के हाथ ने जानवर का स्पर्श किया वैसे ही तुरन्त उसके सिर के पीछे छड़ से झनझनाहट की आवाज

की गई। बच्चा एक दम जोर से कूदा और आगे जाकर गिरा और अपना सिर जमीन में गड़ाये रहा। वह रोया नहीं।

(२) चूहे को दांये हाथ से छूते ही छड़ से फिर झनझनाहट की आवाज की गई। इस बार बच्चा कूदा, आगे गिरा और सिसकियाँ भरने लगा। इसी प्रकार से चूहे द्वारा उत्पन्न उद्दीपन और आवाज का निम्नलिखित परिणाम हुआ :—

(३)··· ··· ··· ···नहीं रोया

(४)··· ··· ··· ···नहीं रोया

(५)··· ··· ··· ···नहीं रोया

(६)··· ··· ··· ···जोर से गिरा और रोया पर जमीन पर पड़ा नहीं रहा।

अब केवल अकेले चूहे को उस बच्चे ऐलवर्ट के पास छोड़ा गया। चूहे को देखते ही बच्चा रोने लगा। निस्संदेह भय की प्रतिक्रिया का यही सम्बन्ध प्रत्यावर्तित स्रोत है"[१] हमको यही प्रमाण बच्चे के संवेगात्मक व्यवहार को समझने में वैज्ञानिक आधार के रूप में सहायक होता है।

असम्बद्ध प्रत्यावर्तन का सिद्धान्त (Method of unconditioning or Reconditioning)

बच्चों के डर को निर्मूल करने में यह तरीका सबसे अच्छा व सफल सिद्ध हुआ है। इस सिद्धान्त को पुनः प्रत्यावर्तन (Reconditioning) कहना शायद ज्यादा सन्तोषजनक होगा। परन्तु शारीरिक वेत्ताओं (Physical culturists) ने शारीरिक विज्ञापनों में भिन्न भिन्न अर्थों में इसका प्रयोग किया है इस लिये असम्बद्ध प्रत्यावर्तन (unconditioning) ही शब्द हमारे लिए रह जाता है ताकि इसके भिन्न २ अर्थ न समझे जावें,

वाटसन का प्रयोग:—"पीटर (Peter) नामक लगभग तीन वर्षीय उत्सुक बालक था। भय के अतिरिक्त जीवन की साधारण परिस्थितियों में उसने अपने को अनुकूल (adjust) बना लिया था। वह सफेद चूहों, खरगोशों और खाल का कोट (fur coats), पंख, ऊन, मेढ़कों और यांत्रिक खिलौनों से डरता था। हम कह सकते हैं कि पीटर का डर घर से उत्पन्न (home grown) था।

पीटर को उसके खेलने के कमरे की चारपाई पर कराया गया। वह अपने खिलौनों से खेलने लगा। पीछे से सफेद चूहे को प्रवेश कराया गया। पीटर डर से भयभीत हो पीठबल गिर पड़ा। उद्दीपन (Stimulus) को हटा लिया गया। बच्चे को चारपाई से हटा लिया गया। बारबरा (Barbara)

१ Watson, J. B. : 'Behaviourism' ; Kegan Paul, London.

नामक दो वर्षीय लड़की को बच्चे के विस्तर पर लाया गया और सफेद चूहे को अन्दर लाया गया। वह निडर होकर उससे खेलने लगी। पीटर यह सब देखता रहा। बारबरा ने पीटर के खिलौनों को भी स्पर्श किया। पीटर शिकायत की आवाज़ में गिड़गिड़ाने लगा कि मेरी मालायें ("my beads")। दूसरे दिन बच्चे की निम्नलिखित वस्तुओं और परिस्थितियों के प्रति हुई प्रतिक्रियाओं को नोट किया गया:—

(१)	खेलने का कमरा और बच्चे पीटर का विस्तर	अपने खिलौनों को लेकर बिना किसी शिकायत के विस्तर में चला गया।
(२)	सफेद गेंद के अन्दर ढुलकाने में	उठा लिया और हाथ में पकड़ लिया।
(३)	विस्तर पर खाल का कोट टांगने पर	जब तक हटाया न गया रोता रहा।
(४)	खाल का कोट (Fur coat)	जब तक हटाया न गया रोता रहा।
	रुई	....
		....
		....
	पंखों का हैट	रोया
	सफेद खिलौना (मोटे कपड़े का खरगोश)	कोई प्रकार की प्रतिक्रिया न हुई
	लकड़ी की गुड़िया	कोई प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं हुई।

इसके बाद पीटर कुछ समय तक बीमार रहा। एक दिन एक भौंकते हुये कुत्ते ने उस पर आक्रमण किया। अब सभी जानवरों के प्रति उसके भय की प्रतिक्रिया एक विषद रूप धारण कर गई। अब उस पर प्रत्यक्ष असम्बद्ध प्रत्यावर्तन (direct unconditioning) का ढङ्ग लागू करना उचित समझा गया।

हम लोगों को उसको खाना स्वयं खिलाने की आज्ञा नहीं मिली फिर भी उसे तीसरे पहर का खाना देने की आज्ञा हम लोगों को मिल गई। तीसरे पहर के खाने में गिलास भर दूध और crackers (विस्कुट) दिये जाते थे। पीटर को हमने ऊँची कुर्सी पर नीची मेज़ के समीप बिठाया। चालीस फीट लम्बे कमरे में उसे खाना दिया गया। जैसे ही वह खाना खाने लगा तार के पिंजड़े में बन्द एक खरगोश दिखाया गया। पहिले दिन हमने उसे बहुत दूर से दिखाया जिससे उसे खाने में दिक्कत न हो। उसकी प्रतिक्रिया को नोट किया गया। दूसरे दिन खरगोश और अधिक अधिक समीप लाया गया और बच्चे की

असावधानी का ध्यान न किया गया और इस जगह को नोट कर लिया गया। तीसरे और बाद के दिनों में इसी क्रम को दोहराया गया। अन्त में खरगोश बच्चे के मेज पर और फिर पीटर की गोद में रख दिया गया। अन्त में, ऐसा भी दिन आया कि बच्चा एक हाथ से खाना खाता रहता और दूसरे हाथ से खरगोश को खिलाया करता था।"[१]

घर में उत्पन्न हुये भयों को दूर करने में एक दिक्कत हुआ करती है कि हमें प्रारम्भिक परिस्थिति, जिसने सम्बद्ध प्रत्यावर्तन किया था, का ज्ञान नहीं हो पाता। संवेगों (emotions) के पूर्ण जगत का प्रयोगात्मक ढंग से अध्ययन बड़ा ही आश्चर्यजनक है। इस प्रकार के प्रयोग घर में, स्कूल में तथा संसार के किसी भी स्थान में किये जा सकते हैं।

कक्षा में बच्चा अंकगणित का एक प्रश्न सही तरीके से नहीं कर पाता ; शिक्षक उसे बुरी तरह से डांटता है और सहपाठी उसका मजाक बनाते हैं। इस अनुभव की पुनरावृत्ति अन्त में किसी भी परिस्थिति में जैसे अंकगणित का विषय, शिक्षक का विचार मात्र और अन्तिम अवस्था में सहपाठियों का विचार,बच्चे में प्रारम्भिक भय या क्रोध की प्रतिक्रिया उत्पन्न कर देगा जिसके फलस्वरूप उसमें पाठशाला के कार्य के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति (negative attitudes) और उदासीन दृष्टिकोण दृष्टि गोचर होता है।

इस प्रकार से पाठशाला के कार्य के प्रति अवांछनीय अभिवृतियाँ (undesirable attitudes) बन जाती है। दूसरी परिस्थितियों में भी इसी प्रकार की अवांछनीय अभिवृतियाँ बन जाती हैं। उदाहरण के लिये मित्रों के बीच सुरक्षा की भावना न होना और अन्धेरे का डर भी सम्बन्द्ध प्रत्यावर्तन में बदल सकता है।

(३) **पुनर्बलन का सिद्धान्त** (Reinforcement theory)—

सीखने के आधुनिक सिद्धान्तों में हल साहब (Hull) के theory of reinforcement (पुनर्बलन का सिद्धान्त) का प्रमुख स्थान है। हल साहब ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन सन् १९३० में किया। प्रभाव के नियम (Law of Effect) और सम्बन्द्ध-प्रत्यावर्तन के प्रत्यय (Concept) से हल के सिद्धान्त को जन्म मिला। उसने इन प्रारम्भिक सिद्धान्तों को मिलाकर पुनर्बलन सिद्धान्त के अन्तर्गत कर दिया।

मनुष्य और पशु ऐसी परिस्थितियों का सामना करते हैं जिनमें उन्हें 'S–R' के सिद्धान्त को और भी अधिक मजबूत करने और नये 'S–R' के सम्बन्धों के निर्माण की आवश्यकता का अनुभव करना होता है। जैसा हम

१. Watson, J. B. : "Bhaviourism' ; Kegan Paul, London,

पूर्व परिचित हैं कि प्रथम का निर्माण चुनाव (Selecting) और प्रयास और
त्रुटि (Trial and Error) तथा प्रभाव (effect) के नियमों के अनुकूल होता है
और दूसरे का आधार सम्बद्ध प्रत्यावर्तन (Conditioning) है । प्रत्यावर्तित प्रति
क्रिया तभी सम्भव है यदि बच्चे को कोई आवश्यकता का अनुभव हो जैसे—
भूखा होना—टहलने की इच्छा आदि । प्रभाव के नियम द्वारा आवश्यकता
(need) या प्रेरणा (drive) की तृप्ति हो सकती है या सफल प्रतिक्रियायों से
यह मिट सकती है ।

हल के मतानुसार किसी आवश्यकता (need) की पूर्ति के समय उस समय
उपस्थित सभी 'S–R' सभी सम्बन्ध और बलवान हो जाते हैं । इस साधारण सूत्र
(Formula) में उन्होंने प्रभाव के नियम तथा प्रत्याबर्तित प्रतिक्रिया (Condi-
tioned Response) को शामिल कर लिया है । हल के अनुसार जिस समय
नये सम्बन्ध स्थापित होते हैं उस समय हमारे पुराने सम्बन्ध और गहरे हो
उठते हैं । सीखने में ये दोनों क्रियाएँ साथ-साथ होती रहती हैं । प्रभाव के
नियम के अनुसार पुराने सम्बन्ध 'S_1–R_1' मजबूत होतें रहते हैं और सम्बद्ध
प्रत्यावर्तित के अनुसार नये सम्बन्ध 'S_2–R_2' बनते रहते हैं ।

हम हल के सिद्धान्त को सरल रीति से निम्नलिखित ढंग से समझ
सकते हैं :—

जब कभी उद्दीपन (Stimulus) के पश्चात् प्रतिक्रिया शीघ्र होती है और
S–R का सम्बन्ध घनिष्ट हो जाता है तथा आवश्यकता में कमी आ जाती है
तो इस 'S-R' की क्रिया की भविष्य में बार बार पुनरावृत्ति की सम्भावना
रहती है ।

एक उदाहरण से इसे स्पष्ट किया जा सकता है । निम्नलिखित चित्र में
कल्पना कीजिए कि एक प्यासे चूहे को पानी मिल गया और वह पीने लगा
और इस प्रकार से उसने अपनी आवश्यकता की पूर्ति की । आवश्यकता की
पूर्ति के समय उस विशेष पशु के सम्मुख कई समस्यायें आती हैं और तद्-
नुसार वह नाना प्रकार की प्रतिक्रियाएँ करता रहा ।

अब उन असंख्य परिस्थितियों और प्रतिक्रियाओं का, जो उस समय हुई होंगीं
विचार करिए । मान लीजिए, उसने एक पानी की बोतल (उत्तेजक) (Sa)
देखी और उसने पानी को सूंघनें की (Ra) प्रतिक्रिया (response) की ।
इस समय उसे पिस्सू के काटने की उत्तेजना (Sb) हुई जिसके प्रति उसने
खुजलाकर (Rb) प्रतिक्रिया की । Sa—Ra और Sb—Rb सम्बन्धों की
प्रवृति (tendency) का प्यास की कमी के बाद क्या होगा ? स्थानापन्न के
सिद्धान्त (Principle of substitution) के अनुसार जब चूहा भविष्य में बोतल

[चित्र द्वारा 'हल' के सिद्धान्त की पुष्टि]

घटना (Event)

निम्नलिखित परिस्थितियों और प्रतिक्रियाओं का जन्म प्यासे जानवर को पानी मिलने से कुछ पूर्व ही होता है।

Sa——→Ra S

(Drive reduction)

(आवश्यकता की कमी)

Sb——→Rb

Result as predicted by the Principles of substitution

(स्थानापन्न के नियम द्वारा परिणाम की भविष्यवाणी)
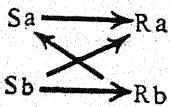
Two new connections (Sa——→Rb) and (Sb——→Ra) are formed and strength of Sa——→Ra and Sb——→Rb is unchanged.

(Sa→Rb और Sb→Ra दो नये सम्बन्ध स्थापित होते हैं। पुराने सम्बन्ध Sa—Ra तथा Sb→Rb में कोई अन्तर नहीं होता है।

Result as predicted by Principle of Effect

(प्रभाव के नियम द्वारा परिणामों की घोषणा)

The connection which have just functioned will be strengthened.

(पुराने सम्बन्ध Sa—Ra तथा Sb—Rb मजबूत हो जावेंगे)

Result as predicted by 'Hull's Fourth postulate

(हल के चौथे postulate के अनुसार भविष्यवाणी)
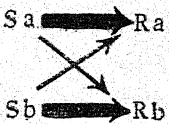
All connections between situations and all responses will be strengthened. Sa→Ra and Sb→Rb which had some strength before will become stronger (Sa→Ra तथा Sb→Rb दोनों सम्बन्ध क्रमशः मजबूत हो जावेंगे)

Sa→Rb and Sb→Ra which had almost zero strength will acquir very slight strength (Sa—Rb तथा Sb—Ra दो नये सम्बन्ध स्थापिप हो जावेंगे) .

१. Stephens, J. M.: 'Educational psychology'; Constable and Co. Ltd., London, W. C. 2., 1956.

(Sa) को देखेगा तो अपने सिर को खुरचेगा अर्थात् Sb प्रतिक्रिया करेगा और जब उसे पिस्सू काटेगा अर्थात् (Sb) उत्तेजक मिलेगा तो वह बोतल को सूँघने और सी. सी. की आवाज करने की प्रतिक्रिया करेगा अर्थात् Ra प्रतिक्रिया करेगा। इस प्रकार Sa–Rb और Sb–Ra दो नये सम्बन्ध स्थापित हो जावेंगे। प्रभाव का नियम (Law of Effect) दूसरी ओर अपना ध्यान केवल वर्तमान प्रवृत्तियों (tendencies) की ओर ही रखकर इस बात की घोषणा करता है कि Sa→Ra और Sb→Rb, वर्तमान प्रवृतियाँ (tendencies) और भी गहरी हो जावेंगीं और प्यास की प्रेरणा (drive) मन्द पड़ जावेगी। प्यास की कमी होने से हो सकता है कि जानवर बोतल को देखते ही 'सी सी' आवाज करने लग जाय और पिस्सू के काटने पर उसके खुरचने की सम्भावना अधिक हो जाय। परन्तु प्रभाव का नियम इस बात की घोषणा नहीं करता है कि बोतल के देखने से खुरचने की प्रतिक्रिया पर भी कोई प्रभाव पड़ेगा या पिस्सू के काटने पर 'सी सी' की आवाज होने लगेगी।

अपने चौथे नियम (Fourth postulate) के अनुसार दोनों ही सिद्धान्तों से हल (Hull) सहमत हैं और साधारण वर्णन से इस बात को सिद्ध करते हैं। इस आधार में उनका कहना हैं कि प्रेरणा के मन्द होने से प्रत्येक होने वाली प्रतिक्रिया का प्रत्येक परिस्थिति (उत्तेजक) से गहरा सम्बन्ध हो जावेगा। Sa का अपनी उचित प्रतिक्रिया Ra और Sa का Rb से सम्बन्ध अधिक गहरा हो जावेगा। अधिक गहरा ("more strongly") शब्द कहना शायद पहिले साधारण रूप से विचित्र लगे क्योंकि हम मान बैठे है कि इस अनुभव के पूर्व Sa और Rb का सम्बन्ध नहीं के बराबर था। परन्तु थोड़ा सा भी विचार करनें पर यह सर्वथा उचित प्रतीत होगा। शून्य से थोड़ा बहुत सम्बध गहरा या बढ़ने पर वह "becoming more strongly attached" अधिक गहरे होनें के अन्तर्गत आ जावेगा। इस प्रकार से हल (Hull) महोदय Sb→Rb और Sb—Ra के सम्बन्धों में गहनता की आशा करते हैं।

हल (Hull) महोदय के चौथे नियम (Fourth Postulate) को और सरलता से कह सकते हैं कि प्रेरणा (Drive) के कम होनें पर उस समय वर्तमान सारी परिस्थितियाँ उस समय उठने वाली सारी प्रतिक्रियाओं के साथ बड़ी मजबूती से जुड़ जावेगीं। यदि एक परिस्थिति और एक प्रतिक्रिया पुराने जाड़े के सदस्य हैं तो उनका सम्बन्ध और भी गहरा हो जावेगा। अगर दूसरी परिस्थिति और दूसरी प्रतिक्रिया एक दूसरे से सर्वथा अपरिचित है (never saw each other before") तो उनका हल्का या शिथिल सम्बन्ध ही और आश्चर्यजनक रूप से गहरा हो जावेगा।

पूर्वोक्त कथन बहुत साधारण रूप में बताया गया है। हल का चौथा नियम (fourth postulate) इससे कहीं अधिक बातें बताता है। हल महोदय के विस्तृत मत में सोलह नियमों में से चौथा नियम (Fourth Postulate) बहुत महत्वपूर्ण है। अन्य नियमों का मूल्य केवल इतना है कि वे "चौथे नियम" को कार्यान्वित करने के लिए व्यापक सामग्री प्रदान करते है। इस छोटी सी पुस्तक में सोलहों नियमों की तो विवेचना सम्भव नहीं है फिर भी आरम्भ के चार नियमों को संक्षिप्त रूप से वर्णन करना लाभदायक सिद्ध होगा।

नियम १ *(Postulate I)*[1]

Afferent neural impulses and the preservative stimulus trace

"Stimuli impinging upon a receptor give rise to afferent neural impulses which rise quickly to a maximum intensity and then diminish gradually. After the termination. of the stimulus, the activity of the afferent nervous impulse continues in the central nervous tissue for some seconds."

व्याख्या:—जब उद्दीपक शक्ति (S) receptor (ग्राही) अङ्ग से टकराती है तो afferent neural impulse उत्पन्न होते हैं। इनमें पहले बहुत प्रचण्डता होती है और बाद में वह कम होती जाती है। वह स्नायु कोषों (nerve cells) की मिली हुई रेशों की शाखाओं द्वारा मस्तिष्क में होकर क्रियाशील अंग में पहुँचती है। उद्दीपक शक्ति (Stimulus Energy) 'S' के द्वारा जारी रहने वाली क्रिया के काल में गुप्त रूप से विद्यमान afferent impulse (s) तीव्र रूप में एकाएक उमड़ पड़ती है और फिर धीरे धीरे तुलनात्मक ढंग से उसका वेग हल्का हो जाता है जैसा कि हर वस्तु में यह नियम देखने को मिलेगा। Receptor पर उद्दीपक शक्ति (S) की समाप्ति पर (afferent impulse) (S) केन्द्रीय स्नायु रेशों पर कुछ क्षणों तक अपना कार्य करती रहती है फिर धीरे धीरे कम होती जाती है। उद्दीपक शक्ति (S) की समाप्ति पर (afferent impulse) भी प्रायः समाप्त हो जाता है।

नियम २ *(Postulate 2) Responses to need; Reinforcement and habit strength* :—उद्दीपक के प्रति हुई प्रतिक्रियाओं पर प्रभाव डालने वाली अदृश्य शक्तियों (non-observables) द्वारा कुछ प्रेरणाएं (drives) कार्य करती रहती हैं और इन्हीं के आधार पर भूतकाल में आदतें बना करती हैं।

---

१. Hull, C. L.: 'Principles of Behaviour'; Appleton Century, N. Y.

नियम ३ (*Postulate 3*) :—

जीव (organism) जन्म से ही उद्दीपक और प्रेरणाओं (drives) की अवस्था में उत्पन्न आवश्यकताओं को समाप्त करने की प्रतिक्रियाओं की सुसंगठित सज्जा से विभूषित रहता है। आवश्यकता द्वारा उत्पन्न-प्रतिक्रियाएँ जीव की अनायास चुनाव की (Random) प्रतिक्रियाएँ न होकर वस्तुतः उस आवश्यकता की समाप्ति के लिए होती हैं।

नियम ४ (*Postulate 4*)

Receptor (ग्राही) और Effector (प्रभावी) क्रियाओं के एक ही समय घनिष्ट सहचारिता (Contiguity) में उत्पन्न होने से आदत दृढ़ होती है परन्तु इसमें शर्त यह है कि उनका लगभग एक साथ होने का सम्बन्ध प्राथमिक और माध्यमिक Reinforcement (पुनर्वलन) के साथ होना चाहिये।

तीसरा नियम (Postulate) प्राथमिक पुनर्वलन (Primary Reinforcement) की आवश्यकता न्यून करने के सिद्धान्त के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। आवश्यकता (need) और प्रतिक्रिया (Response) का जन्मजात संबन्ध होने से ही आवश्यकता में न्यूनता होती है जिसका अनुमान प्राकृतिक निरीक्षणों (Naturalistic observations) के आधार पर किया गया है। जैसे उदाहरणार्थ दर्द होने पर आहत अंग को हटा लेना, भूखे शिशु का होठ हिलाना, भूख या मैथुन के वेग से पीड़ित पशुओं का एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना—क्योंकि इन वेगों की तृप्ति के लिए खाने की सामग्री अथवा दूसरे पशु की आवश्यकता होती है। भूखा पशु सोना नहीं पसन्द करेगा। शायद वह अन्य प्रतिक्रियाओं की अपेक्षा भूख के प्रति इस प्रतिक्रिया को नहीं चुनेगा। सभी सम्भावित प्रतिक्रियाओं में से केवल उसी प्रतिक्रिया का चुनाव किया जावेगा जो आवश्यकता (Need) को पूर्ण कर सके।

पूरे क्रम में प्रेरणा (Drive) का स्थान (Non-observable contract or an intervening variable) जैसा है। इसका अर्थ हुआ कि प्रेरणा का आभास किसी अन्य श्रोत से करना होगा। कितने समय से उसे खाना नही मिला—आदि से भी पता लग जावेगा। प्रेरणा (Drive) का प्रत्यक्ष रूप से नापना संभव न होगा। हल ने Observables (or potentially observables) का अपने सिद्धान्त में जिक्र नहीं किया—यह इस बात का प्रमाण है कि उसका सिद्धान्त आदिकाल के व्यवहारवाद (primitive behaviourism) से बहुत आगे है।

चौथे नियम (Postulate) में प्राथमिक पुनर्वलन (Primary reinforcement) को आवश्यकता की न्यूनता के समान वर्णन किया गया है।

द्वितीय पुनर्वलन (Secondary reinforcement) के मध्य में एक नवीन उद्दीपक (Stimulus) आ गया है जिसका गहरा व निरन्तर सम्बन्ध आवश्यकता की कमी से है। पारितोषिक का कार्य वही है जो Miller और Dollard के anecdote में वर्णित हैं। बच्चे की भूख चाकलेट के खाने या देखने से जब पूर्ण हो जावेगी तब वह किताब के चुनाव को सीख जावेगा क्योंकि भूख की कमी का चाकलेट के दर्शन से बहुधा सम्बन्ध स्थापित किया गया है।

चौथा नियम (Postulate), जैसा आगे बयान किया गया है, पुनर्बलन (Reinforcement) की पुनरावृत्ति पर आदतों के दृढ़ होने की संख्या का योग निकालने का भी ढंग निश्चित रूप से वर्णन करता है। आदतों की दृढ़ता की उच्च सीमा को तीन चल राशियों (Variables) में निर्धारित किया है।

(१) Reinforcement में आवश्यकता की न्यूनता की सीमा (magnitude)

(२) Reinforcement और प्रतिक्रिया के बीच बिलम्ब।

३—सम्बद्ध प्रत्यावर्तित उत्तेजना (Conditioned stimulus) और प्रतिक्रिया (response) के बीच का समय।

जब आवश्यकता में अधिक न्यूनता हो जाती है, पुनबर्लन व प्रतिक्रिया के बीच का बिलम्ब बहुत कम होता है और सम्बद्ध प्रत्यावर्तित उद्दीपक और प्रतिक्रिया के बीच की दूरी बहुत कम होती है तो आदत की दृढ़ता की उच्च सीमा होती है। Optimal values उस प्रवन्ध के बीच में आ जावेगी जो अधिक से अधिक आवश्यकता की न्यूनता, प्रतिक्रिया की गहरी सहचारिता (Contiguity) और Reinforcement या उद्दीपन और प्रतिक्रिया की सहचारिता से थोड़ा भिन्न हैं।

सम्बद्ध प्रत्यावर्तित उद्दीपक के थोड़े समय पश्चात् प्रतिक्रिया और प्रतिक्रिया के बाद Reinforcement का होना बहुत कुछ सम्भव है। साथ-साथ होने का अपेक्षा तुरन्त बाद में होने वाले सम्बन्ध ज्यादा सर्व ग्राही होते हैं।

आदत की दृढ़ता को एक इकाई द्वारा नापा जा सकता है जिसे 'hab' (Shrot for babit) कहते हैं। (One 'hab' being $\frac{1}{100}$ of the upper limit of habit strength as set by the maximum obtainable under optimal conditions)। चौथा नियम (Postulate) विस्तृत विषयों की विवेचना करता है : संक्षेप में इसके अन्तर्गत निम्नलिखित बातें आती हैं :-

१—प्राथमिक और द्वितीय पुनर्बलन के सिद्धान्त द्वारा यह बताता है कि वे आवश्यकता की न्यूनता से क्यों सम्बन्धित है।

२—पुनः Reinforcement के फलस्वरूप आदतों की दृढ़ता के योग मालूम कराता है।

३—(Variable) सम्बन्धों द्वारा आदतों की दृढ़ता की उच्च से उच्च सीमा को बताता है।

पुर्नबलन (Reinfoncement) और इसकी पूर्ति का बच्चों की प्रारम्भिक शिक्षा में बड़ा महत्व है। छोटे बच्चे आवश्यकता को न्यून करने की तुरन्त और वेगपूर्ण माँग करते हैं। अक्सर मेधावी बच्चे अपनी अभ्यास पुस्तिका को जचाने और नम्बर लेने के लिए लाते हैं और तत्कालिक प्रशंसा द्वारा प्रेरणापूर्ति (need reduction)भी करना चाहते हैं। तीन से पाँच वर्ष के छोटे-छोटे बच्चों के वार्तालाप में अधिकतर आवश्यकता को न्यून करने के संकेत मिलते हैं—"मैं अच्छा लड़का हूँ न ?" "क्या मैं अच्छा नहीं हूँ ?" "अम्मा, यह ठीक है न्"। माँ बाप को बच्चों की आवश्यकता की तुरन्त पूर्ति किये बिना चैन नहीं मिलता। अक्सर यह कार्य की समाप्ति में देखने में आता है। इसी प्रकार से किसी भी व्यवहार या कार्य को सुधारने के लिए तत्कालिक दंड भी देना बहुत ही लाभदायक होता है।

बाद में जब आवश्यकता पूर्ति की माँग ज्यादा वेगपूर्ण व तेज नहीं रहती फिर भी अध्यापक को तत्काल उचित प्रशंसा व दंड देने में विलम्ब नहीं करना चाहिए।

(४) ज्ञान में परिवर्तन से सीखने का नियम

(Sign Learning through changes in Cognition)

उद्दीपक और प्रतिक्रिया के सिद्धान्त, जो भिन्न-भिन्न मात्राओं में कृत्रिम रूप से वर्णन किये गए हैं, इस मत को प्रकट करते है कि व्यक्ति आन्तरिक व बाध्य उत्तेजकों द्वारा मार्ग में चलने को बाध्य किये जाते हैं। व्यक्तियों के लिए आन्तरिक व बाह्य उत्तेजक या उद्दीपक चाबुक का काम करते हैं। वे शुद्ध गतियों के तारतम्य को सीखते हैं जिससे उपयुक्त वातावरण के उत्तेजकों व प्रेरणों की अवस्थाओं में वे प्रकट हो सकें। दूसरी अन्य सम्भावना यह भी हो सकती है कि सीखने वाला मानचित्र (map) का सा प्रयोग कर रहा हो। दूसरे शब्दों में बच्चा गतियों (movements) को न सीख कर अर्थ (meaning) को सीखता है। Tolman (टौलमैन) के Theory of Sign learning का यही अभिप्राय है। Tolman सम्बन्धवादियों (Connectionists) के सुझाव को एकदम अस्वीकार कर देता है कि मनुष्य अथवा पशु किसी परिस्थिति में ही कुछ करने

को सीखते हैं। उनका मत है सीखने का परिणाम बहुत ही विस्तृत व प्रवित होता है। S–R के सीमित सम्बन्ध तक ही वह नहीं रहता।

चूहे के सीखने के व्यवहार के अध्ययन से वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उस जानवर की प्रतिक्रियाएँ बहुत कम अनायास थीं। वह पशु बड़े ही सक्रिय व सुसंगठित ढङ्ग से किसी समस्या की ओर अग्रसर होता था। जैसा कि पहिले ही कहा गया कि ज्ञानात्मक मानचित्रों (Cognitive maps) के निर्माण से ही सीखने की क्रिया होती है। चूहा अपने रास्ते को समझता है। वह पुनर्वलन (Reinforcement) की क्रिया से निश्चित् व्यवहारों का केवल क्रम ही नहीं सीखता। पुरस्कार (Reward), दंड, और सम्बद्ध प्रत्यावर्तन (Conditioning) चूहे को यह बताने के लिए कि इस रास्ते से आये और उस रास्ते की तरफ न जावे केवल संकेत (sign) मात्र है न कि अभिकर्ता (agent) जो इनसे सम्बन्धित क्रियाओं का बिलयन (inhibition) करता है या उनको अपनाता (Stamp in) है।

टौलमैन (Tolman) के सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए हम कक्षा से असंख्य उदाहरण संग्रह कर सकते हैं। Block Test का प्रयोग, हिसाब में क्रिया (performance) और छोटी मोटी दक्षता (Skill) स्वतः संगठित होती हैं। वस्तुतः जहाँ शिक्षक अनायास, उद्देश्य विहीन प्रयास और त्रुटि की क्रिया को कक्षा में देखे तो उसे जान लेना चाहिये कि कहीं पर गड़बड़ है। कक्षा में सीखने की मुख्य विशेषता है कि पहिली अवस्था के बाद स्वतः संगठित क्रिया ही होगी।

(५) अवयवीवाद का सिद्धान्त (Gestalt theory)*

तथा सूझ से सीखना (Learning by insight)

शताब्दी के पूर्वार्ध में अमरीका में सम्बन्ध मनोविज्ञान (association psychology) में बाद विवाद उठ खड़ा हुआ। चेतना-रचनावाद (Structuralism), चेतना-कार्य-वाद (Functionalism) और व्यवहारवाद (Behaviourism) आदि सभी Association family (सम्बन्धवाद) के सदस्य थे। उस समय फ्रायड (Freud) और मैग्डूगल (Mc Dougall) आदि विरोधियों को सुना नहीं गया। इसी समय अवयवीवाद सिद्धान्त (Gestalt

* **गैस्टाल्ट** (Gestalt) **का अर्थ है पूर्ण** (whole)। **इसको** Gestalt psychology **क्यों कहते हैं यह आगे पढ़ने से ज्ञात हो जावेगा :**

doctrine) ने, जिसने अमरीका में प्रचलित सीखने के सम्बन्धी सिद्धान्तों को प्रभावित किया, तहलका मचा दिया। कोहलर (Kohler) की पुस्तक Mentality of Apes सन् १९३५ में और काफका (Koffka) की पुस्तक Growth of the mind सन् १९२४ में अङ्गरेजी में प्रकाशित हुईं। इन पुस्तकों ने सीखने के मनोविज्ञान में काफी प्रभाव डाला। सम् १९१२ में Max Wertheimer (वरदाइमर) द्वारा घोषित किये जाने के पूर्व इस सिद्धान्त का जर्मनी में विकास किया जा रहा था। परन्तु इन पुस्तकों के प्रकाशन और Kohler और Koffka की अमरीका-यात्रा ने अमरीकी मनोवैज्ञानिकों का ध्यान इस सिद्धान्त की ओर आर्कषित किया। काफका (Koffka) की पुस्तक ने अमरीकी सीखने के सिद्धान्त को अधिक प्रभावित किया क्योंकि इस पुस्तक में थार्नडाइक के प्रयास और त्रुटि (Trial and Error) नियम की विषद आलोचना की गई थी। सर्व प्रचलित सिद्धान्त की यह कटु आलोचना थी। थार्नडाइक (और व्यवहारवाद (Behaviourism) ह्लालांकि थार्नडाइक इस विचारधारा में नहीं आते) पर की गई आलोचना की पुष्टि कोहलर (Kohler) के सर्व विदित बन्दरों पर किये गए प्रयोगों द्वारा तथा उसकी उस पुस्तक द्वारा जो कि काफका (Koffka) की पुस्तक से मिलती जुलती है की गई। Kohler की पुस्तक ने 'प्रयास और त्रुटि' के नियम के स्थान पर सूझ द्वारा (insight) सीखने के नियम का प्रतिपादन किया। उसने यह दिखा दिया कि गलत प्रतिक्रियाओं (incorrect responses) को दूर कर और सही प्रतिक्रियायों (Correct responses) को अपनाने की कठिन व लम्बी थार्नडाइक द्वारा प्रतिपादित क्रिया के बिना ही बन्दरों ने कितनी जल्दी प्रशंसनीय कार्य कर लिया। बन्दरों ने सन्दूक और छड़ को उपकरणों के रूप में प्रयोग किया और उन्होंने क्रिया की समाप्ति को उद्देश्य न मानकर कार्य की समाप्ति को एक साधन मात्र माना।

कोहलर (Kohler) के बन्दरों पर किये गए प्रयोग सन् १९१३–१७ के बीच अफीका के Tenerifa नामक द्वीप और समुद्र के किनारों पर किये गए। इन प्रयोगों के सम्बन्ध में लिखी गई पुस्तक अंगरेजी में शीघ्र ही प्रकाशित हुई जिसका पाठकों ने खूब स्वागत किया। सूझ के सम्बन्ध में किये गए दो प्रयोगों ने अमरीकी जनता व मनोवैज्ञानिकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। यह समस्यायें थीं—Box problem (सन्दूक-समस्या) और (Stick problem) (छड़-समस्या)

एक बक्स वाली परिस्थिति में—चिन्पैंजी के पिंजड़े की चोटी पर एक केला जैसी लालच वाली चीज़ रख दी गई। परन्तु यह चीज़ बन्दर की पहुँच

के बाहर थी। परन्तु पिंजड़े में सुलभ बक्स पर चढ़कर कूदने से यह पाई जा सकती थी। चिम्पैंजी के लिए यह कठिन समस्या थी। केवल Kohler के बुद्धिमान बन्दर सुल्तान (Sultan) ने इसे बिना किसी सहायता के हल कर लिया। छः और बन्दरों ने इसे हल कर लिया यद्यपि उन्हें प्रारम्भ में एक बार केले के नीचे बक्स रखकर या अन्य बन्दरों को बक्स का प्रयोग करते हुए दिखाकर सहायता करनी पड़ी थी। केवल दूसरों की नकल मात्र से यह समस्या हल नहीं की गई। दूसरे लोगों ने केवल बक्स को कूदने का साधन मात्र ही दिखलाया था पर बक्स को लालच की वस्तु के पास न हटाया या रक्खा गया। जब यहसमस्या हल हो गई तब चिम्पेंजी के पिंजड़े में केवल एक सन्दूक व केला रखा गया। अब केले को पाने के उद्देश्य से मुड़कर वह बक्स को यथास्थान पर रखने में लग गया। उसका यह सूझ से भरा पूरा पृथक्कृत (detour) व्यवहार कोलहर के अनुसार मुख्य विशेषता थी।

दूसरे प्रयोग में एक बक्स के ऊपर दूसरा बक्स रखने पर ही केले तक पहुँचा जा सकता था। यह समस्या पहिले वाली से कठिन थी। इस बार दो समस्यायें थीं—एक ओर समस्या थी कि समाधान (for solution of problem) के ढाँचे में दोनों बक्स को उपयुक्त रूप से लगाना और दूसरी ओर गुरुत्वाकर्षण समस्या (Gravitional problem) को सुलझाकर दो बक्सों से एक रचना करना। कोहलर के कार्यों के द्वितीय वर्णन में बुद्धि पर विशेष बल दिया गया है जो इस समय बन्दर ने दिखलाई। उसमें बन्दरों द्वारा प्रदर्शित मूर्खताओं का भी दुखी होकर विवरण दिया है। बक्सों के ढेर लगाने की समस्या में कोहलर का विश्वास है कि बन्दर ने एक बक्स का दूसरे बक्स पर रखने में सूझ दिखाई परन्तु दो बक्सों की बनावट को टिकाऊ बनाने में नहीं। इस भौतिक टिकाऊपन, जो कि बाद की बनावट में प्रदर्शित हुआ, की जड़ 'प्रयास और त्रुटि' के नियम में निहित है।

छड़ी की समस्या में एक या दो छड़ी को साधन के रूप में पिंजड़े में रख दिया जाता है। पिंजड़े के बाहर खाना रख दिया जाता है जो छड़ी से खिसकाया जा सकता है। जब चिम्पैंजी ने छड़ी को उपयोग में लाना आरम्भ किया तो वहीं विदित हो गया कि वह सूझ से काम ले रहा है हालांकि कभी-कभी उसने असफलतापूर्वक छड़ी को केले पर फेंक दिया और वह खो गई। एक बार सफल प्रयोग के बाद चिम्पैंजी ने तत्परता से उसे पता लगाकर उसका प्रयोग कर लिया। सुल्तान द्वारा एक परिस्थिति में इसका नाटकीय ढङ्ग से प्रयोग किया गया जिसमें कि दो छड़ियों को मछली पकड़ने वाले छड़ की तरह जोड़

दिया जिसके बिना केवल एक छड़ी द्वारा केले तक नहीं पहुँचा जा सकता था। यह अवश्य था कि इस क्रिया में काफी समय लगा। प्रारम्भ में दो छड़ियों को जोड़ने को अकस्मात की भी संज्ञा दी जा सकती है। एक बार छड़ियों के इस सम्बन्ध को देखकर सुल्तान ने इसके अन्दर निहित विचार को भलीभांति समझकर बार-बार सफलतापूर्वक इसका प्रयोग किया। एक छड़ी के सिरे में दूसरी छड़ी को जोड़ने की क्रिया को सुल्तान बड़ी ही सरलता से कर लिया करता था। इन्हीं प्रयोगों के आधार पर कोहलर व काफका ने थार्नडाइक के सिद्धान्त का विरोध किया।

कोहलर और काफका का यह आक्रमण विशेषतः थार्नडाइक पर ही था पर इसका आगमन उस समय हुआ जब अमेरिका में मनोविज्ञान मजबूत व्यवहारवाद के चंगुल से आक्रान्त था। ऊपर से देखने में हमें आश्चर्य होता है कि सूझ जैसे साधारण व सुपरिचित नियम को समझने में आखिर इतनी उथल पुथल क्यों हुई ? परन्तु उस समय (वाटसन) Watson के व्यवहारवाद ने सीखने के परिमार्जित रूप का आधार प्राप्त कर लिया था जिसके अनुसार जीव वातावरण के धक्के व खिचाव द्वारा खिलाया जाता है और उनके प्रति मूर्खतापूर्ण प्रतिकिया करता रहता है। Leoyd Morgan's के सिद्धान्त ने पशुओं से उच्च मानसिक शक्तियों की अस्वीकृत कर मनुष्यों में भी इनका सर्वथा अभाव बतलाया। इस सिद्धान्त को व्यवहारवाद के माध्यम से सफलता मिली। इस कारण से सूझ के प्रयोगों द्वारा खोई हुई बुद्धिमत्ता(sainty) की प्राप्ति ने अध्यापकों व अन्य लोगों में आशा का संचार किया। इन लोगों ने सोचने व समझने की शक्तियों की पुनः वापिसी देखी। 'सूझ' (Insight) के सम्बन्ध में यह कोई नया अनुसंधान न था। साधारण मनुष्यों ने इसे कभी भी न त्यागा था। उपरोक्त विचित्र सिद्धान्त से प्रभावित हुये बिना भी लोगों ने सूझ के तथ्य को अस्वीकार नहीं किथा था। परन्तु कोहलर ने अमेरिकी मनोवैज्ञानिक जगत में पुनः इसकी स्थापना की। एक रूप में यह परिवर्तन का समय था और कोहलर के प्रयोगों ने थार्नडाइक और वाटसन (Watson) के नकारात्मक विचारधाराओं से मनोवैज्ञानिक जगत को मुक्त किया।

कोहलर और थार्नडाइक के बीच का विरोध सूझ व 'प्रयास और त्रुटि' नियमों पर था। दूसरे शब्दों में यह विरोध बौद्धिक सीखने और मूर्खतापूर्ण सीखने के बीच था। परन्तु अवयवीवाद मनोविज्ञान (Gestalt Psychology) और सामूहिक मनोविज्ञान (Association psychology) के बीच का विरोध और भी गहरा था। अवयवीवाद (Gestalt movement) और

गेस्टाल्ट प्रत्यय से प्रभावित लोगों के बीच असंख्य भिन्नतायें हैं। कोहलर (Kohler) और काफका (Koffka) तो वरदाइमर (Wertheimer) के ज्यादासमीप थे जो कि इस विचारधारा के प्रवर्तक थे। लिविन (Lewin) जो जर्मनी का आदि निवासी था उसने इस सम्बन्ध में और नये अनुसंधान किये।

अवयवीदाद दृष्टिकोण से सीखने की समस्यायों का विषद व क्रमिक विवरण काफका (Koffka)की "Principles of Gestalt Psychology" नामक पुस्तक में मिलता है।

सर्व प्रथम अवयवीवाद का सम्बन्ध प्रत्यक्षीकरण (Perception) की समस्या से है। १६ हवीं शताब्दी में प्रचलित मानसिक अणुवाद (mental atomism) के विरुद्ध यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया। मानसिक अणुवाद के अनुसार कोई भी प्रत्यक्ष अनुभव, (perceptual experience) जो अणुओं में विभक्त किया जा सके, शुद्ध संवेदना (sensation) द्वारा निर्मित होता है। इस प्रकार से आनन्ददायक बर्फ़ के लैमन के पीने के प्रत्यक्ष अनुभव को हम संवेदनात्मक विशेषताओं—ठण्डा, भीगा, फल के स्वाद वाला, मीठा, पीला, स्वच्छ, भारी तत्वों, में विभक्त कर सकते हैं। परन्तु अवयवीवाद वाले मनोवैज्ञानिक इसका विरोध कर कहेंगे कि इन विशेषताओं के अतिरिक्त और भी कुछ शेष रह जाता है और वह है पीने का पूर्ण अनुभव। उन लोगों का कहना है कि किसी भी घटना, दृश्य, वस्तु या तथ्य का सम्पूर्ण रूप (gestalt) ही मुख्य तथ्य है। दृश्य या घटना स्वयं अपने बारे में अपने आप बतलाती है। अवयव (gestalt) या रूप एक सम्पूर्ण होता है जिसकी विशेषतायें उसके व्यक्तिगत तत्वों के आधार पर निर्धारित होने की अपेक्षा सम्पूर्ण के आंतरिक स्वभाव पर की जाती है (A gestalt or form is a whole whose characteristics are determined not by the characteristics of its individual elements but by the internal nature of the whole)। दृश्य,पूर्ण या अवयव अपने बारे में कैसे बतलाते हैं इसकी जाँच उनके आकार, रूप, रंग, गति की समस्यायों को समझने के बाद ही हो सकती है।

दूर रेल की पटरी की चौड़ाई हमें उतनी ही दीख पड़ती है जितनी हमारे पैरों के नीचे जब कि ज्ञानेन्द्रियों (sensed) द्वारा जानी चौड़ाई कम है। अवयवीवाद मनोवैज्ञानिकों ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है कि रेल की पटरी की चौड़ाई का निर्णय पूरे दृश्य, जो हमारे आँखों के सम्मुख है, के कार्य द्वारा होता है। यह आकार की स्थाईपन (constancy of form) का उदाहरण है।

इसी प्रकार से रंग(tone) के स्थाई पन (constancy) की भी विवेचना की जा सकती है। हमें कोई कागज सफेद दिखलाई पड़ता है जब कि उस पर कई जगह पर काले धब्बे हों। हम रंग व स्थाईपन को सम्पूर्ण दृश्य के रूप में निश्चित करते हैं।

एक और दूसरा भी प्रयोग है जिसके द्वारा यह ज्ञात किया जा सकता है कि प्रत्यक्षीकरण में पूर्ण दृश्य उसके एक अङ्ग को प्रभावित करता है। इस प्रयोग के लिये एक सफेद कागज के ऊपर एक कार्डबोर्ड (एक वर्ग इंच का) लटका दिया जाता है। इसके सामने एक बिजली का बल्व इस प्रकार रखा जाता है कि कार्डबोर्ड की छाया सफेद कागज में दीखने लगे। इस छाया को देखने से ऐसा मालूम होगा जैसे कि कोई सफेद चीज छाया में हो। अब इस छाया के चारों ओर पेंसिल से रेखा खींच दीजिये तो ऐसा प्रतीत होगा कि एक काली भूरी रंग की चीज कागज पर बनी है। इस रेखा ने भूरे धव्वे का सम्पूर्ण परिस्थिति (Whole situation) से प्रथक्करण (Detached) कर दिया। कलाकार चित्र के चारों ओर चौखट (Frame) इसीलिये लगाते हैं कि उस चित्र का दृश्य अलग से स्पष्ट दिखाई दे और देखने वाले उसका अधिमूल्यन (appreciation) कर सकें।

अवयवीवाद के सम्बन्ध में हम एक और प्रवृति का अनुभव करते हैं जिसे 'दृश्यप्रतीपायन' या 'Phenomenal regression' कहते हैं। इस विषय का सबसे पहले अध्ययन थ्यूलैस (Thouless) ने किया था। जब कभी बच्चा गिलास की शक्ल बनाता है तो गिलास के ऊपरी भाग को वह वृत्ताकार (Circular) बनाता है और न कि अन्डाकार (elliptical)। क्योंकि ज्ञाने-न्द्रियों से वह ऊपरी भाग को अन्डाकार ही देखता है परन्तु बनाता वृत्ताकार ही है इसलिये कि वह यह जानता है कि गिलास का ऊपरी भाग वृत्ताकार होता है और उसी चीज को वह बना रहा है। इसीलिये यह गलती हो जाती है।

वरदाइमर (Wertheimer) के शब्दों में हम अवयव (Gestalt) की विशेषतायें केवल उसके भागों पर ही नहीं बल्कि उसकी आन्तरिक रचना द्वारा निर्धारित करते हैं। यहाँ तक कि प्रत्येक भाग का जो कि सम्पूर्ण का ही अंग है निर्धारण सम्पूर्ण से ही होता है। केवल चार साधारण प्रत्यक्षात्मक दृश्य (Perceptual phenomena) वरदाइमर के विचारों की पुष्टि करते हैं जो नीचे दिये गये हैं।

सबसे पहिले सर्वविदित नेत्र च्युति (Optical illusion) का उदाहरण

हमारे सम्मुख है। निम्नलिखित चित्र में A B और C D सीधी व समानान्तर रेखायें हैं परन्तु चित्र (१) में वे वक्र रेखायें दृष्टिगोचर होती हैं।
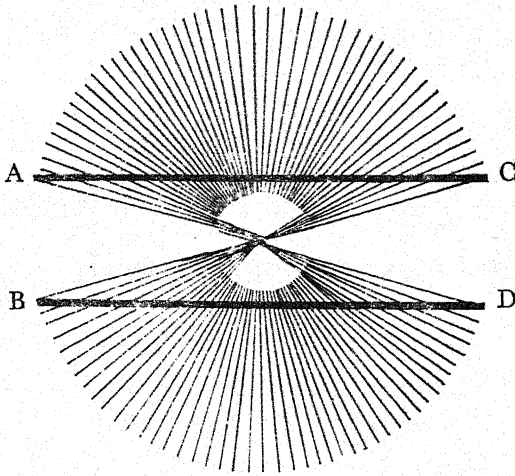
चित्र (१)

यदि हम किसी सम्पूर्ण में से किसी अङ्ग को निकाल दें अथवा उसमें कुछ जोड़ दें तो हमें सम्पूर्ण में परिवर्तन दिखाई देगा। यह परिवर्तन उसमें घटाये या जोड़ देने वाले अङ्ग के अनुपात में नहीं होगा। निम्नलिखित चित्रों से यह स्पष्ट हो जाता है।
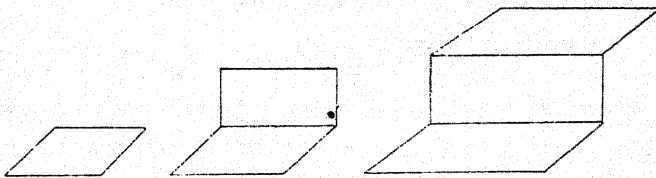
चित्र (२) चित्र (३) (चित्र ४)

इन चित्रों में प्रत्येक दशा में तीन रेखायें जोड़ी गई हैं और प्रत्येक चित्र की आन्तरिक रचना में परिवर्तन हुआ है। इससे सिद्ध हुआ कि प्रत्यक्षात्मक पूर्ण (Perceptual whole) उसके सभी भागों के योग से कहीं अधिक है।

एक और सर्वविदित दृश्य (Phenomenon) अस्पष्ट चित्रों का है जिसमें उसके रूप का पहिला भाग प्रधान हो जाता है फिर बाद वाला भाग। निम्नलिखित

चित्र में पहिले (a) किनारा चमकता है और फिर 'b' और इसी तरह से अन्य।
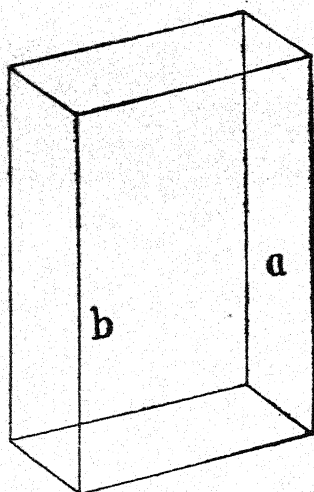
चित्र (५)

यहाँ पर भी हमें सम्पूर्ण का किसी भाग के प्रत्यक्षीकरण पर स्पष्ट प्रभाव का प्रमाण मिलता है।

इसी प्रकार से हम विभिन्न वस्तुओं के रंग और आकार का सम्बन्ध अच्छी व धुंधली रोशनी में समान देखते हैं चाहे सूर्य की रोशनी हो या बिजली की। सफेद वस्त्र दिन व रात दोनों समय सफेद दीखते हैं क्यों ?

अवयवों का निर्माण (Formation of gestalts)

पूर्ण सरूपों (Whole configurations) के बनने का तथा यहाँ अवयवों (Gestalts) तथा उन तत्वों (Factors) का जिनसे वे प्रभावित होते हैं अध्ययन करना आवश्यक प्रतीत होता है।

कॉफका के मतानुसार संरूप (Configuration) उचित दशाओं के होने पर बिल्कुल स्पष्ट दिखाई देने लगता है।

"Configurations tend to become as clear as the conditions allow" हम सदा चित्र को पहले देखते हैं न कि उसकी जमीन को। यह प्रवृति सब में होती हैं।

अच्छे अवयवों के संगठन के नियम को Law of Precision या (Prag-

nanz)[1] कहते हैं। Pragnanz का नियम संगठनों की निश्चित दिशा को बतलाता है। इस नियम के अनुसार मनोवैज्ञानिक संगठन एक निश्चित दिशा की ओर होते हैं न कि दूसरी ओर। संगठन सदा एक अच्छे पूर्णाङ्क (Good gestalt) की ओर होते हैं। इसके अलावा उस समय की व्यापक दशाओं के अनुसार भी संगठन अच्छा या बुरा होता है। एक अच्छे अवयव या पूर्णाङ्क में नियमिता (regularity), सरलता (Simplicity), तथा स्थाईपन (Stability) आदि गुण होते हैं। कॉफका ने संगठन के नियमों का सीखने की समस्यायों पर प्रायः बड़े ही तार्किक ढङ्ग पर प्रयोग किया है। पर यदि उसके विषय में एक क्रम होता तो उसके तर्कों के निम्नलिखित पद होते। एक मुख्य नियम— The law of pragnanz—होता और चार संगठन के नियम उसकी अधीनस्था में होते।

(१) समानता का नियम (Law of similarity), (२) समीपवर्ती का नियम (Law of proximity), (३) समाप्ति का नियम (Law of closure) तथा (४) अच्छी तरह जारी रखने का नियम (Law of good continuation)

समानता का नियम (Law of Similarity)

यह नियम सन् १९२३ में वरदामर (Wertheimer) द्वारा बनाया गया। उसने इसे प्रत्यक्षीकरण में रेखाओं के या विन्दुओं के समूहों के बनने के सिद्धान्तों के निर्धारण में किया। इसके अनुसार एक ही प्रकार के रंग और रूप वाले पद या वस्तु प्रत्यक्षीकरण में एक समूह (Group) में दीखते हैं। निम्नलिखित चित्र इसका स्पष्टीकरण कर देगा।
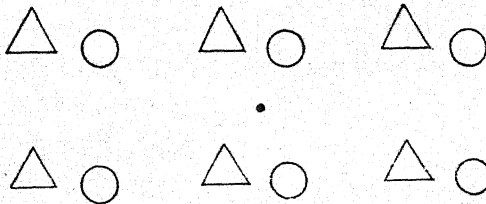
चित्र (६)

यहाँ हम एक दम वृत और त्रिभुजों के ६ जोड़ों को देखते हैं न कि वृत व त्रिभुज के बारह अलग-अलग चित्र। कॉफका ने इसका प्रयोग

१ Pragnanz एक जर्मन भाषा का शब्द है। जिसका अनुवाद अंग्रेजो में अपर्याप्त रूप से pragnancy हुआ है। इसका अर्थ है (Compact but significant)

स्मृति झलक (Memory trace) के चुनाव में एक क्रिया द्वारा किया है जो कि पुनर्स्मरण के समय सक्रिय रहती है। उस झलक का चुनाव एक उत्तेजक क्रिया (excitatory process) द्वारा होगा जो सम्पूर्ण वही विशेषतायें रखती है। पहिचान (Recognition) करने में पर्याप्त रूप से इसका अर्थ समझा जा सकता है जिसमें एक नया मुख पूर्व परिचित भावना के अनुसार पुनर्स्मरण किया जाता है।

समीपवर्ती का नियम (The law of proximity)

प्रत्यक्षीकरण में समूह अपने अङ्गों की निकटता के अनुसार बढ़ावा पाते हैं। यदि एक पृष्ठ पर कहीं दूर दूर और कहीं नजदीक नजदीक रेखायें खींच दें तो निकट की रेखायें आपस में मिलकर समूह के रूप में दीखेगी। निम्नलिखित चित्र में हम चार रेखाओं के तीन समूह देखते हैं न कि एक साथ बारह रेखायें।

चित्र (७)

यही चीज हम सुनने की क्रिया में भी पाते हैं जैसे कि Click की आवाज के समूह। परन्तु यहाँ का समूह अस्थाई होता है। स्मृति में प्रयोग होने पर यही नियम नवीनता के नियम (law of recency) में परिवर्तित हो जाता है। पुराने अनुभव (impressions) नए अनुभवों की अपेक्षा कम पहिचाने वपुनर्स्मरण किये जाते हैं क्योंकि नए अनुभवों की झलक समय के हिसाब से उस सक्रिय क्रिया के अधिक समीप हैं जो स्मृति की झलक का पुनर्स्मरण कराती है।

समाप्ति का नियम (Law of closure)

खुले क्षेत्रों की अपेक्षा बन्द क्षेत्र ज्यादा स्थाई प्रतीत होते हैं। इसी कारण
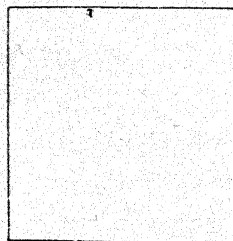
चित्र (८)

से प्रत्यक्षीकरण में वे तत्परता से चित्र बना देते हैं। ऊपर के चित्र (८) में अधखुले वर्ग को देखने वाले की प्रवृत्ति उसे बन्द करने की होती है।

सीखने में इस नियम को लागू करने में यह प्रभाव के नियम (law of effect) का स्थान ले लेता है। यह तरीका सीखने में लाभदायक होता है।

कोफका के शब्दों में :—

"So long activity is complete, every new situation created by it is still to animal a transitional situatiotion, where as when the animal has attained his gial, he has arrived at a situation which is to him and end-situation.[१]

जब तक क्रिया पूर्ण है तब तक उसके द्वारा उत्पन्न परिस्थिति पशु को एक अस्थाई परिस्थिति ही मालूम होगी। जब पशु को अपना उद्देश्य प्राप्त हो जावेगा तब वह अपने को अन्तिम उद्देश्य की परिस्थिति में पावेगा।

समस्या-प्रधान परिस्थिति में पूर्ण को अपूर्ण के रूप में देखा जाता है और उसे पूर्ण करने का संघर्ष प्रारंभ हो जाता है। पूर्ण करने का यह दबाव ही सीखने की क्रिया का सहायक है और उसके समाप्त (closure) होने पर संतोष होता है। यही पूर्वोक्त उद्धरण का आशय है और इस बात को स्पष्ट करता है कि समाप्ति (closure) प्रभाव (effect) का स्थान लेता है।

शिक्षण में शिक्षक का कार्य है कि समस्या को इस प्रकार से उपस्थित करे कि बच्चों के सम्मुख वह कुछ न कुछ अपूर्ण रूप में न हो। कोई पाठ आवश्यकता से अधिक पढ़ाया जा सकता है और उसे overclosed अर्थात् आवश्यकता से अधिक समाप्त या बन्द कर सकते हैं। बच्चों के लिए भी कुछ न कुछ क्रिया रखनी चाहिये जिसको वे करें और समस्या को पूर्ण करें। अच्छा होगा कि मामूली काम रख छोड़ा जाय—एक ओर आवश्यकता से अधिक पूर्ण कार्य नहीं होना चाहिये और दूसरी ओर आवश्यकता से अधिक अपूर्ण कार्य भी बच्चे को न दिया जाना चाहिये जिससे वह हतोत्साहित हो जाय।

अच्छी तरह जारी रखने का नियम

(The Law of good continuation)

यह वरदाइमर का अन्तिम सिद्धान्त है जिसे कोफका ने अपना लिया है। हालांकि वरदाइमर के और भी सिद्धान्त है। प्रत्यक्षीकरण में संगठन इस प्रकार बनते हैं कि सीधी रेखा सीधी, वृत्त वृत्त ही और भी चीजें ज्यों की त्यों रहेगीं।

सूझ (Insight)—मनुष्य प्रयास और त्रुटि के नियम के अनुसार नहीं

१ Koffka, K. : 'Principles of gestalt Psychology' Harcourt Brace, Newyork, 1935.

सीखता है। वह सीखता है अपनी सूझ (insight) से। पशुओं में भी यह नियम काफी सीमा तक लागू होता है। कोहलर ने देखा कि बन्दर खाने की प्राप्ति के मार्ग की कठिनाइयों पर विजय मनुष्य के व्यवहार के समान ही करता है। सीखने का उसका व्यवहार बिल्ली और कुत्ते के समान न होकर मनुष्य के समान होता है। कोलहर ने देखा कि बन्दर ने अपने उद्देश्य से क्षण भर मुड़कर उसकी प्राप्ति के लिये अन्य अच्छे साधनों की खोज करने का भी प्रयत्न किया। इस सूझ-पूर्ण व्यवहार की 'प्रथवक्रत' (detour) विशेषता सबसे मुख्य वस्तु है। इस तरीके से सीखने वाला व्यक्ति समस्या को निष्पक्ष ढंग से देख सकता है। पूरी परिस्थिति का विश्लेषण करने के लिये वह क्षण भर उद्देश्य को भुला देता है, सीखने वाला उद्देश्य से ही दबा नहीं रहता पर वह अच्छे और अधिक प्रभाव शाली ढंगों की खोज में व्यस्त रहता है जिसका कि उसमें पूर्ण विश्वास होता हैं।

यह सूझ अच्छी भी हो सकती है और बुरी भी। जब हमें नये अनुभव होते हैं या हमारे सम्मुख नई सामग्री उपस्थित की जाती है तो हम सर्व-प्रथम उन्हें सही अर्थ देने का अथवा उनका अच्छा संगठन करने का प्रयत्न करते हैं। अवयवीवाद के मनोविज्ञान का यह निहित सिद्धान्त है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी सीखने की सामग्री को रचनाबद्ध या सुसंगठित करने में क्रियाशील रहता है। अन्त में प्राप्त सन्तोष ही सही होने का 'goodness' का पुरस्कार है। परन्तु सीखने वाले की पृष्टि भूमि कमजोर होने के कारण उसकी सही रचना (good structure) सही न हो। वह तो केवल उसके हिसाब से सही है। ऐसी हालत में शिक्षक को बच्चे की 'सूझ' में सहायता देनी चाहिये ताकि नई सामग्री का ठीक-ठीक अर्थ उसकी समझ में आ जाय; वह उसका हल सही कर सके; उसका सुसंगठन कर सके तथा उसकी सही सही रचना कर सके।

उदाहरण:—

जब बच्चों को बताया जाता है कि पृथ्वी घूमती है तो वह बड़ा ही महत्व पूर्ण प्रश्न पूंछते हैं :—

"If an aeroplane is taking rounds at a certain height from the earth without covering any distance why should it not land at some distant place from the point it had taken off ?

अर्थात् यदि कोई हवाई जहाज पृथ्वी के ऊपर निश्चित ऊँचाई पर स्थिर कर दिया जाय और कुछ समय बाद नीचे उतारा जाय तो वह अपने उड़ने के स्थान से कुछ दूरी पर क्यों नहीं उतरता ?

यह स्पष्ट ही है कि यह शिक्षक की पढ़ाई का दोष है। शिक्षक को पृथ्वी

की गुरुत्वाकर्षण शक्ति (Gravitation of the earth) के नियम को बताकर बच्चों की 'सूझ' को बढ़ाना चाहिये।

हिसाब में सूझ की कमी के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

निम्नलिखित चित्र में 60° के कोण तीन स्थानों पर अंकित किये गये हैं।
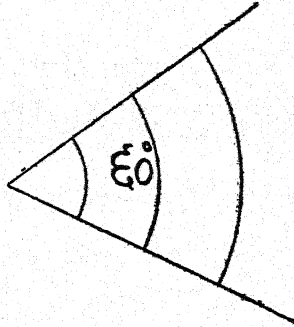
चित्र (६)

बच्चों को समझने में कठिनाई होती है कि तीनों स्थानों पर के कोण 60° के ही क्यों है जबकि इन बिन्दुओं पर के चापों की लम्बाई में काफी अन्तर है। बच्चे कोण (angle) के प्रत्यय (concept) को ठीक-ठीक प्रकार से नहीं समझते क्योंकि हो सकता है शिक्षक ने उन्हें यह नहीं बताया कि कोण दो रेखाओं का मिलन-बिन्दु न होकर एक रेखा का दूसरी रेखा पर झुकाव है। भिन्न की एक परीक्षा में सब बच्चों ने $\frac{2a}{2}=a$ को सही तरीके पर किया। लगभग सभी ने $\frac{4}{2a}$ का ठीक ठीक उत्तर निकाला। पर जब उनसे $\frac{6}{6a+6b}$ को सरल करने (simplification) के लिये कहा गया तो वे असफल रहे। गलत उत्तर इस प्रकार थे—$a+6b$, $\frac{0}{a+6b}$, $a+b$,इत्यादि

इन उत्तरों से स्पष्ट मालूम पड़ता है कि बच्चों में भिन्न के तरीकों से भाग के अर्थ में रचनाबद्ध सूज (structural insight) नहीं है—(अंश) numerator और (हर) Denominator के संबंध को भी वे नहीं समझ पाते और न $ax+ay=a(x+y)$ प्रतीक द्वारा व्यक्त किये associative rule का उनको ज्ञान है।

किसी नई सामग्री के सुलझाने अथवा किसी दक्षता को सीखने की सूझ को उस दक्षता के विभिन्न भागों का विश्लेषण कर व उसके पारस्परिक संबंधों को जोड़कर सुधारा जा सकता है। इसे verbalisation कहते हैं। यदि किसी को 'disc' फेंकना सीखना है तो उसे इस प्रकार समझाया जा सकता है:—दाहिने हाथ में 'disc' को पकड़ो और उस हाथ की बाँह को कन्धे से समकोण बनाते हुए रखो—बायाँ हाथ पीठ पर होना चाहिये—अब तीन बार घुमकर 'disc' फेंकों। इसी प्रकार से बीजगणित की उस भिन्न को, जिसके काफी अशुद्ध उत्तर दिये गये थे, यदि हम विचार करें तो हमें मालूम होगा कि उसमें सूझ नहीं उत्पन्न की जा सकी थी। असफलताओं को करने का एक यह तरीका हो सकता है कि बच्चों से सारी क्रिया (operation) को शाब्दिक रूप देने को कहा जाय। जैसे $\frac{2a}{n}$ का इस प्रकार से शाब्दिक रूप में वर्णन किया जा सकता है—

किसी संख्या को दूना कर उसको एक दूसरी संख्या भाग दे दो।

जिन विषयों में शब्दों का अधिक प्रयोग होता है उनमें मौडल (model) दिखाने से अच्छी सूझ उत्पन्न की जा सकती है।

ज्यामिति में विभिन्न आकारों के मौडल बच्चों को शक्लों को समझने में सहायक होते हैं। स्कूल के इतिहास में क्रमबद्ध घटनाओं और प्राचीन पूर्वजों के संबंधों को (Genealogical relationship) को नक्शों व चार्टों के द्वारा दृढ़ किया जा सकता है। इस बात का स्मरण रखना चाहिये कि मॉडल यदि जटिल हो गया तो वह structure की सहायता न करेगा।

(६) अहं ग्रस्त का सिद्धान्त तथा महत्वांक्षा का ऊँचा करना

(Ego-involvement and raising the level of aspiration)

सीखना हमेशा अभिरोचन (Motivation) द्वारा हुआ करता है। जब बच्चा उद्दीपक प्रतिक्रिया या सम्बद्ध प्रत्यावर्तन या पुनर्बलन (reniforcement) द्वारा सीखता है तो बाह्य पुरस्कार ही अभिरोचन का श्रोत होता है—ऐसा पुरस्कार जो सन्तोषजनक हो। सूझ के द्वारा सीखने में अभिरोचन आन्तरिक जगत से उमड़ता है। व्यक्ति के सामने यदि समस्या आती है तो उसका व्यवहार उसे समाप्त (closure) करने को होता है। पूर्ण अथवा समाप्त करने की प्रवृत्ति ही सीखने की सहायक क्रिया होती है और समाप्ति (closure) सन्तोष प्रदायिनी होती है। आन्तरिक प्रयोजक (internal motivating factor) जो अहं-ग्रस्त (ego.involvement) सिद्धान्त में निहित है अन्य प्रकार का

होता है। इस प्रकार अभिरोचन तब प्रकट होता है जब हम किसी कार्य को पूराकरने की अपनी शक्ति को चुनौती (challenge) देते है। एक विद्यार्थी बड़े ही परिश्रम से हिसाब तथा अन्य विषय पढ़ता है। क्योंकि वह अनुभव करता है कि उस विषय में अच्छी श्रेणी प्राप्त करने से माता-पिता व समाज की दृष्टि में ऊँचा उठेगा और सर्वत्र प्रशंसा का पात्र बनेगा। यह अभिरोचन आवश्यकता को न्यून (need reduction) करने के रूप में है। एक लड़का अपने 'स्वान्तः सुखाय' आनन्द के लिए अध्ययन करता है। वह दूसरों को प्रसन्न करने के लिये नहीं पढ़ता। उसके अनुसार विद्या वह क्रिया है जिसमें विशेषज्ञ के ज्ञान की आवश्यकता है। यह दूसरे प्रकार का अभिरोचन है। यह भी संभव है कि अपनी शक्ति व सामर्थ्य को चुनौती देकर कोई विद्यार्थी विश्वविद्यालय में स्थापित रेकार्ड से ऊपर उटने की कोशिश करे। इसलिये नहीं कि वह दूसरों को खुश कर सके परन्तु चुनौती को पूरा करने के लिये। यह तीसरे प्रकार का अभिरोचन है जिसमें सीखने वाला अपनी शक्तियों को चुनौती देता है। ऐसी दशा में वह व्यक्तिगत रूप से उत्तेजित होकर व गम्भीरता से काम पर जुट जायगा और हम कहेंगे कि वह अहं-ग्रस्त होगया है। अंह-ग्रस्त (Ego-involvement) का आशय है कि व्यक्ति का किसी कार्य में पूर्ण रूप से डूब जाना। जब कोई व्यक्ति सक्रियता से किसी कार्य में जुटता है तो वह नए स्तर को विजय करने की वीणा उठाता हैं जिसे हम महत्वकांक्षा का स्तर (Level of aspiration) कहते हैं। पुरानी असफलताऐं इस स्तर को निम्न तथा पिछली सफलताए इस स्तर को ऊँचा उठाती हैं। किसी के समूह या कक्षा का स्तर भी व्यक्ति के स्तर को प्रभावित करता है। मंद बुद्धि वाले विद्यार्थियों की कक्षा में मेधावी लड़कों का Level of aspiration 'महत्वकांक्षा का स्तर' नीचे गिर सकता है।

अध्याय ३

स्मृति क्या है:—

स्मृति (Memory)

स्मृति वह नवीन अनुभव (exeperience) है जो किसी पूर्व अनुभव द्वारा उत्पन्न की गई मनोवृत्ति (disposition) से ज्ञात की जाती है। स्मरण करते समय व्यक्ति को अपने पूर्व अनुभव का बोध होता है। 'A memory is a new experience determined by the dispositions laid down by a previous experience the relation between the two being clearly apprehended.

स्मृति की परिभाषा जानने के पूर्व हमें निमी (Mneme) का अर्थ समझ लेना आवश्यक होगा। निमी (Mneme) मस्तिष्क की वह शक्ति है जिससे भूतकाल के अनुभव धारण (Conserve) किये जा सकते हैं। उदाहरण स्वरूप एक कुत्ता, जो मानव के दुर्व्यवहार से अपरिचित है, बच्चों के समूह को देखकर प्रेम से भौंक-भौंक कर उनका स्वागत करता है। इसके बदले में बच्चे उस पर ईंट पत्थर फेंकते हैं। ईंट पत्थर की बौछार से आहत व घायल हो वह कुत्ता घर वापस लौट आता है। इस घटना के महीनों व वर्षों बाद भी वह मनुष्य अथवा बच्चे को देखते ही अपनी दुम को पैरों के बीच दबाकर दवे पाँव से जमीन पर झुक जाता है।

इन घटनाओं के तारतम्य को समझने के लिये हमें मानना होगा कि कुत्ते के अन्दर कुछ प्रवृतियाँ (Tendencies) एवं शक्तियाँ (capacities) अवश्य हैं। देखने की शक्ति एवं बच्चों की शरारतों में आनन्द लेने की प्रवृत्ति भी उसके अन्दर है। उनकी शरारतों और शोर को देखकर कुत्ता प्रसन्नता और चुनौती देने की दृष्टि से भौंकता भी है। बच्चों की नाना प्रकार की क्रियाओं के मध्य में इस विशेष प्रकार की क्रिया को निश्चित कर लेने की प्रवृत्ति, चोट लगने पर भय और दर्द अनुभव करने की शक्ति और इस प्रकार की भावनाओं के उभाड़ने पर भाग जाने की शक्ति भी उसमें मौजूद है। ये सब क्रियाएँ तथा इसी प्रकार की अन्य असंख्य क्रियाएँ मिलकर विभिन्न परिस्थितियों का सामना करने के लिए कुत्ते का मार्ग प्रशस्त करती हैं। मनोविज्ञान की भाषा में इसे स्वभाव या मनोवृति (disposition) कहते हैं। अनुभव (experience) के अनुसार स्वभाव में परिवर्तन होता रहता है। अतएव हमें कुत्ते के प्रारम्भिक तथा उसके तत्पश्चात स्वभाव के रूप के भेद को समझना आवश्यक है। घर लौट आने के वाद कुत्ता इस दुर्घटना के सम्बन्ध में फिर सोचता है अथवा इसे पुनः स्मरण भी करता है। इस सम्बन्ध में हालांकि कोई प्रमाण नहीं है, फिर भी यह देखने में आता है कि इस घटना के बाद यदि कुत्ता किसी अपरिचित व्यक्ति को जमीन पर झुके हुए देखता है, भले ही वह जूते के फीते को बाँधने के प्रयोजनों से झुका हो, तो वह एक दम उस घटना स्थल से नौ दो ग्यारह हो जावेगा। मानो कि उसने क्रिया को केवल देखा ही नहीं वरन् उससे उसे चोट भी पहुँची है। अतः स्पष्ट है कि उसके प्रारम्भिक स्वभाव में परिवर्तन हुआ और किसी दूसरी परिस्थिति के उपस्थित होते ही उसका दूसरा (secondary disposition) भी हमें दृष्टिगोचर होता है। अब प्रश्न है कि यह परिवर्तन हुआ क्यों ? इसका स्पष्ट उत्तर है कि कुत्ते के पिछले अनुभव ने उसके मस्तिष्क पर कुछ संस्कार के बीज डाल दिये थे और उसी का यह नया परिवर्तन परिणाम है।

स्मृति की अपेक्षा निमी (Mneme) अधिक व्यापक अर्थ का शब्द है। निमी ही level of apprehension को निश्चित करता है। हमारे सभी अनुभव निमी की आधार शिला पर टिके रहते हैं जबकि स्मृति का सहारा कुछ ही अनुभवों तक सीमित रहता है। "The subject must apprehend the relation between the present experience and a prior one, that is to say, an experience is memory only if it is experienced as a memory."

किसी को भी अपने गत एवं वर्तमान अनुभवों के बीच सम्बन्ध को अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि अनुभव स्मृति है यदि

इसे स्मृति की दृष्टि से देखा गया हो। यह कहना कि हमारे पिछले अनुभव सदा के लिए अन्धकार के गर्त में समा गये हैं किसी भी दृष्टिकोण से सत्य की कसौटी पर खरा न उतर पावेगा।

स्मृति का अर्थ क्रिया मात्र से है अर्थात् स्मरण करने की क्रिया। स्मरण करने के दौरान में हम चार अवस्थायें पाते हैं—रेकर्ड (record), धारण (retention), पुर्नस्मरण (recall) और पहिचान (recognition)। सबसे प्रथम हम किसी भी स्मरणीय सामग्री को रेकर्ड करते हैं—यहाँ पर हमारा आशय दुहराने, सम्बन्ध स्थापित करने और सीखने की क्रिया में बचत करने से है। इसके पश्चात हम उसी सामग्री को भिन्न भिन्न ममय पर धारण करते रहते हैं। इस अवस्था पर हम याद भी करते हैं और भूलते भी रहते हैं और अन्त में हम इस सामग्री को समयानुसार और प्रसंगानुकूल दूसरों के सम्मुख प्रस्तुत कर सकते हैं। इसकी जाँच हम पुर्नस्मरण एवं पहिचान द्वारा कर सकते हैं।

धारण (retention)—मानव मस्तिष्क की जातिगत विशेषता है कि वह अपने पिछले अनुभवों और याद की हुई चीज को सुरक्षित रख सकता है। जैसा कि पिछले पृष्ठों में कहा जा चुका है कि यह शक्ति 'निमी' है। यह शक्ति मानव और पशु दोनों में समान रूप से देखने को मिलती है। निम्न-श्रेणी के पशुओं में भी इसे आसानी से देखा जा सकता है। पशुओं में अपने स्वयं के अनुभवों को सुरक्षित करने की क्षमता से उनमें अपने पूर्वजों के भूत को स्मरण करने की क्षमता कहीं अधिक है। यदि यह न हो तो हम पशुओं के मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार (Instinctive behaviour) का स्पष्टीकरण कैसे करेंगे।

कुत्ते बहुधा लौटने के पूर्व कई बार चक्कर लगाते हैं। इस तथ्य को समझने के लिए हमें उनकी जाति की भूतकाल की अवस्था को समझना होगा। पक्षी-गण भी अपने घोंसले अपनी जाति के आधार पर बनाते हैं और वे समुद्र के निश्चितस्थानों से ही पार करते हैं। अतः सिद्ध हुआ कि 'निमी' ही जातिगत भावनाओं को सुदृढ़ बनाने में मदद करती है। हम स्वयं इस जातिगत निमी के नियम से छूटे नहीं है। हमारा विकास होता रहता है जोकि मानसिक व शारीरिक दोनों प्रकार की हमारी जातिगत परम्परा के आधार पर होता है।

निमी मस्तिष्क की धारण करने वाली साधारण शक्ति है। हमें यह भ्रम नहीं होना चाहिएँ कि गत अनुभव कहीं सुरक्षित रहते हैं और भविष्य में अवसर पाकर वह प्रकट हो जाते हैं। हमारा आज का अनुभव हमेशा के लिए अन्धकार में लीन हो जाता है और फिर उसके प्रकट होने का प्रश्न ही नहीं

उठता। अनुभव स्वयं सुरक्षित नहीं रहता है। बल्कि उसका परिणाम मस्तिष्क में हमेशा संचित रहता है और यह परिणाम और कुछ नहीं बल्कि संस्कार (engram) है जिनके सम्बन्ध में पीछे विस्तार पूर्वक लिखा जा चुका है।

सर्व प्रथम हमें कोई अनुभव होना चाहिए। हालाँकि इसका जिक्र स्मृति की परिभाषा देने के समय नहीं किया जाता परन्तु स्मृति को और अधिक स्थाई व अमर बनाने में इसका बड़ा हाथ है। वस्तुतः इन संस्कारों पर नियन्त्रण कर हम स्मृति का भी नियन्त्रण कर सकते हैं। धारण संस्कारों की दृढ़ता और व्यक्ति की स्नायुमण्डल (nervous system) की धारण शक्ति पर बहुत कुछ अवलम्बित रहता है।

पुर्नस्मरण (Recall)—सतत् अभ्यास एवं सामग्री को सुसंगठित कर पुर्नस्मरण शक्ति को तीव्र किया जा सकता है। यदि उत्तेजक प्रतिक्रिया (stimulus response) को सुदृढ़ बना दिया जाय, उसके बीच घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित हो सके तो निश्चित है कि भविष्य में उसी उत्तेजक के प्रकट होने पर वही प्रतिक्रिया होगी। यदि विवेकयुक्त सम्बन्ध अथवा सामग्री सुसंगठित है तो सम्पूर्ण का कोई भी भाग सरलता से पुर्नस्मरण किया जा सकता है।

पहिचान (Recognition)—पहिचान से आशय परिचय की भावना से है। दूसरे शब्दों में वह भावना जिसकी सामग्री का अनुभव पहले हो चुका है परन्तु वह नवीन प्रतीत होती है। इसे नियन्त्रित नहीं किया जा सकता।

सम्बन्ध या साहर्चय (Association)—अपने निजी व व्यक्तिगत अनुभवों में सम्बन्ध या साहर्चय से तात्पर्य है कि समय व स्थान का सामग्री से सम्बन्ध स्थापित करना। उदाहरण के लिए सड़क पर किस व्यक्ति को अचानक देखने से हमारे अन्दर भावना उठती है कि इस व्यक्ति को किसी जगह देखा है और यह निश्चित नहीं हो पाता कि किस स्थान पर उससे परिचय हुआ था। तत्काल हमें अपने पुराने अनुभव का सम्य व स्थान स्मरण हो उठता है और हमारी स्मृति पूर्ण हो जाती है। बहुधा पाठशाला के कार्य का समय व स्थान से सम्बन्ध नहीं जोड़ा जाता है। पर यदि हमें उसे स्मरण करना है तो हमें उसका समय व स्थान से सम्बन्ध स्थापित करना होगा।

स्मृति का वर्गीकरण (Classification of memory)

यदि सार्थक सम्बन्धों की संख्या कम करके हम उन्हें मूल रूप में याद कर सकें तो उसे हम आदत जन्य स्मृति (Rote memory) कहेंगे और विवेकयुक्त स्मृति (logical memory) से हमारा तात्पर्य है यदि हमारे वर्तमान और पूर्व सम्बन्ध सार्थक हैं।

स्मृति का वर्गीकरण हम ज्ञान और उससे उत्पन्न होने वाली प्रतिमा (imagery) के आधार पर भी कर सकते हैं। प्रारम्भिक स्मृति के संस्कार (impression) किसी भी ज्ञानेन्द्रिय के द्वारा मस्तिष्क में पहुँच सकते हैं। हम प्राकृतिक दृश्य देखते हैं, संगीत का आनन्द लेते हैं, सुगन्धित वस्तुओं का प्रयोग करते हैं; मधुर-मधुर फलों का स्वाद लेते हैं, वस्तुओं का स्पर्श करते हैं और गीत तथा स्थानों के परिवर्तन का भी प्रतिदिन अनुभव किया करते हैं। हम इन सभी का स्मरण कर सकते हैं। कम से कम वास्तविक पदार्थों का भी स्मरण पिछले अनुभव की प्रतिभा (imagery) के जगने से ही होता है। दूसरे शब्दों में प्राकृतिक दृश्य का स्मरण उसकी प्रतिमा के आधार पर ही होता है। अतः हम उसे दृष्टि स्मृति (Visual memory) कहते हैं। संगीत समारोह के संगीत की हमारी स्मृति श्रवण स्मृति पर आधारित होने के कारण उसे हम श्रवण स्मृति (auditory memory) कहते हैं। इसी प्रकार प्रतिमा की भिन्न-भिन्न किस्मों के अनुस र स्मृति का भिन्न-भिन्न वर्गीकरण किया जा सकता है

किसी एक इन्द्री के विषय-क्षेत्र में असंख्य भिन्नतायें पाई जाती हैं। दृष्टि से हमें वस्तु का रङ्ग, उसकी शक्ल, ऊँचाई, दूरी, चमकीलापन आदि मालूम होता है। एक व्यक्ति की दृश्य प्रतिमा उसकी श्रवण प्रतिमा से अधिक हो सकती है, दूसरे की शक्ल प्रतिमा (imagery for form) उसकी रङ्ग प्रतिमा से अधिक विकसित हो सकती है। परिणाम स्वरूप किसी एक ही क्षेत्र में भिन्न-भिन्न प्रकार की स्मृतियाँ देखने को मिलती हैं।

मूर्त (Concrete) और प्रतिरूप (Symbolic) भी स्मृति का एक और वर्गीकरण है। सुनी हुई अथवा देखी हुई चीजों की प्रतिमा या कोई अनोखी चीज की प्रतिमा मूर्त प्रतिमा कही जाती है, परन्तु हम प्रायः अपनी स्मृतियों व प्रतिमाओं को शब्दों या अन्य प्रतीकों द्वारा प्रकट करने के अभ्यस्त हो गये हैं। इसलिए हम वास्तविक व प्रथम प्रतिमा के स्थान पर उसे उसके नाम या शब्द द्वारा भी याद कर सकते हैं।

मानव विचारधारा अधिकांश में अमूर्त क्षेत्र में विचरण करती है। परिणाम स्वरूप इस अमूर्त विचारधारा में प्रतीकों (symbols) का महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिए हम चीजों को शब्दों या अन्य प्रतीकों के द्वारा स्मरण करते हैं। इन्द्रिय क्षेत्र में हमारे शब्दों के अनुभव देखने सुनने और बोलने तक ही सीमित रहते हैं हालाँकि इसमें से कुछ लोग लिखने के साथ-साथ सोच भी सकते हैं और एक अन्धा वर्णमाला के स्पर्श से भी सोच सकता है।

तात्कालिक (Immediate) और स्थाई (Permanent) स्मृति भी स्मृति के

भेद हैं। किसी चीज को एकदम याद करना अथवा किसी चीज को थोड़े दिनों तक धारण करना उसके दोहराने की संख्या अथवा उस पर कितना ध्यान दिया गया है आदि बातों पर निर्भर करता है।

तात्कालिक स्मृति का सम्बन्ध अवस्था से होता है। भिन्न-भिन्न अवस्था पर भिन्न-भिन्न प्रकार की तात्कालिक स्मृति पाई जाती है। अनुसन्धान से पता चला है कि प्रौढ़ों की अपेक्षा बच्चों में यह स्मृति कम पाई जाती है। तेरह वर्ष तक तात्कालिक स्मृति का विकास बहुत ही मन्द गति से होता है, १३ से १६ वर्ष तक बहुत ही तीव्र विकास और पच्चीस वर्ष तक इसका और विकास होता है। जब इसका विकास अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाता है इसका पतन शुरू हो जाता है। तात्कालिक स्मृति भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न प्रकार की पाई जाती है। अतः प्रत्येक प्रकार के पेशे के चुनाव की परीक्षा में इसका विशेष ध्यान रखना चाहिये—जैसे कि टेलीफोन आपरेटर के चुनाव में।

परन्तु शीघ्र याद करने वाले की धारणा शक्ति भी दृढ़ होनी चाहिए—ऐसा व्यवहार में नहीं पाया जाता। धारणा-शक्ति स्वभाव के संगठन व रचना पर निर्भर होती है। इसका मतलब यह हुआ कि सामग्री को स्थाई बनाने के लिए जितनी सीखने की आवश्यकता है उतना प्रयत्न किया गया है अथवा नहीं है। पर्याप्त प्रयत्न व सीखने के पश्चात् नई सामग्री को स्थाई सम्पति बना लेने को ही स्थाई स्मृति (permanent memory) कहते हैं। धारण शक्ति में बच्चे प्रौढ़ों की अपेक्षा काफी अच्छे होते हैं। धारण शक्ति एक निश्चित अवस्था तक—ग्यारह बारह वर्ष तक—बढ़ती रहती है और इसके पश्चात् इसका कम होना शुरू हो जाता है। अतः बचपन तात्कालिक स्मृति की दृष्टि से अनुपयुक्त तथा धारण शक्ति के लिए सर्वथा उपयुक्त है। जीवन पर्यन्त याद रखने वाली सामग्री बचपन में ही अच्छी तरह से सीखी जा सकती है।

प्रयोग १—

तात्कालिक श्रवण स्मृति का विस्तार।

(Span of Immediate Auditory memory)

समस्या—इस प्रयोग द्वारा किसी व्यक्ति की तात्कालिक श्रवण स्मृति का विस्तार ज्ञात किया जाता है अर्थात् एक बार सुनकर कोई व्यक्ति कितने अङ्क (Digits) या अक्षर (letters) को दुहरा सकता है।

सामग्री—इस प्रयोग में निम्नलिखित सामग्री की आवश्यकता होती है।

(१) विराम घड़ी (stop watch) (२) तालमान (मैट्रोनोम) (metronome) और (३) तीन अङ्कों से बारह अङ्कों तक की तीन सूचियाँ जैसा कि नीचे दिखलाया है।

पहली सूची—

३ ९ ७

५ ६ ८ ४

३ ७ ५ १ ४

६ ८ ५ ३ २ ४

५ ३ ४ ९ ७ ५ ६

६ ४ १ ३ ८ ७ २ ५

६ ८ ५ ७ ९ २ ९ ३ १

७ ३ ५ १ ६ ८ २ ७ ५ ३

६ ८ ९ ५ ३ १ ३ ४ ७ ६ २

५ ४ ३ ९ १ ८ ७ २ ६ ८ ९ ५

दूसरी सूची—

२ १ ५

३ ७ ६ २

४ ८ ९ ५ ३

२ ७ ६ ५ ८ ९

३ ५ ६ १ ८ ७ २

२ ५ १ ६ ४ ३ ९ ४

८ ५ २ ६ ७ ३ ५ ७ १

९ ५ ४ २ १ ९ ४ ३ ७ ३

८ ६ ७ ९ ५ ३ ४ ६ ८ २ ४

७ ८ ५ ६ ९ ५ ४ ६ २ १ ५ ७

तीसरी सूची—

५ ४ २

१ ७ ९ ५

६ ३ ८ २ १

७ ३ ५ ९ ५ ६

२ ८ ९ ७ ३ ६ २

५ ८ ६ १ ३ ७ ५ ३

२ ४ ५ ६ १ ३ ७ ५ ९

९ २ १ ६ ५ ४ १ ४ ३ ७

८ २ १ ५ ६ २ ५ ६ ४ ३ ९

१ ३ ७ २ ९ ५ ६ १ ५ ३ ८ २

मैट्रोनोम एक ऐसा यंत्र है जिससे समय को ठीक से विनियमित (regulate) किया जाता है।

विधि—प्रयोग आरम्भ करने पूर्व पात्र (S) को सीट में बिठा दिया जाता है। इस बात का ध्यान रखा जाता है कि पात्र सूची पत्रों से पढ़कर अङ्कों को याद न कर ले। उसे इन सूची पत्रों को देखना भी नहीं चाहिये क्योंकि ये श्रवण स्मृति के लिये बनाये गये हैं। देखने पर प्रयोग अशुद्ध माना जावेगा क्योंकि उसमें दृष्टि स्मृति का प्रभाव आ जावेगा।

अनुभव कर्ता (E) पात्र (S) को आदेश देता है।

"मैं जब संख्या को बोलूँ तो तुम ध्यान पूर्वक सुनो। जब मैं एक संख्या बोलना समाप्त कर दूँ तो तुम उसे दुहराओगे। तुम्हें सूची पत्र में लिखी संख्याओं को देखना नहीं है। इसी प्रकार की तीन सूची पत्रों में लिखी हुई संख्याओं को तुम्हें दुहराना है।" E अब तीन अंकों की बनी हुई संख्या को बोलता है। संख्या को साफ-साफ बोलना चाहिये। हर अंक के पढ़ने के बीच में एक सा अन्तर (interval) रहना आवश्यक है। यह अन्तर १ सैकिण्ड का लिया जा सकता है और इसे मैट्रोनोम (metronome) द्वारा विनियमित (regulate) किया जा सकता है। मैट्रोनोम को इस प्रकार व्यवस्थापित (set) किया जाता है कि वह प्रति १ सैकिण्ड में एक 'टिक' की ध्वनि करे।

यदि पात्र इस संख्या को ठीक प्रकार दुहरा देता है तो 'E' चार अंकों वाली संख्या को बोलता है। यदि पात्र इस संख्या को भी ठीक से दुहरा देता है तो फिर 'E' पाँच अंकों वाली संख्या को बोलता है। इसी प्रकार 'E' बड़ी संख्याओं को तब तक बोलता है जब तक कि 'S' उसे ठीक प्रकार से दुहराने में असमर्थ न हो जावे। उस बड़ी से बड़ी संख्या को जिसके अंकों को 'S' ठीक से दुहरा लेता है नोट कर लिया जाता है।

इसी प्रकार दूसरी तथा तीसरी सूचियों की संख्याओं को बोला जाता है और पात्र (S) उन्हें दुहराता है। इन प्रयोगों में भी प्रत्येक बार उस बड़ी से बड़ी संख्या को नोट कर लिया जाता है जिसको 'S' ठीक से दुहरा लेता है। पात्र से यह पूछा जाता है कि उसने किसी सूची पत्र में संख्याओं को देख तो नहीं लिया था या किसी संख्या के पढ़ते समय उसके ध्यान में किसी प्रकार का विघ्न तो नहीं हुआ। यदि पात्र यह कहता है कि उसने एक सूची की संख्याओं को देख लिया था तो यह प्रयोग अशुद्ध समझा जाता है और फिर दुबारा किया जाता है।

परिणाम—

इस प्रयोग के परिणामों को निम्न तालिका में रखा जाता है।

क्रम संख्या	पहली सूची से बोली गई संख्याएँ	पहली सूची से पात्र द्वारा दुहराई गई संख्याएँ	सही अंकों की संख्या	विशेष विवरण

क्रम संख्या	दूसरी सूची से बोली गई संख्याएँ	दूसरी सूची से पात्र द्वारा दुहराई गई संख्याएँ	सही अंकों की संख्या	विशेष विवरण

क्रम संख्या	तीसरी सूची से बोली गई संख्याएँ	तीसरी सूची से पात्र द्वारा दुहराई गई संख्याएँ	सही अंकों की संख्या	विशेष विवरण

इस प्रकार मान लीजिये पहली सूची में पात्र ८ अंकों वाली संख्या को ठीक से दुहरा सकता है आगे नहीं, दूसरी सूची में ७ अंकों वाली संख्या को ठीक दुहरा सकता है आगे नहीं और तीसरी सूची में ९ अंकों वाली संख्या को ठीक से दुहरा सकता है आगे नहीं। तात्कालिक श्रवण स्मृति का विस्तार ज्ञात करने के लिये इन उक्त तीनों संख्याओं (८, ७, ९) का औसत निकाल लिया जावेगा। इनका औसत ८ हुआ और यही इस पात्र की तात्कालिक श्रवण स्मृति का विस्तार (Span of immediate auditory memory) हुआ।

बहुधा देखा गया है कि कालेज के विद्यार्थियों का तात्कालिक श्रवण स्मृति का विस्तार ७ अङ्कों से ९ अंकों तक होता है तथा ४ से ६ वर्ष के बच्चों का यह विस्तार ४ अंक से ५ अंक तक होता है।

अंकों के स्थान पर अक्षर लेने पर भी इस प्रयोग को किया जा सकता है। अक्षरों को लेने पर इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि ये अक्षर कोई सार्थक शब्द न बनायें।

निष्कर्ष—(१) इस प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया जा सकता है कि तात्कालिक स्मृति (immediate memory) अवस्था के साथ बढ़ती है। बचपन में तात्कालिक स्मृति कम होती है। तेरह वर्ष तक इसकी वृद्धि धीरे-धीरे होती है। तेरह वर्ष से सोलह वर्ष तक इसमें जल्दी-जल्दी वृद्धि होती है, और सोलह वर्ष से पच्चीस वर्ष तक इसमें बहुत जल्दी-जल्दी वृद्धि होती है। पच्चीस वर्ष के बाद वृद्धि होना समाप्त हो जाता है और कुछ कम ही होना शुरू हो जाती है।

(२) चूँकि तात्कालिक स्मृति का विस्तार प्रत्येक व्यक्ति के लिये भिन्न होता है इसलिये भिन्न-भिन्न व्यवसाय में जाने के लिये व्यक्तियों का तात्कालिक स्मृति विस्तार प्रयोग द्वारा ज्ञात करना आवश्यक है। जैसे दूरभाष-चालक

(Telephon e operator) को इस प्रकार की स्मृति की अधिक आवश्यकता होती है। उसकी तात्कालिक स्मृति का विस्तार अच्छा होना चाहिये।

(३) पहले कहा जा चुका है कि ४ वर्ष से ६ वर्ष के बच्चों का तात्कालिक श्रवण स्मृति विस्तार ४ अंक से ५ अंक तक होता है। इसका उपयोग हम बालकों की वर्णविन्यास योग्यता (Spelling ability) में कर सकते हैं। हमें ४ वर्ष से ६ वर्ष तक के बालकों को ४ या ५ अक्षरों से बड़े शब्द नहीं सिखलाने चाहिये। उनको याद करना उनके लिये दुर्लभ होगा। कालेज के विद्यार्थियों को इसी सिद्धान्त के अनुसार ८ या ६ अक्षर वाले शब्दों को बताया जा सकता है।

(४) तात्कालिक श्रवण स्मृति का बुद्धि से अति सम्बन्ध है। इसीलिये बुद्धि परीक्षा में तात्कालिक श्रवण स्मृति सम्बन्धी प्रश्न रखे जाते हैं। अध्यापकों के लिये इस प्रकार की परीक्षा बहुत लाभप्रद है। इससे वे बालकों का बुद्धि स्तर ज्ञात कर सकते हैं।

प्रयोग २—

तात्कालिक दृष्टि स्मृति का विस्तार

(Span of Immediate Visual Memory)

समस्या—इस प्रयोग के द्वारा किसी व्यक्ति की तात्कालिक दृष्टि स्मृति का विस्तार ज्ञात किया जाता है अर्थात् कि वह एक बार देखने पर कितने अङ्क या अक्षर दुहरा सकता है।

सामग्री—(१) विराम घड़ी (Stop Watch), तीन पत्र जिनमें अक्षर एक निश्चित नमूने के रूप में लिखे होते हैं जैसा कि नीचे दिखाया गया है।

पहला पत्र		दूसरा पत्र		तीसरा पत्र	
घ	द	च	क	ल	ह
फ	न	थ	ज	क	न
ल	क	म	ह	स	प
म		त		त	

विधि—पात्र (S) को सीट में बिठा दिया जाता है। इस बात का ध्यान रखा जाता है कि पात्र इन पत्रों के अक्षरों को पढ़े नहीं अन्यथा प्रयोग अशुद्ध हो जावेगा।

प्रयोग आरम्भ करने के पूर्व अनुभव कर्त्ता (E) पात्र (S) को आदेश देता है। "तुम्हें तीन पत्र जिनमें किसी निश्चित नमूने के रूप में अक्षर लिखे हैं दिखाये जायेंगे। ये पत्र अलग अलग दिखाये जायेंगे और प्रत्येक पत्र को दिखाने

का समय १२ सैकिन्ड होगा। प्रत्येक पत्र को देखने के बाद तुम्हें उस पत्र के अक्षरों को उसी नमूने के रूप में एक कागज में लिखना होगा। अक्षरों को पढ़ने का प्रयत्न न करना। हर पत्र को देखने के बाद अपनी अन्तर निरीक्षण (introspection) की रिपोर्ट देनी होगी।"

अनुभव कर्त्ता अब पहला पत्र 'S' को दिखलाता है और विराम घड़ी से समय नोट करता है। १२ सैकिन्ड के बाद पहला पत्र हटा दिया जाता है और 'S' से उसके अक्षरों को एक कागज में उसी निश्चित नमूने के रूप में लिखने को कहा जाता है। फिर 'S' से अपनी अन्तर निरीक्षण रिपोर्ट भी माँगी जाती है। यदि 'S' कहता है कि उसने अक्षरों को मुँह से बोल लिया था तो वह प्रयोग अशुद्ध माना जाता है क्योंकि उसमें श्रवण स्मृति का प्रभाव आ जाता है। अब अनुभव कर्त्ता (E) पात्र को दूसरा पत्र दिखाता है और पहले पत्र की भाँति प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार तीसरे पत्र को भी पात्र (S) को दिखाया जाता है और उससे उसके अक्षरों को उसी नमूने के रूप में कागज में लिखने को कहा जाता है। ध्यान रहे कि हर पत्र को दिखाने का समय १२ सैकिन्ड होना चाहिए।

परिणाम—इन परिणामों को निम्न तालिका में रखा जाता है।

पत्र संख्या	अक्षर जो दिखाये गये	अक्षर जो पात्र (s) द्वारा कागज में दुहराये गये (लिखे गये)।	सही अक्षरों को सही स्थान में रखने के लिए अंक	सही अक्षर को गलत स्थान में रखने के लिये अंक	अन्तर निरीक्षण रिपोर्ट	प्राप्ताङ्क
१						
२						
३						

इस प्रयोग में पात्र (S) को एक अक्षर को अपने सही स्थान में रखने के लिये २ अंक दिये जाते हैं और एक अक्षर को गलत स्थान में रखने के लिए १ अङ्क दिया जाता है। गलत अक्षर को गलत स्थान में रखने पर कोई अङ्क नहीं दिया जाता। इस प्रकार मान लीजिये पहले पत्र में उसे १२ अङ्क, दूसरे में १३

अङ्क और तीसरे पत्र में १४ अङ्क प्राप्त हुए। इन तीनों अङ्कों का औसत ज्ञात कर लिया जाता है और वही पात्र का तात्कालिक दृष्टि स्मृति का विस्तार माना जाता है। इस उदाहरण में पात्र (S) का तात्कालिक दृष्टि स्मृति का विस्तार $\left(\frac{१२+१३+१४}{३}\right)$ अर्थात् १३ हुआ।

निष्कर्ष—(१) कुछ व्यक्तियों का तात्कालिक दृष्टि स्मृति विस्तार अच्छा होता है तथा तात्कालिक श्रवण स्मृति विस्तार कम। यह आवश्यक नहीं है कि जिस व्यक्ति का तात्कालिक दृष्टि स्मृति विस्तार अच्छा हो उसका तात्कालिक श्रवण स्मृति विस्तार भी अच्छा हो। इससे यह फल निकलता है कि उन लोगों को दृष्टि-सहाय (Visual aid) की सहायता से पढ़ाना उपयोगी होगा जिनका दृष्टि स्मृति विस्तार अधिक है तथा श्रवण स्मृति विस्तार कम है। उन लोगों को श्रवण-सहाय की सहायता से पढ़ाना लाभप्रद होगा जिनका श्रवण स्मृति विस्तार अधिक है परन्तु दृष्टि स्मृति विस्तार कम।

(२) दृष्टि स्मृति विस्तार कलाकार (Artist) में अधिक होता है। किसी भी दृश्य को देखकर कलाकार उसका चित्रण कर सकता है। यह इसीलिए होता है कि उसकी दृष्टि स्मृति तीव्र होती है;

(३) व्यक्तियों की दृष्टि स्मृति में भी भेद होते हैं। कुछ व्यक्तियों की दृष्टि स्मृति मुखाकृति (face) के लिए अधिक होती है, कुछ की रंग के लिए, तथा कुछ की अन्य और चीजों के लिए। कभी हम लोग किसी व्यक्ति का नाम भूल जाते हैं परन्तु मुखाकृति याद रखते हैं। यह इसलिये होता है कि हमारी मुखाकृति के लिये दृष्टि स्मृति तीव्र रही होगी।

(४) इस प्रकार के प्रयोग से यह भी देखा गया है कि स्त्रियों की दृष्टि स्मृति रङ्गों (Colours) के लिये मर्दों से अधिक होती है। हो सकता है कि यह इसलिये भी होता है कि स्त्रियों की रंगों में मर्दों से ज्यादा रुचि होती है।

मर्दों की दृष्टि स्मृति चित्रों (diagrams) के लिये स्त्रियों से अधिक होती है।

ऊपर के प्रयोग से हमने तात्कालिक दृष्टि स्मृति का विस्तार ज्ञात किया। इस प्रयोग में हमने ऐसे पत्रों का प्रयोग किया जिसमें अक्षर लिखे थे। इसलिये ऐसे प्रयोग में पात्र कभी-कभी अपनी श्रवण स्मृति का उपयोग कर भी लेता है। जैसा पहले पत्र में वह अक्षरों को मन ही मन इस प्रकार पढ़ सकता है,

छ द

फ न आदि।

इसलिये इस प्रयोग द्वारा शुद्ध दृष्टि स्मृति का विस्तार ज्ञात करना दुर्लभ है। इस समस्या का हल करने के लिये हम अक्षरों के स्थान में कुछ चित्र ले सकते हैं। कुछ चित्रों का नमूना नीचे दिखलाया गया है।
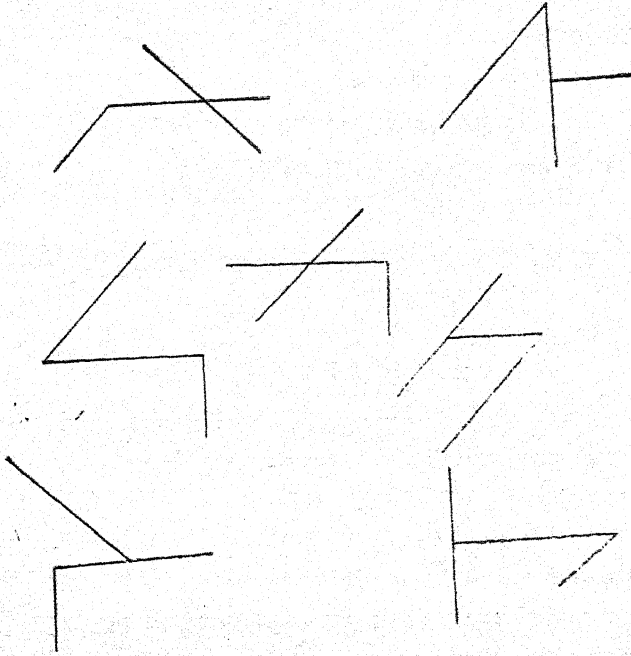
चित्र (१०)

प्रयोग आरम्भ करने के पूर्व (E) पात्र (S) को यह आदेश देता है कि उसे तीन रेखाओं वाले चित्र दिखलाये जायेंगे। इन चित्रों में कुछ रेखाएं एक इंच की होती हैं और कुछ आधे इंच की। इसके अतिरिक्त रेखाओं के बीच के कुछ कोण ४५° के होते हैं कुछ ९०° के और कुछ ऋजुपूरक (supplementary)। इसके बाद अनुभवकर्त्ता (E) पात्र (S) को सावधान होने को कहता है और उसे एक-एक करके चित्र दिखलाता है। प्रत्येक चित्र तीन सैकिन्ड के लिये दिखलाया जाता है। समय को विराम घड़ी (stop watch) से नोट किया जाता है। सब चित्र दिखलाने के बाद फिर वही चित्र इसी प्रकार दुबारा दिखलाये जाते हैं। यहाँ भी प्रत्येक चित्र को दिखलाने का समय तीन सैकिन्ड रखा जाता है। सब चित्रों को दुबारा दिखला देने के बाद तीसरी बार फिर ये चित्र इसी प्रकार पात्र कोदिखलाये जाते हैं। इसके पश्चात् पात्र से इन सब चित्रों को

दुहराने को कहा जाता है। अनुभवकर्त्ता अपने चित्रों को छिपा लेता है और पात्र से उनको अलग कागज पर बनाने को कहता है।

एक चित्र को पूर्ण रूप से सही बनाने के लिये २ अङ्क प्रदान किये जाते हैं। एक चित्र में यदि एक रेखा की लम्बाई की अशुद्धि हो तो एक अङ्क प्रदान किया जाता है।

अङ्कों का कुल योग तात्कालिक दृष्टि स्मृति का विस्तार प्रकट करता है।

स्थायी स्मृति (Permanent Memory)

स्थायी स्मृति को ज्ञात करने की तीन विधियाँ हैं।

(१) बचाने की रीति (saving method)

(२) उसकाने की रीति (prompting method)

(३) गिनने की रीति (scoring method)

प्रयोग १—

बचाने की रीति (Saving method)

उद्देश्य—बचाने की रीति द्वारा स्थायी स्मृति का अध्यन करना।

यंत्र तथा सामग्री—(१) निरर्थक शब्दों (nonsense syllables) की एक सूची—जैसे BLW, KCF, LSR आदि।

(२) मैमरी ड्रम (Memory Drum)—यह एक ऐसा यंत्र है जिसमें एक बेलन लगा होता है जो कि एक धुरी के ऊपर घुमाया जाता है। यंत्र के ऊपरी भाग में एक पर्दा होता है जिसमें एक खिड़की होती है बेलन में यदि निरर्थक शब्दों की सूची लगाकर घुमाया जाय तो ये शब्द एक के बाद एक खिड़की से दीखते रहते हैं। बेलन की चाल को विनियमित किया जा सकता है। इस यंत्र का चित्र नीचे दिया गया है।
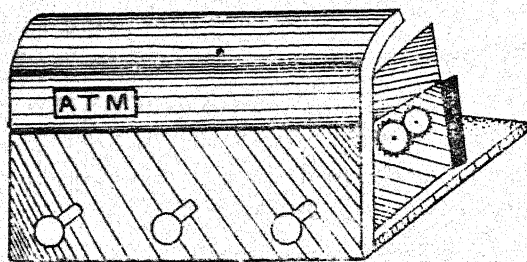
चित्र—(११) मैमरी ड्रम

विधि—पात्र (S) को इस प्रकार बिठलाया जाता है कि उसकी आँखें उसी सतह पर हों जिस सतह पर memory drum की खिड़की हो जहाँ से

कि निरर्थक शब्द दिखलाये जाते हैं। अनुभवकर्त्ता (E) पात्र (S) को आदेश देता है। "तुम्हें एक निरर्थक शब्दों की सूची दिखलाई जायेगी। यह शब्द तुमको एक के बाद एक इस खिड़की में दिखालाई देंगे। जैसे जैसे शब्द आते रहें तुम उन्हें पढ़ते जाओ। पूरी सूची समाप्त हो जाने के बाद तुम्हें इन्हीं शब्दों को दुहराना होगा।"

E अब S को सावधान होने को कहता है। memory drum को कार्यान्वित किया जाता है और पात्र निरर्थक शब्दों को एक के बाद एक पढ़ता जाता है। बेलन के घूमने की चाल विनियमित की जाती है ताकि प्रत्येक निरर्थक शब्द एक ही अन्तर के बाद खिड़की में दिखलाई दे। सूची समाप्त हो जाने के पश्चात् पात्र से उन सब निरर्थक शब्दों को दुहराने को कहा जाता है। मान लीजिए पात्र कुछ निरर्थक शब्दों को ठीक न दुहरा पाये। ऐसा होने पर फिर ऊपर की भाँति एक बार पूरी सूची पात्र को दिखलाई जाती है। अब उससे दुहराने को कहा जाता है। यही क्रिया उतनी बार की जाती है जब तक कि पात्र प्रयोग के बाद पूरी सूची को ठीक-ठीक दुहरा न दे।

एक महिने या बीस दिन पश्चात् जब भी यह ज्ञात हो कि पात्र उस निरर्थक शब्दों की सूची को भूल गया फिर यही प्रयोग उसके साथ किया जाता है। उसे यही सूची फिर दिखलाई जाती है और उससे निरर्थक शब्दों को दुहरवाया जाता है। यह तब तक किया जाता है जब तक कि पात्र सूची के सब निरर्थक शब्दों को ठीक ठीक दुहरा न दे। देखा जाता है कि दूसरी बार में निरर्थक शब्दों को याद करने के लिये यह सूची कम बार दिखलानी पड़ती है।

परिणाम—ऊपर के प्रयोग से यह सिद्ध होता है कि स्थायी स्मृति के लिये पुनरावृत्तियों की संख्या धीरे-धीरे कम होती जाती है। जितनी ही पुनरावृत्तियों (repetitions) की संख्याओं में बचत होती है वही व्यक्ति की निरर्थक शब्दों के लिये स्थायी स्मृति की सूचक है। इसलिये इस विधि को बचाने की विधि (saving method) कहते हैं।

इस प्रयोग में सार्थक शब्दों की सूची को भी काम में लाया जा सकता है। प्रयोग ठीक ऊपर की भाँति ही किया जावेगा। इस प्रकार सार्थक शब्दों के लिये पुनरावृत्तियों की संख्याओं में बचत मालूम हो सकती है और यही बचत किसी व्यक्ति की सार्थक शब्दों के लिये स्थायी स्मृति की सूचक होगी।

निष्कर्ष—(१) इस प्रयोग से यह सिद्ध होता है कि स्थाई स्मृति के लिये पुनरावृत्तियों की संख्या धीरे-धीरे कम होती जाती है। सार्थक शब्दों की सूची अधिक शीघ्र और कम आवृत्तियों में ही स्थायी रूप से याद हो जाती है

परन्तु निरर्थक शब्दों की सूची के लिये अधिक संख्या में प्रयास करना पड़ता है।

(२) इस प्रयोग से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि विद्यार्थी पढ़ाई हुई चीज को भूल जाते हैं। यदि उनको पढ़ाई हुई चीज स्थायी रूप से याद करानी हो तो इसके लिये पुनरावृत्ति कराना परम आवश्यक होगा। हर पाठ को पढ़ाने के बाद पुनरावृत्ति करनी चाहिये। कुछ समय के अन्तर के बाद पढ़ाई हुई चीज के दुहरवा देने से विद्यार्थी उसे स्थायी रूप से याद कर लेगा।

(३) इस प्रयोग द्वारा यह ज्ञात होता है कि जब हम किसी चीज को याद करते हैं तो आरम्भ में अधिक शीघ्रता से भूल होती है।

एबिन्धस (Ebbinghaus—1885) ने ऐसे ही प्रयोगों द्वारा ज्ञात किया कि :—

२४ मिनट तक ५८ प्रतिशत चीज याद रहती है,
१ घंटे तक ४४ प्रतिशत चीज याद रहती है,
६ घंटे तक ३६ प्रतिशत चीज याद रहती है,
१ दिन तक ३४ प्रतिशत चीज याद रहती है,
२ दिन तक २८ प्रतिशत चीज याद रहती है,
६ दिन तक २५ प्रतिशत चीज याद रहती है,
और ३१ दिन तक २१ प्रतिशत चीज याद रहती है।

चूँकि भूल आरम्भ में अधिक शीघ्रता से होती है इसलिये आरम्भ में पाठ पढ़ाने के पश्चात् पुनरावृत्ति शीघ्रता से करनी चाहिये।

(४) बालकों में स्थायी स्मृति अच्छी होती है। इसलिये बचपन में ऐसी चीजें पढ़ा देना उपयोगी है जिसे बालक को स्थायी रूप से याद रखना होता है। इसीलिये बालकों को गिनतियाँ, पहाड़े, भार की तालिका, वर्गमूल की तालिका आदि बचपन में याद करा दिये जाते हैं। प्रयोग द्वारा ज्ञात किया गया है कि बालकों की स्थायी स्मृति ग्यारह वर्ष तक बढ़ती रहती है और उसके बाद वह कुछ कुछ घटना शुरू हो जाती है।

प्रयोग २—

उसकाने की रीति (Prompting Method)

उसकाने की रीति में भी व्यक्ति को कुछ निरर्थक अथवा सार्थक शब्दों की सूची याद करने को दे दी जाती है। आधी सूची याद कर लेने के बाद शब्दों को दोहराते समय भूल होने पर बीच-बीच में पात्र को उसकाया जाता है।

ठीक-ठीक दोहराने के लिये किसी व्यक्ति को कितनी बार उसकाया गया इससे उसकी स्थायी स्मृति का अनुमान किया जाता है।

प्रयोग ३—

गिनने की रीति (Scoring Method)

उद्देश्य—गिनने की रीति द्वारा स्थायी स्मृति का अध्ययन करना।

यन्त्र तथा सामग्री—(१) क्रोनोस्कोप (Chronoscope)—यह एक यन्त्र है जिससे समय नापा जाता है।

(२) शब्दों की सूची—ये शब्द इस प्रकार के होते हैं जिनकी ध्वनि एक दूसरे से भिन्न होती है। जैसे—पाल, गृह, कंज, पान आदि। इन शब्दों को दो-दो के जोड़े में रखा जाता है जैसे—

पाल, गृह ; कंज, पान ;······

विधि—अनुभवकर्ता (E) पात्र (S) को आदेश देता है। "तुम्हें शब्दों की एक सूची कई बार दिखलाई जायेगी। तुम्हें शब्दों को दो-दो के जोड़े में इस प्रकार पढ़ना है कि दोनों शब्दों में प्रत्येक के पहले अक्षर पर बल पड़े। इस प्रकार प्रत्येक शब्द को याद रखने की चेष्टा करो।"

अब अनुभवकर्ता (E) पात्र (S) से सावधान होने को कहता है और शब्दों की सूची दिखलाता है। 'S' शब्दों के प्रत्येक जोड़े को इस प्रकार पढ़ता है कि दोनों शब्दों के पहले अक्षर पर बल पड़ता है। पूरी सूची पढ़ लेने के बाद फिर इसी प्रकार इस सूची को कई बार पढ़वाया जाता है।

कुछ समय के बाद 'E' प्रत्येक जोड़े के पहले अक्षरों को 'S' को सुनाता है और 'S' से उस जोड़े के दोनों शब्दों को दुहराने को कहा जाता है। शब्दों के ये जोड़े उसी क्रम में नहीं सुनाये जाते जिस क्रम में पहली बार 'S' ने पढ़े थे। हर जोड़े में वह समय भी नोट कर लिया जाता है जो कि 'S' जोड़े के पहले शब्द को दुहरा लेने के बाद उसी जोड़े के दूसरे शब्द को दुहराने में लगाता है। यह समय 'reproduction time' अथवा 'scoring time' कहलाता है। यह समय chronoscope द्वारा ज्ञात किया जाता है। इस reproduction time से यह ज्ञात होता है कि जोड़े के पहले शब्द का उसके दूसरे शब्द से कितना सम्बन्ध है। जितना ही यह सम्बन्ध अधिक होगा उतना ही reproduction time कम होगा। जितने अधिक जोड़े वाले शब्दों को पात्र ठीक-ठीक दुहराता है उतनी ही अधिक उसकी स्थायी स्मृति अच्छी कही जाती है।

निष्कर्ष—इसके लिये बचाने की रीति के निष्कर्ष देखिये।

इस रीति द्वारा स्थायी स्मृति का अध्ययन 'बचाने की रीति' या 'उसकाने

की रीति' से अच्छा होता है। इस प्रयोग में पात्र को वैसी थकान नहीं होती जैसे कि 'बचाने की रीति' में होती है। 'बचाने की रीति' में उसे तब तक शब्दों की सूची को दुहराना होता है जब तक कि उसे वह पूरी याद न हो जाय। 'गिनने की रीति' में शब्द सूची को बार-बार तब तक नहीं पढ़वाया जाता जब तक कि पात्र उसे पूरी तौर पर दुहरा दे। इसमें तो पात्र को कुछ ही बार सूची पढ़वाई जाती है। 'बचाने की रीति' का सबसे बड़ा दोष यह है कि वहाँ शब्दों की पूरी सूची पात्र को दिखलाई जाती है और फिर उससे दुहरवाई जाती है। इससे पात्र पूरी सूची का भिन्न-भिन्न शब्दों से तथा शब्दों का आपस में सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। इसलिए स्थायी स्मृति का अध्ययन करने में अशुद्धि आ जाती है। यह अशुद्धि 'गिनने की रीति' में नहीं आ सकती क्योंकि यहाँ शब्दों को जोड़ों में रखा जाता है और शब्द इस प्रकार के रखे जाते हैं कि उनकी ध्वनि में भिन्नता होती है। इसके अतिरिक्त पात्र को शब्दों के पहले अक्षर उसी क्रम में नहीं सुनाये जाते जिस क्रम में उसने पढ़े थे। इन सब बातों से शब्दों का सम्बन्ध (association) पूरी सूची से नहीं हो पाता।

प्रयोग ४—

सार्थक वस्तुओं के लिए स्मृति

सामग्री—इस प्रयोग में गद्य का एक अंश काम में लाया जाता है जो कि 'अर्थ या विचार' (meanings or ideas) के हिसाब से अन्वितियों units) में विभाजित रहता है। इस प्रकार के गद्यांश का एक उदाहरण नीचे दिया गया है।

शाम का समय था। / रेलवे स्टेशन के थर्ड क्लास बुकिंग आफिस पर बेहद भीड़ थी। / भीड़ की अधिकता को रोकने के लिए दो पुलिस कान्सटेबिल उपस्थित थे। / वे बीच बीच में भीड़ का रेला रोकने के लिए अपने बेतों का प्रयोग भी कर रहे थे। / ऐसे ही समय एक तीस-पैंतीस वर्ष का व्यक्ति आ पहुँचा। / वह साधारण वस्त्र पहने था। / उसके हाथ में एक गठरी थी। / उसके साथ एक स्त्री थी। / स्त्री भी एक धोती पहने थी। / पुरुष टिकट लेने चला गया। / स्त्री ने गठरी अपने हाथ में ले ली। /

विधि—अनुभव कर्ता गद्यांश पढ़कर पात्र को सुनाता है। गद्यांश को स्पष्टरूप से पढ़ा जाता है। पूरे गद्यांश को पढ़ने के पश्चात पात्र (S) से पूरे गद्यांश को दुहराने को कहा जाता है। पात्र को आदेश दे दिया जाता है कि प्रत्येक अन्विति को दुहराने में उसका अर्थ स्पष्ट हो जाना चाहिये। यह कोई आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक अन्विति का शब्द शब्द उसी प्रकार दुहराया जाय।

परिणाम—यदि पात्र एक अन्विति का अर्थ ठीक प्रकार दुहरा देता है तो उसे एक अङ्क प्रदान किया जाता है। इस प्रकार जितनी अन्वितियों को ठीक से दुहराता है उतने ही अङ्क उसे प्रदान किये जाते हैं। यही अङ्क पात्र की सार्थक वस्तुओं के लिए स्मृति के सूचक होते हैं।

निष्कर्ष—इस प्रयोग द्वारा यह ज्ञात होता है कि सार्थक वस्तुओं की स्मृति के लिये हमें दिखलाई हुई वस्तु एक नमूने या सार के रूप में (schema) याद रहती है। उस वस्तु का हर अंश याद नहीं रहता परन्तु बाद में दुहराते समय हम उसका सही अर्थ निकाल लेते हैं। यही कारण है कि कहानी पढ़ने के बाद हमें कहानी का पूरा सार याद रहता है न कि प्रत्येक अंश। जब हम किसी को वह कहानी सुनाने बैठते हैं तो हर अंश को अपने अर्थों में सही रूप में कहते जाते हैं।

व्यर्थ स्मरण करना (Perseveration)

व्यर्थ स्मरण करना (Perseveration) स्वभाव (disposition) कि वह प्रवृति (tendency) है जिसके कारण व्यक्ति बिना प्रयत्न किये अपने अनुभवों को पुनर्जीवन (revive) देता है। (Perseveration is the name given to the tendency ot dispositions to revive the experiences that produced them spontaneously without effort on the part of the subject.[1]

कभी कभी जब हम दिन भर काम करने के पश्चात विस्तर में सोने जाते हैं तो हमें उन बातों का स्मरण हो आता है जो हमने अपने अध्यापक के साथ की थी। अगर हम कोई फिल्म देखने गये हों तो रात को उस गाने की ध्वनि हमारे कानों में गूंजती सी मालूम होती है जो हमने फिल्म में सुना था। इन चीजों को हम स्मरण करने का प्रयत्न नहीं भी करें तो भी यह व्यर्थ स्मरण (Perseveration) स्वयं होता रहता है। कुछ व्यक्तियों में यह व्यर्थ स्मरण अधिक होता और कुछ में कम।

प्रयोग ५—

व्यर्थ स्मरण (Perseveration)

समस्या—(१) इस प्रयोग द्वारा व्यर्थ स्मरण का अध्ययन किया जाता है। तथा

(२) किसी व्यक्ति का व्यर्थ स्मरण अंक (score for perseveration) ज्ञात किया जाता है।

---

१. Ross, : 'Educational Psychology, P. 187.

यन्त्र तथा सामग्री—विराम घड़ी (stop watch), पेंसिल, कागज।

विधि—अनुभवकर्ता (E) पहले यह देख लेता है कि 'S' के बैठने की व्यवस्था ठीक है। उसकी पेंसिल ठीक से बनी है ताकि कार्य करने में कोई रुकावट न आये। अब 'E' पात्र को आदेश देता है। "जब मैं काम शुरू करने को कहूँ तो तुम एक मिनट तक कागज में भाग का निशान (÷ ÷ ÷ ÷ ÷) बनाते जाओ। जब मैं 'बदलो' कहूँ तो दूसरे एक मिनट में भाग का निशान इस प्रकार खड़ा (-|- -|- -|- -|-) बनाते जाओ। जब मैं फिर 'बदलो' कहूँ तो अगले दो मिनट के लिये ऐसे निशान (÷ -|- ÷ -|- ÷ -|- ÷ -|- ÷) बनाते जाओ। यही काम तुमसे दस बार करवाया जायेगा। हर बार में पहले मिनट से ÷ ÷ ÷ बनाते जाओ, दूसरे मिनट में -|- -|- -|- -|- बनाते जाओ फिर अगले दो मिनट तक ÷ -|- ÷ -|- ÷ -|- ÷ बनाते जाओ। बदलो कहते ही काम को आवश्यकता अनुसार बदल दो।"

अब 'E' काम शुरू करने को कहता है और विराम घड़ी को चालू कर देता है। 'S' ऐसे निशान ÷ ÷ ÷ बनाता जाता है। एक मिनट बाद 'E' उससे काम बदलने को कहता है और 'S' ऐसे निशान -|- -|- -|- बनाता जाता है। फिर एक मिनट बाद (E) काम बदलने को कहता है और S ऐसे निशान ÷ -|- ÷ -|- दो मिनट तक बनाता जाता है। यही काम दस बार दुहराया जाता है। 'E' को ध्यान रखना चाहिये कि समय नोट करने में त्रुटि न हो। एक काम को दूसरे काम में बदलने पर बिल्कुल समय नष्ट न हो। पहले काम के लिये दस बार में हर बार एक मिनट का समय, दूसरे काम में हर बार एक मिनट का समय तथा तीसरे काम में हर बार दो मिनट का समय देना चाहिये। इस प्रकार एक पूरी बार के काम के लिए चार मिनट का समय लगना चाहिये और दस बार के काम के लिए ४० मिनट का समय लगना चाहिये।

परिणाम—पहले पाँच बार के कामों को अभ्यास का प्रभाव हटाने के हेतु नहीं लिया जाता। केवल आखीरी पाँच बार के कामों के फल लिये जाते हैं। हर बार के लिये व्यर्थ स्मरण अंक (Perseveration score) अलग-अलग निकाला जाता है। इसके लिये निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

$$स = \frac{(प + द) - त}{२}$$

इसमें स = व्यर्थ स्मरण अंक

प = पहले एक मिनट के काम की संख्या (अर्थात् कितने ऐसे निशान ÷ लिखे हैं)

द = दूसरे एक मिनट के काम की संख्या (अर्थात् कितने ऐसे निशान ╬ लिखे हैं)

त = अगले दो मिनट के काम की संख्या । इसको ज्ञात करने के लिये पहले कुल बनाये हुए निशानों को गिन लेते हैं और उसमें से गलत निशानों को (जिनमें ÷ की जगह ╬ लिखा जाता है या ╬ की जगह ÷ लिखा जाता है घटा दिया जाता है ।) उदाहरण के लिये निम्न-लिखित में काम की संख्या १२—३ = ९ होगी, क्योंकि इसमें ३ गलतियाँ हैं । गलतियों के नीचे रेखा खीच दी गई है ।

÷ ╬ ÷ ╬ ÷ ÷ ÷ ╬ ╬ ÷ ÷ ╬

ऊपर के सूत्र में प, द, त का मान रखने पर पहले बार के काम के लिये व्यर्थ स्मरण अङ्क ज्ञात किया जा सकता है । इसी प्रकार पाँचों बार के लिये अलग-अलग व्यर्थ स्मरण अङ्क ज्ञात किये जा सकते हैं । इन पाँचों अङ्कों का माध्यमान (Mean) किसी व्यक्ति के व्यर्थ स्मरण अङ्क का सूचक होगा ।

इस प्रयोग को अध्यापक पूरी कक्षा में कर सकता है । हर विद्यार्थी को एक एक कागज व पेंसिल दे दी जाती है और अध्यापक सब विद्यार्थियों को एक साथ आदेश देता है तथा समय को नोट करता रहता है । कार्य समाप्त होने पर हर विद्यार्थी का व्यर्थ स्मरण अङ्क ज्ञात कर लिया जाता है । इससे हम लोग निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकते हैं ।

निष्कर्ष—(१) इस प्रयोग से ज्ञात होता है कि जिन व्यक्तियों का व्यर्थ स्मरण अङ्क अधिक होता है उनका स्वभाव स्थिर होता है । तथा जिनका व्यर्थ स्मरण अङ्क कम होता है उनका स्वभाव अस्थिर होता है ।

(२) कम व्यर्थ स्मरण करने वाला चुस्त होता है और उसकी रुचि वैज्ञा-निक तथा प्रयोगात्मक वस्तुओं में होती है । अधिक व्यर्थ स्मरण करने वाले हृष (sensitive) और संवेगात्मक (emotional) होते हैं । उनकी रुचि इति-हास तथा साहित्य में होती है ।

भूल जाना (Forgetting)

हम भूल क्यों जाते हैं ? यह प्रश्न भी विचारणीय है । दूसरे शब्दों में हम याद क्यों नहीं रख सकते । जितना ही अधिक हमारे सम्बन्ध सार्थक होंगे उतने ही ज्यादा हम उन्हें याद कर पावेंगे अथवा सार्थक सम्बन्धों को भूलने की सम्भा-वना कम रहती है । हमारे सबसे घनिष्ठ व आत्मीय सार्थक सम्बन्ध जीवन में केवल एक ही बार घटित होते हैं फिर भी वे जीवन पर्यन्त हमारी याद में टिके रहते हैं । कुछ चीजें अक्सर जीवन में आती रहती हैं फिर भी हम उन्हें शीघ्र

भूल जाते हैं। यदि अमुक व्यक्ति का परिचय किसी समारोह में तीन बार किसी व्यक्ति से कराया जाता है तो कभी-कभी तीसरे परिचय के समय भी वह व्यक्ति पूर्व-परिचित व्यक्ति को नहीं पहिचान पाता। हम कह सकते हैं कि सम्बन्वित व्यक्ति का अन्य व्यक्ति से सार्थक सम्बन्ध (meaningful association) और रुचि नहीं हैं। किसी व्यक्ति को प्रसन्न करने का सबसे अच्छा व सरल तरीका है कि उससे सम्बन्धित विस्तृत जानकारी प्राप्त करें। जितना ही अनुभव सार्थक होगा उतनी ही देर तक उसे याद रक्खा जा सकता है। इससे समय व शक्ति दोनों की बचत होगी। जितना ही ज्यादा हम याद रखेंगे उतना ही ज्यादा हम और सीखेंगे। "To those who have shall be given; from those who have not, shall be taken away." "जिनको याद हैं उन्हें फिर मिलेगा जिनको याद नहीं है उनसे और छिन जावेगा।" जितनी ही कम जानकारी हम किसी विषय में रक्खेंगे उतनी ही जल्दी हम उसे भूल जावेंगे, क्योंकि हमारे सम्बन्ध बहुत अधिक सार्थक नहीं हैं।

स्मृति का स्थानान्तर (Transfer of Memory)

सार्थक स्मृति की एक और विशेषता प्रस्तुतनीय हैं और वह है उसकी स्थानान्तर होने की सम्भावना। जिस चीज को हम समझ बूझ और रुचि के साथ पढ़ते हैं वह चीज समय व स्थान के अनुकूल पुनस्मरण (Recall) की जा सकती है। यह मानी बात है कि जिस चीज को हम अच्छी तरह से समझते नहीं उसका प्रयोग भी हम नहीं करते। यदि बच्चा किसी सूत्र (formula) को सिर्फ जानता ही है और समझता नहीं तो निश्चित है कि उसे वह ठीक समय व स्थान पर प्रयोग नहीं कर सकेगा। इसकी भी सम्भावना है कि अवसर पड़ने पर वह उसका प्रयोग नहीं कर पावेगा। चूँकि हम वस्तु के स्थानान्तर (transfer) पर अधिक बल देते हैं इसलिए आवश्यक है कि हम विवेकयुक्त स्मृति (Rational memory) पर आदत जन्य (Rote memory) स्मृति की अपेक्षा अधिक बल दें।

(स्मृति का अवयवीवाद व अंहग्रस्त सिद्धान्त से सम्बन्ध)

The Principle of Gestalt and ego-involvement as Connected with memorisation

यदि हम सार्थक सामग्री (गद्यांश अथवा पद्यांश) को याद करने की चर्चा करते हैं तो उसमें गेस्टाल्ट के सिद्धान्तों (अवयवीवाद) का विचार करना आवश्यक हो जाता है। किसी अवतरण (passage) को याद करने के लिए

हम उसके सारांश को और उपविषयों के क्रम की मोटी रूपरेखा मस्तिष्क में रखते हैं।

अवतरण या गद्यांश द्वारा उत्पन्न की गई रुचि हमारी उन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है और याद करने का हमारा स्तर भी उठ जाता है। यहाँ पर theory of ego-involvement (अंहग्रस्त का सिद्धान्त) लागू होता है।

याद करने में 'पूर्ण' (whole) या अंश (part) का प्रयोग

याद करने के सम्बन्ध में पूर्ण या अंश (whole vs. part) के मूल्य की चर्चा अक्सर की जाती है। पूर्ण (whole) विधि द्वारा शब्दशः याद करने (verbatim memorising) में अवतरण को आद्योपान्त (from beginning to end) पढ़ा जाता है और यही क्रम बराबर चला करता है जब तक बिना किसी सहारे के उस सामग्री का पुनर्स्मरण पूरा-पूरा न कर लिया जाय। जब शब्दशः सीखने (verbatim learning) की जरूरत न हो तब भी इसी विधि का प्रयोग किया जा सकता है। पूरे अध्याय के उपविषयों की मोटी रूपरेखा समझने के लिए आद्योपान्त पढ़ना आवश्यक होगा। विद्यालयों में शिक्षक अपने पूरे भाषण का श्यामपट संक्षेप दे देते हैं ताकि विद्यार्थी उसे अच्छी तरह याद कर सकें। पाठ का सारांश और पाठ्यक्रम की पुस्तकों की सामग्री की तालिका (table) भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

बहुधा भिन्न भिन्न प्रयोगों में भिन्न-भिन्न परिणाम मिलेंगे। दो प्रयोगों का परिणाम एक न होगा। परन्तु विवेकयुक्त सामग्री (rational material) को सीखने में पूर्ण विधि (whole method) का प्रयोग करने के पक्ष में कई दलीलें पेश की जा सकती हैं यद्यपि सर्वत्र इसे सफलता नहीं मिलती। विवेक-युक्त स्मृति (rational memory) सम्बन्धों पर निर्भर करती है—अर्थ और समझ सम्बन्धों की ओर हमारा संकेत है। विषयों की पूर्ण रूपरेखा अथवा पूरा अध्याय पढ़ने से या पूरी किताब एकदम पढ़ने से सामग्री को अच्छी तरह से समझा जा सकता है। यदि सामग्री के अंशों को पढ़ा जावेगा या एक-एक 'पैराग्राफ' पढ़ा जावेगा, या एक-एक वाक्य पढ़ा जावेगा तो विषय की पूर्ण झलक पकड़ में नहीं आवेगी। कहने का तात्पर्य यह है कि विषय को पूर्ण पढ़ने से उसका स्पष्टीकरण सरलता से हो सकता है। हाँ, यदि विषय अत्य-धिक कठिन है जो विस्तृत व्याख्या के बिना समझा नहीं जा सकता है तो उसके अंशों को पूरी तरह से समझना आवश्यक होगा और बाद में हम उसका पूर्ण अर्थ समझने का प्रयत्न करेंगे। यदि पाठ के अन्त में बच्चा यही न समझ पावे कि उसने क्या पढ़ा तो द्रुत गति से आगे बढ़ना उचित न होगा।

मनोवैज्ञानिकों का मत इस समस्या (whole vs. Part) पर एक नहीं है। परन्तु पूर्ण विधि (whole method) के पक्ष में लोग अधिक हैं। बहुत कुछ अवतरण की लम्बाई पर निर्भर करता है। अंश विधि के प्रयोग से सीखने में रुचि उत्पन्न होती है। पूर्ण रूप से सीखना (whole learning) गद्यांश के सही अर्थ को समझने में सहायक होता है। पूरे अवतरण को एक साथ पढ़ने से अशुद्ध और अधूरे सम्बन्ध होने का भय नहीं रहता। सबसे उचित तरीका दोनों का मंजुल सामञ्जस्य होगा। सबसे प्रथम पूरे अध्याय या विषय की मोटी रूपरेखा समझना उचित होगा और फिर उसके अंशों को समझने का प्रयत्न करना चाहिए। फिर विभिन्न अंशों का एक दूसरे से सम्बन्ध समझना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे पूरे ज्ञान का विश्लेषण (analysis) और विभाजन (classification) क्रमबद्ध (systematised) होना चाहिए। यदि हमें जटिल वाक्यों की रचना और उनके कार्य को समझना है तो यह आवश्यक है। यदि बच्चे को अपने पढ़े हुए का सही प्रयोग सीखना है तो उसे उसका विश्लेषण करना होगा और पूर्ण के अन्य अंशों में सही-सही सम्बन्ध जोड़ना सीखना होगा। यदि वह ऐसा करेगा तो उसे स्वयं अनुभव होगा कि वह अपनी पढ़ी हुई सामग्री को अच्छी तरह से समझ रहा है और अधिक दिनों तक उसे याद भी रख सकेगा। उसका सही-सही प्रयोग कर सकने में उसे कठिनाई न होगी।

सीखने को स्थायी बनाना

(The Permanence of Learning)

यह समझना कि सीखने का परिणाम अजर अमर रहेगा न्याय संगत न होगा। हमें प्रारम्भ में ही समझ लेना होगा कि हमारे सीखने की अवस्थाओं में भूलने का भी नियम अपवाद नहीं है। कुछ विषयों में तो इसका दुष्परिणाम असीमित है।

भूलने के एक पहलू का सम्बन्ध दैहिक थकान (Physiological fatigue) से भी है। यदि प्राणी (organism) में कोई प्रतिक्रिया (response) होती है तो जिस कारण ने यह प्रतिक्रिया उत्पन्न की वही उस अवस्था को क्षण मात्र रोकने का भी प्रयास करता है। मांस पेशियों की थकान का उदाहरण इस विषय को स्पष्ट करने में सहायक होगा। मांस पेशियों की थकान उस अंग को आगे कार्य से रोके रहती है जब तक वह अंग शान्त न हो जाय अथवा उस अङ्ग की थकान दूर न हो जाय। मानसिक थकान का परिणाम

है भूलना। मानसिक थकान किसी रासायनिक परिवर्तन के कारण होती है। मानसिक थकान में इस प्रकार का एक विष उत्पन्न हो जाता है जो मस्तिष्क के पूरे भाग में मिलकर व्यक्ति को थका देता है। Hull ने इस थकान को 'reactive inhibition' कहा है।

हस्तक्षेप के कारण सीखने में काफी बाधायें आती हैं। सीखने में हस्तक्षेप की क्रिया को निम्नलिखित ढंग से समझाया जा सकता है। मान लीजिए दो बजे किशोर नामक विद्यार्थी ने ३×४=१२ का अभ्यास किया और ढाई बजे उसने २×६=१२ का अभ्यास किया। इन दोनों अभ्यासों का एक दूसरे पर क्या प्रभाव पड़ेगा? क्या एक दूसरे के मार्ग में रोड़ा अटकायेगा? या एक दूसरे की सहायता करेगा? या एक दूसरे पर बिल्कुल ही प्रभाव नहीं डालेगा? इस बात को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों की क्रियाओं में एक से अधिक सम्बन्ध सम्भव होंगे। दो बजे की क्रिया आगामी क्रिया की सहायक भी हो सकती है और दूसरी ओर वह आगे की क्रिया में बाधक भी सिद्ध हो सकती है। ऐसा भी सम्भव है कि दो बजे की क्रिया का आगे आने वाले कार्य में बिल्कुल ही प्रभाव न पड़े। इसके विपरीत ढाई बजे वाली क्रिया भी दो बजे वाली क्रिया की सहायक हो सकती है। इसे Retroactive facilitation कहते हैं। यह भी हो सकता है कि ढाई बजे वाली क्रिया दो बजे होने वाले कार्य में बाधक सिद्ध हो। इसे retroactive inhibition कहते हैं।

Proactive facilitation तथा Proactive inhibition से वही तात्पर्य है जो धनात्मक स्थानान्तर (Positive transfer) तथा ऋणात्मक स्थानान्तर (negative transfer) से है।

Retroactive inhibition द्वारा प्रस्तुत हस्तक्षेप अभिरोचन (motivation) की अनुपस्थिति तथा आदतजन्य स्मृति (Rote memory) की प्रधानता होने पर गम्भीर रूप धारण कर सकता है। यदि विद्यार्थी सार्थक सामग्री पर काम करते रहें और उनको अभिरोचन मिलता रहे तो retroactive inhibition का प्रभाव नहीं के बराबर होगा।

कुछ मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि हस्तक्षेप विस्मरण का एक साधन है। इस विचार धारा के मनोवैज्ञानिकों का मत है कि सीखने के बाद यदि गहरी निद्रा ले ली जाय तो सामग्री का विस्मरण बहुत कम होगा। जगने पर सीखी हुई चीज स्वयं सामने आ जावेगी।

भूलने के सम्बन्ध में दूसरा दृष्टिकोण है कि बहुत कुछ भूलना अस्वीकृत

विचारों को दबाने (repression of unacceptable ideas) के कारण होता है। फ्रायड के अनुसार सभी मनुष्यों में दोष वेचक (censor) होता है जो हमें उच्छृङ्खल विचारों, भावनाओं, इच्छाओं से दूर रखता है। यदि कोई दुखद घटना हमारे जीवन में घटित होती है तो दोष वेचक (censor) और super ego उसे विस्तृत के अन्धकार में सदा के लिये ढकेल देते हैं। विचारों को पीछे हटाने की यही क्रिया 'भूलने' के नाम से संसार को ज्ञात है। फ्रायड के मतानुसार सभी भूलने के पीछे यही कारण होता है। हम जिस चीज को भूलना चाहते हैं उसी को भूलते हैं या हमारा censor (दोषवेचक) या super-ego जिसे पसन्द नहीं करते उसे हम भूलते हैं।

—:o:—

अध्याय ४

ध्यान या अवधान और रुचि

(Attention and Interest)

ध्यान क्या है ?—

शिक्षक के समक्ष बच्चों के ध्यान को केन्द्रित एवं बनाये रखने की समस्या है। यह हमारा दिन प्रतिदिन का अनुभव है कि कक्षा में कुछ विद्यार्थी शान्त बैठे रहते हैं और वह शिक्षक की बातों की ओर ध्यान नहीं लगाते। उनका ध्यान इधर उधर रहता है। मानसिक क्रियाओं में ध्यान का अपना विशेष महत्व है। यदि मन जरा भी सक्रिय हैं तो वह किसी न किसी बात पर केन्द्रित अवश्य होगा। हममें से प्राय: सभी लोग जानते हैं कि मन किन किन बातों की ओर जाता है। यदि हम बच्चों का ध्यान स्वेच्छा से किसी वस्तु पर आकर्षित करना चाहें तो हमें ध्यान के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से जानकारी करनी होगी — विशेषतय: मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार।

एक समय था जबकि ध्यान को एक मानसिक क्रिया या शक्ति (faculty) के रूप में देखा जाता था और लोगों का विश्वास था कि इसे किसी वस्तु पर केन्द्रित किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, लोगों का विश्वास था कि ध्यान को प्रशिक्षित किया जा सकता है। हम इस सिद्धान्त के पक्ष में नहीं हैं। जब कोई

किसी वस्तु पर ध्यान करना चाहे तभी ध्यान को उत्पन्न किया जा सकता है। मेरा ध्यान कार्य की ओर केन्द्रित किया गया है कहने की अपेक्षा मैं अपना कार्य ध्यान से करता हूँ कहना कहीं ज्यादा अच्छा होगा।

कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि चेतना (consciousness) को किसी विचार या वस्तु पर केन्द्रित करने को ही ध्यान कहते हैं। मान लीजिए कि हम दृश्य देख रहे हैं। निकट की वस्तुएँ हमें स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती हैं जबकि दूर की वस्तुएँ हम स्पष्ट रूप से देख नहीं पाते। दृश्य के समान चेतना का भी जगत है। ध्यान की वस्तु हमें स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ती है जबकि अन्य वस्तुएँ धुँधली। क्योंकि ये वस्तुएँ हमारे चेतना की सीमा (margin of consciousness) पर स्थित रहती हैं। अतः विचार की सामग्री को मस्तिष्क के सामने स्पष्ट रूप से लाने को ध्यान (attention) कहते हैं।

ध्यान (attention) के सम्बन्ध में उपरोक्त कथन सर्वथा उचित है। अब प्रश्न है, हम ध्यान करते क्यों हैं? मग्डूगल (McDougall) की परिभाषा से इस प्रश्न को सरलता से समझा जा सकता है। मग्डूगल के अनुसार "Attention is merely conation or striving considered from the point of view of its effects on cognitive process.[1]

ध्यान (attention) ज्ञान प्राप्त करने लिये मन की एक चेष्टा (conation) है। केवल स्पष्टता और समझ (comprehension) से ध्यान की चेष्टा नहीं होती अपितु ध्यान में मस्तिष्क सक्रिय हो उठता है और कुछ करने का प्रयत्न करता है। जो बच्चा ध्यान कर रहा है वह निष्क्रिय नहीं है क्योंकि ध्यान की प्रतिक्रिया (response) एक सक्रियता की निशानी है। आँख और मस्तिष्क एक निश्चित बिन्दु पर स्थिर नहीं होते और न आँखों की गति (movement of eye) और मानसिक प्रयत्न किसी समस्या के हल को निकालने के लिए इधर उधर बिखरे रहते हैं। ध्यान करने में एक विशेष उद्देश्य होता है। हमारी गति (movement) समन्वेषी (exploratory) मात्र है जैसा कि अवतरण (Passage), इंजिन और नक्शे की परीक्षा में होता है।

ध्यान को उत्पन्न करने के तरीके सम्बन्ध या साहचर्य स्थापित करने के नियमों (laws of association) और उद्दीपक या उत्तेजक प्रतिक्रियावाद (stimulus response theory) पर आधारित हैं। उदाहरण स्वरूप परिवर्तन (change) ध्यान को उत्तेजना देता है। जो लोग सूक्ष्मदर्शी यन्त्र

---

१. McDougall : 'An Outline of Psychology' p.p. 271, 272.

(microscope) का प्रयोग करते हैं वे slide को इधर उधर हिलाने के महत्व से भली भाँति परिचित होंगे कि किस प्रकार स्लाइड (slide) को इधर उधर हिलाने से ध्यान उत्तेजित होता है।

नकारात्मक रूप से निरन्तर एक प्रकार के उद्दीपक या उत्तेजक (stimulus) के बने रहने के कारण एक उदासीनता आ सकती है। किसी चीज की बार-बार पुनरावृत्ति होने से भी ध्यान हट सकता है। यदि एक अध्यापक किसी बात को अनावश्यक बार बार दुहराता है तो उससे भी ध्यान बटने की आशंका रहती है। दूसरी ओर, यदि सावधानी से पुनरावृत्ति की जाय तो ध्यान और भी गहरा हो सकता है। जैसा कि व्यापारी, विज्ञापक, प्रचारक आदि सभी इस तथ्य को भलीभाँति समझते हैं। किसी भी कला की लय (rhythm), चाहे कला का रूप कोई भी हो, प्रशंसक की उद्दीपन में सहायक होती है। इसी प्रकार से पुनरावृत्ति को पाठ या पाठों के क्रम में यथाउचित स्थान पर प्रयोग करने से वह लाभकारी सिद्ध हुआ है। उद्दीपन (stimulus) की तीव्रता (strength) भी ध्यान को केन्द्रित करने में सहायक सिद्ध हुई है। कलाकार, कवि, लेखक और संगीतज्ञ सभी इसका प्रयोग करते हैं। कलाकार ध्यान को केन्द्रित करने के लिए ही चमकीले रंगों, स्पष्ट दृश्यों व वर्णन का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार से निश्चित रूप (definite form) भी ध्यान को बढ़ाता है—मूर्त (definite) उपमायें, चित्र (Diagram) और पाठ में यथाउचित जोर देने की परम्परायें इसी के अन्तर्गत आती हैं। यहाँ पर अवयवी (gestalt) का भी उदाहरण दिया जा सकता है। उपरोक्त विवेचन को हम सारांश में कह सकते हैं कि परिवर्तन, पुनरावृत्ति, शक्ति (Strength) और निश्चित रूपों (definite forms) से ध्यान को केन्द्रित करने की भिन्न-भिन्न रीतियाँ हैं। हमारे ध्यान की वस्तुओं के चुनाव की क्या रीति है ?—यह समस्या भी विचारणीय है। जिन वस्तुओं में हमारी रुचि होती है उन्हीं का बहुधा हम ध्यान करते हैं या जिन वस्तुओं का हमारे जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध होता है उनमें हम अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं।

ध्यान और रुचि (Interest) के पारस्परिक सम्बन्ध की विवेचना करने से पूर्व हमें रुचि (Interest) के सही अर्थ को समझ लेना उचित होगा।

रुचि (Interest)

रुचि लैटिन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है। 'it matters' अथवा (it concerns)। यह सत्य है कि हमारी दिलचस्पी की वस्तु से ही हमारा सम्बन्ध होता है। इस परिभाषा के अनुसार हम बाहर की वस्तुओं की ओर संकेत कर रहे हैं न कि व्यक्ति विशेष की ओर जो वस्तुओं में रुचि रखता हो।

यदि किसी व्यक्ति की संगीत में रुचि है तो हम कह सकते हैं कि संगीत उस व्यक्ति की प्रिय वस्तु है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने रुचि शब्द का प्रयोग व्यक्ति के उस अनुभव को व्यक्त करने के लिये किया है जब वह संगीत में तल्लीन रहता है। इस मत के अनुसार व्यक्ति किसी चीज़ में तब तक रुचि लेता है जब तक वह उस कार्य में व्यस्त रहता है। अब प्रश्न उठता है कि यदि संगीतज्ञ का ध्यान चंचल हो जाता है तो क्या वह अपने संगीत में रुचि नहीं लेता ? इतना तो निश्चित है कि ध्यान बँट जाने पर भी संगीतज्ञ का ध्यान संगीत में रहता अवश्य है। मैग्डूगल (McDougall) ने रुचि (Interest) की परिभाषा विस्तृत रूप से दी है। उसके शब्दों में, "Being interested is an enduring condition of the subject."[1] (अर्थात् रुचि लेने से मतलब है व्यक्ति की स्थाई अवस्था का वर्णन)। किसी चीज़ में स्थाई रूप से रुचि होने के माने हैं कि उस चीज़ के प्रतिमन में एक स्थाई भाव का बन जाना। उदाहरण से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती हैं। संगीत में रुचि रखने का अर्थ हैं कि संगीत के प्रति या संगीत के विचार मात्र के प्रति मन में एक स्थाई भाव उत्पन्न हो जाना। इसी मत से प्रभावित होकर Drever ने भी कहा है, "An interest is a disposition in its dynamic aspect.[2] अर्थात् रुचि स्वभाव का क्रियात्मक पहलू है।

यदि हम इस परिभाषा से सहमत हैं तो इस शब्द का प्रयोग व्यक्ति की रुचि के विषय को प्रकट करने की अपेक्षा रुचि के विषय का वर्णन करना ही हमारे लिये बहुत कुछ उपयुक्त होगा। रुचि को अनुभव की संज्ञा देने के बजाय हम कह सकते हैं कि ध्यान करने की अवस्था को रुचि कहते हैं।

मानव की मूल प्रवृत्तियाँ (instincts) ही जिन्हें लेकर वह संसार में अवतीर्ण हुआ है रुचि के विषय क्षेत्र हैं और उन्हीं मूल प्रवृत्तियों के आधार पर ही वह चीज़ों का प्रतिबोधन (perception) करता है अथवा उनमें अपनी रुचि लेता है। परन्तु इस जन्मजात स्वभाव (Disposition) के अतिरिक्त और भी अर्जित (acquired) जटिल स्वभाव होता है जिसे हम बहुधा स्थाई भाव (Sentiment) कहते हैं। और जिस विचार के आधार पर स्थाईभाव (Sentiment) का संगठन होता है वह हमारी अर्जित रुचि का विषय होता हैं। 'रुचि एक विस्तृत शब्द है। यदि हम इस शब्द का प्रयोग उन विषयों या कार्यों के लिए करते है जिनमें कोई व्यक्ति दिलचस्पी रखता है तो हम कह

१. McDougall : 'An Outline of Psychology' p. 274.

२. Drever : 'Introduction to the Psychology of Education' p. 126.

सकते हैं कि अमुक व्यक्ति की इन कामों या विषय में रुचि है। मूल प्रवृत्तियों (Instinct) को हम जन्मजात (congenital interest) कह सकते हैं। जीवन में न मालूम और कितनी रुचियां प्राप्त की जाती हैं। यदि हमारा लगाव किसी विषय में संवेगात्मक उत्तेजना (emotional excitement) उत्पन्न करता है तो हम उस समय स्थाई भाव का प्रयोग करते हैं। इस बात को हमें अच्छी तरह से समझ लेना चाहिये कि स्थाई भाव (Sentiment) रुचि के अन्तर्गत आता है या यों कहिए कि स्थाई भाव रुचि का ही एक भेदहै। अँगरेजी में यही चीज इस तरह से व्यक्त की गई है "Interest is the most comprehensive term. When certain objects or certain lines of action have a special appeal for a individual, we speak of the individual as having an interest in such objects or lines of action. Instinct may thus be regarded as congenital interest, and many other interest are acquired during life. Where the appeal is of such a kind as, to involve emotional excitement, the term 'Sentiment' becomes applicable, but sentiment is obviously a species under interest."[1]

ध्यान और रुचि में सम्बन्ध

इस प्रकार से ध्यान और रुचि में घनिष्ट सम्बन्ध है। यह कहना और भी अधिक उपयुक्त होगा कि एक ही वस्तु को देखने के लिए ये दो दृष्टिकोण हैं। एक ही सिक्के के ये दो किनारे हैं। दोनों में आधारभूत बात है मानसिक ढाँचों (mental structure) में एक स्वभाव का संगठन। रुचि शब्द का प्रयोग हम ढाँचे के लिए करते हैं जब कि ध्यान शब्द का प्रयोग हम उन वस्तुओं के सोचने और उनमें सक्रिय होने के अनुभव के लिए करते हैं जो उपरोक्त ढाँचे के लिये हर समय स्वीकृत रहता है। किसी वस्तु में रुचि लेने का तात्पर्य है कि उस वस्तु में ध्यान लगाने के लिए तत्पर रहना और ध्यान हमेशा मानसिक ढाँचे में क्रियाशीलता की ओर संकेत करता है। यह बात अक्षरशः सत्य है कि रुचि गुप्त ध्यान है जब कि ध्यान रुचि का क्रियात्मक रूप है। अंग्रेजी में इसी को इस प्रकार कहा है: "Interest is latent attention and attention is interest in action."[1]

ध्यान के प्रकार (Kinds of attention)—

संकल्प रहित (Non-volition) **ध्यान**—

संकल्प रहित ध्यान मूल प्रवृत्तियों (Instincts) और स्थाई भावों

१. Collin, M & Drever, J.; 'Psychology and practical life'; University of London Press Ltd. London E. C. L., P. 47.

(Sentiments) पर अवलम्बित ध्यान को कहते हैं। जब यह केवल मूल-प्रवृत्तियों के ही आश्रित रहता है तो इसे enforced non-volitional attention (बाध्य संकल्प रहित ध्यान·) कहते हैं। (Spontaneous non-voltional attention)सहज संकल्प रहित ध्यान का आदिश्रोत (motive power) स्थाई भाव और अर्जित रुचियाँ हैं।

कभी कभी ध्यान इच्छा के वशीभूत भी होता है। ऐसी हालत में इसे संकल्प सहित ध्यान (volitional attention) कहते हैं। इसके दो भेद हैं:—

(१) Implicit volitional (अस्पष्ट संकल्प ध्यान) जो केवल एक संकल्प से ही जागृत हो जाय और अधिक समय तक निरन्तर बना रहे।

(२) Explicit attention (स्पष्ट संकल्प ध्यान) जिसके उत्पन्न करने में और बनाये रखने में संकल्पों की बार बार पुनरावृत्ति की आवश्यकता पड़े।

निम्नांकित तालिका से ध्यान का वर्गीकरण सरलता व स्पष्टता से समझा जा सकता है

ध्यान Attention

संकल्प रहित ध्यान (Non-volitional attention)

- (Enforced (बाध्य) (मूलप्रवृत्तियों पर आश्रित)
- Spontaneous (स्वत:) (स्थाई भाव की उपज)

संकल्प सहित ध्यान (Volitional attention)

- Implicit (अस्पष्ट) (एक ऐच्छिक कार्य)
- Explicit (स्पष्ट) (पुन: पुन: दोहराए गए इच्छा के कारण)
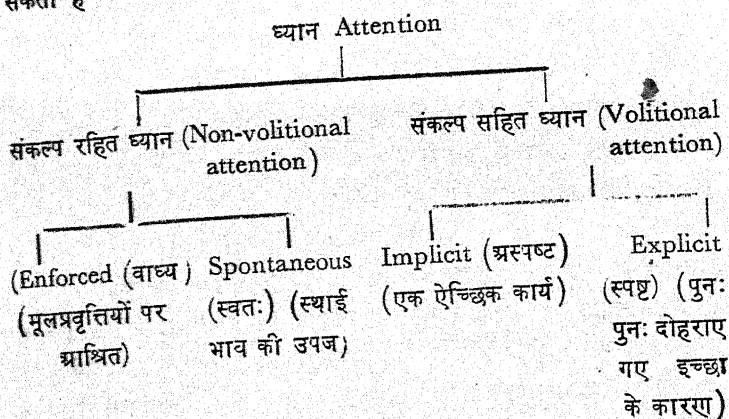
यदि ध्यान प्रेच्छा (will) के वशीभूत है तो यह कहना कि ध्यान रुचि का क्रियात्मक रूप है कहाँ तक सत्य होगा! हो सकता है कि हम अपनी प्रेच्छा के बल पर उन विषयों में भी ध्यान केन्द्रित कर सकें जिनमें हमारी रुचि बिल्कुल नहीं है। परन्तु हमें स्मरण रखना चाहिए कि प्रेच्छा के द्वारा हम अपरोक्ष (Indirect) विषयों पर ही अपना ध्यान एकाग्र कर सकते हैं। प्रेच्छा तो सम्पूर्ण सुसंगठित स्वत: (Self) की क्रिया है। प्रेच्छा के वशीभूत कार्य न तो मूलप्रवृत्तियों पर ही और न स्थाई भावों के द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं पर वह तो समन्वित व्यक्तित्व (Integrated Personality) के द्वारा पूर्ण किये जाते हैं। संकल्प सहित ध्यान के अन्तर्गत रुचि किसी मूल प्रवृत्ति

या स्थाई भाव पर आधारित न होकर स्वयं प्रधान स्थाई भाव है—अर्थात विषद एवं विस्तृत स्वभाव का वह अभिन्न अंग है जिसके अन्तर्गत अन्य सभी छोटी मोटी रुचियाँ आ जाती हैं ।

कक्षा में ध्यान को एकाग्र करने की समस्या

शिक्षक के सामने बच्चों का ध्यान अधिक समय तक एकाग्र रखने की जटिल एवं गम्भीर समस्या है । इस समस्या के समाधान की तीन श्रेणियाँ हैं जिनसे शिक्षक को भली भाँति परिचित होना चाहिए । सीखने के सिद्धान्तों से इनका घनिष्ट सम्बन्ध है जिसकी चर्चा पिछले पृष्ठों में की जा चुकी है । फिर भी सुविधा के हेतु इन्हें फिर दुहराया जा रहा है:—

१. रुचि, आश्चर्य एवं उत्सुकता से ध्यान उत्पन्न किया जाता है । इसी से बच्चा टिकट संग्रह या तैरने के व्यासंग (hobby) की ओर अपना झुकाव प्रदर्शित करता है । इन दोनों कार्यों में एक अवस्था ऐसी भी आती है जब रुचि और उत्सुकता ही पर्याप्त नहीं होती । इसी प्रकार से उपन्यास के प्रारंभिक अध्यायों में हमारी रुचि उत्पन्न की जाती है । नहीं तो हम उसे पढ़ना पसन्द नहीं करते

इस परिभाषा का संकेत केवल विषय या पढ़ने की सामग्री के चुनाव की तरफ है । पाठशाला का समस्त कार्य इसी सिद्धान्त के अनुसार होना चाहिये और जिस विषय में कई पाठ पढ़ाने आवश्यक हैं उनमें शिक्षक को प्रत्येक नए पाठ में पुनः पुनः रुचि उत्पन्न करनी आवश्यक होगी । उदाहरण के तौर पर अंकगणित के प्रत्येक पाठ में बच्चों को कुछ न कुछ खोज करने (exploration) का कार्य मिलना चाहिए ।

२. पाठशाला के उन विषयों को पढ़ाने में जिनको समाप्त करने में अधिक समय की आवश्यकता होती है हमारा पढ़ाने का मुख्य ध्येय ही समाप्त हो जाता है क्योंकि बालक ऐसे पठन पाठन में ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाते । इस प्रकार के कार्य बालक के लिये अति कठिन होते हैं । हममें से कितने ऐसे हैं जो बच्चों की दिलचस्पी की चमक मिट जाने पर रुक कर एक नए उत्साह और जोश से काम को फिर प्रारम्भ कर देते हैं ? काम को निरन्तर करते रहने में हमें किसी प्रेरक (incentive) का उपयोग करना होगा । एक प्रेरक (incen tive) कार्य में और अधिक गति व तीव्रता उत्पन्न कर सकता है । वह आत्म-प्रदर्शन (Self assertion) व व्यक्ति को शक्तियों को चुनौती दे सकता है । शिक्षक को इस प्रेरक का प्रयोग करना चाहिए । उदाहरण के तौर पर हो सकता है कि खोज करने की प्रारम्भिक अवस्था के बाद पढ़ने में बच्चे की

रुचि कम हो जाय। बच्चे को विवश होकर पढ़ना पड़ता हो। ऐसी अवस्था में हो सकता है डर, अनुशासन, सामाजिक प्रतिष्ठा, अध्यापक का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने अथवा कक्षा में अग्रणीय रहने या माँ-बाप तथा अध्यापक से पारितोषिक मिलने की भावना उसके पढ़ने की क्रिया को बढ़ावा दे सके।

(३) तीसरी अवस्था पर सहज स्वतः ध्यान (spontaneous attention) फिर होने लगता है। क्योंकि सीखने वाला अपनी सामग्री पर कुछ अधिकार कर लेता है। यह अधिकार खेल में, पढ़ाई में, या मनपसन्द कार्यों किसी में भी सम्भव है।

पहिली व अन्तिम अवस्थायें स्वतः व बिना संकल्प होती हैं। शिक्षक का मुख्य कार्य मध्यम (ऐच्छिक व संकल्प) की अवस्था पर आता है। इस अवस्था से सफलतापूर्वक पार जाने के लिए उसे अपनी सामर्थ्य अनुसार सारी बुद्धि व शक्ति का प्रयोग करना होगा। अपने कार्य में उसे यह भी ध्यान रखना होगा कि उनमें ऊपर लिखे हुए तीनों पद क्रम से आ सकें।

बोध का विस्तार (Span of Apprehension)

बोध के विस्तार को 'Tachistoscope' टचिस्टसकोप यंत्र की सहायता से मापा जा सकता है। हम यह जानने का प्रयास करते हैं कि अल्पकाल में कितने शब्द या रेखाओं या विन्दुओं का बच्चा बोध कर सकता है। वह कब और कब नहीं सार्थक पूर्णांक (meaningful whole) बना पाते हैं। हम समग्र विधि (whole method) के नियमों का भी अध्ययन करने का प्रयत्न करते हैं। प्रत्यक्षीकरण द्वारा मस्तिष्क की इस विशेषता कि वह पूरी वस्तु को सबसे पहिले देखता है जाँच की जा सकती है।

Tachistoscope के सामने बच्चे को बिठाया जाता है। उसकी आखें aperture (खिड़की) जहाँ से कार्ड डाले जाते हैं—की सीध में रहती हैं। प्रयोग करने वाला शटर (shutter) से aperture को बन्द कर देता है और सूराख (slot) में वह एक कार्ड जिस पर दो अक्षर रहते हैं सामने प्रस्तुत करता है। पात्र (subject) Shutter पर उस स्थिर बिन्दु को देखता रहता है जिसके विरुद्ध वह कार्ड दिखाया जाता है। अनुभवकर्ता (experimenter) 'सावधान' शब्द कह कर व्यक्ति का ध्यान Fixation point पर केन्द्रित करता है। दो सैकेन्ड पश्चात अनुभवकर्ता (experimenter) shutter को छोड़ता है और पात्र कार्ड पर अंकित अक्षरों को पढ़ने की कोशिश करता है। यदि पात्र सफलतापूर्वक उन अक्षरों को पढ़ लेता है तो अनुभवकर्ता तीन अक्षरों वाला कार्ड सामने प्रस्तुत करता है। इस

प्रकार से अनुभवकर्ता ज्यादा से ज्यादा अक्षर-समूहों वाले कार्डों को सामने प्रस्तुत करता चला जाता है। जब पात्र कार्ड विशेष को पढ़ने में असमर्थ हो जाता है तो अनुभवकर्ता उसी संख्या वाले दूसरे अक्षरों के कार्ड को सामने पेश करता है। यदि इस बार फिर वह कार्ड के अक्षरों को पढ़ने में असफल हो जाता है तो तीसरी बार समान संख्या वाले अक्षरों के कार्ड को सामने प्रस्तुत किया जाता है। अगर तीसरी बार भी वह विफल रहता है तो प्रयोग पूरा हो जाता है। तीन बार में ज्यादा से ज्यादा अक्षर समूहों के पढ़ने की योग्यता ही व्यक्ति के वोध का विस्तार (span of apprehension बताती है।

प्रयोग के दूसरे खंड में सार्थक (meaningful) शब्द समूहों या अक्षरों को प्रस्तुत किया जाता है। अनुभवकर्ता पांच शब्दों के कार्ड से अपना प्रयोग आरम्भ करता है और अधिक से अधिक शब्द समूहों के कार्डों को सामने लाया जाता है जब तक कि पात्र पढ़ने में असमर्थ न हो जाय जब पात्र तीन बार के प्रयत्न में कुछ अक्षरों वाले कार्ड को पढ़ने में विफल हो जाता है तो वहीं प्रयोग समाप्त हो जाता है। वही अक्षरों की संख्या सार्थक वस्तु के प्रति वोध विस्तार होगी।

तीसरे बार में अक्षर विन्यास की अशुद्धियों (misspelt words) वाले अक्षरों को सामने लाया जाता है। यहाँ पात्र को इन्हें पढ़वाया जाता है। पात्र अशुद्ध अक्षर विन्यास वाले शब्दों को भी सही पढ़ता है।

अनुभव से ऐसा ज्ञात हुआ है कि प्रथम प्रयास में, जब अक्षरों से शब्द नहीं बनता, व्यक्ति चार या पांच अक्षरों से अधिक एक समय में नहीं पढ़ पाता। दूसरे प्रयोग में वह ज्यादा अक्षर पढ़ लेता है। कभी कभी बारह या तेरह अक्षरों को पढ़ लेता है। तीसरे प्रयोग में अक्षर विन्यास की अशुद्धियों को नहीं जान पाता और अशुद्ध शब्दों को शुद्ध शब्दों के तौर पर पढ़ जाता है। इन प्रयोगों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सार्थक शब्द समूहों में बोध का विस्तार निरर्थक अक्षरों से अधिक होता है। हमें यह भी ज्ञात होता है कि मस्तिष्क सर्वप्रथम पूरे को देखता है फिर उस वस्तु के विभिन्न भागों का विश्लेषण करता है।

ध्यान का विचलन (Fluctuation of Attention)

एक बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न है कि कितनी देर तक किसी वस्तु पर ध्यान केन्द्रति किया जा सकता है। प्रयोगों ने सिद्ध कर दिया है कि हम किसी वस्तु पर अधिक देर तक ध्यान नहीं जमा सकते। व्यक्तियों पर किये गए प्रयोगों से

सिद्ध होता है कि हर पाँच या छः सैकेन्डों के बाद ध्यान विचलित हो जाता है। ध्यान का विचलन ध्यान बंट जाने के कारण होता है। ध्यान के विचलन को कई तरीकों से मापा जा सकता है। एक तो यही तरीका है कि व्यक्ति से कुछ दूर एक घड़ी रख दीजिए—घड़ी उतनी दूर रहे जिससे उसकी 'टिक टिक' ध्वनि व्यक्ति को मामूली तौर पर सुनाई दे। व्यक्ति को महसूस होगा कि समय समय पर उसको घड़ी की आवाज नहीं सुनाई देगी। उससे यह कह दिया जाय कि आवाज जब तक सुनाई दे तब तक वह पेन्सिल को उठाये रक्खे और न सुनाई देने पर वह पेन्सिल को गिरा दे। अनुभवकर्ता इसको गिनता रहे कि किसी निश्चित समय में ध्यान का विचलन कितनी बार हुआ। इससे ज्ञात हो सकता है कि एक मिनट में कितनी बार ध्यान विचलित हुआ। ऐसा देखा गया है कि हर पाँच या छः सैकेन्ड पश्चात् ध्यान का विचलन होता है।

ध्यान के विचलन के सम्बन्ध में दो और मत हैं। एक विचारधारा के अनुसार किसी इन्द्रिय की मांस पेशियों के थकान से ध्यान-विचलन होता है। जैसे कि आँख की माँस पेशियों की थकावट। इसे peripheral सिद्धान्त का नाम दिया गया है। कुछ लोग ध्यान के विचलन को स्नायु केन्द्रों (nervous centres) में सीमित करते हैं। इस विचार पर आधारित सिद्धान्तों को (Central theories) कहते हैं।

(ध्यान बटना) (Division of Attention)

मनोवैज्ञानिकों के सामने एक और समस्या है कि क्या दो वस्तुओं पर एक ही समय में ध्यान एकाग्र किया जा सकता है! प्रयोगों ने सिद्ध कर दिया है कि यदि एक ही समय में दो चीज़ों पर ध्यान केन्द्रित किया गया तो दोनों वस्तुओं पर कुपरिणाम होगा। ध्यान के बटने की समस्या पर एक प्रयोग द्वारा अनुसन्धान किया गया। एक व्यक्ति को दो काम एक निश्चित समय में अलग अलग करने को दिये गये और उसके कार्यों का मूल्यांकन किया गया और तत्पश्चात् दोनों काम साथ ही साथ करने को कहा गया और फिर उन कार्यों का मूल्यांकन किया गया। जैसे किसी व्यक्ति से एक ही समय में ताशों को एक क्रम में लगाने और अंकगणित की गिनतियों को एक क्रम में गिनने को कहा जा सकता है। यह देखा गया कि साथ साथ करने से दोनों कार्यों पर दुष्परिणाम होते हैं। हमको यहाँ पर विस्तार के नियम को भी समझने का अवसर मिलता है। मानसिक शक्ति यहाँ एक कार्य के बजाय दो कार्यों पर लग रही है। फलस्वरूप एक कार्य को जो शक्ति मिलनी चाहिए थी

उससे कम शक्ति उसको प्रारत है। यदि एक कार्य अपने आप हो रहा है और उसे विशेष मानसिक शक्ति की आवश्यकता नहीं हो तो इस कार्य को अन्य कार्य के साथ-साथ करने पर इसकी पूर्ति में कोई विशेष हानि नहोगी।

ध्यान में बिघ्न (Distraction of attention)

लोगों को ऐसा विश्वास है कि विघ्न से कार्य क्षमता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। परन्तु प्रयोगों से इस बात की पुष्टि नहीं होती। कभी कभी तो विघ्न से कार्य कुशलता बढ़ जाती है।

इस प्रकार के कुछ प्रयोगों का वर्णन Collin and Drever की पुस्तक में दिया गया है। Collin and Drever का कहना है :

"If we ask an individual to cross out all the a's and l's in a page of print as quickly as he can for a quarter of an hour and then to repeat the experiment under distracting conditions subjecting his left hand to electric shocks or causing distracting sounds in his neighbour hood, we shall find in all probability that the distraction seems to have increased his output. From this view point the distraction may be considered as an incentive leading to increased attention to this task; the individual as it were rises to the occasion and draws upon his reserve energy or express it in a different way, his pugnacious instinct is challenged and must respond."[१]

अधिक तीव्र और अनियमित विघ्न Distraction) से प्राय: ध्यान में विघ्न होता है। यदि विघ्न हल्का व नियमित हुआ तो व्यक्ति अपने को उसके अनुकूल बना लेता है और इस विघ्न का उस पर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता। व्यक्ति विशेष का इस तरफ ध्यान भी नहीं जाता और वह प्राय: इसकी बिना प्रयत्न के उपेक्षा कर लेता है। तीव्र, गहन और अनियनित उत्तेजना द्वारा उत्पन्न विघ्न न केवल हमारे कार्यों में विघ्न ही डालते हैं परन्तु व्यक्ति विशेष को ऐसी परिस्थिति में कार्य पर अधिक शक्ति लगाने की आवश्यकता होती है फलस्वरूप उसे थकान का अनुभव होने लगता है।

अपेक्षी ध्यान (Expectant attention)

कभी कभी मस्तिष्क को भावी घटना का पूर्वाभास हो जाता है और

1. Collin & Drever : Experimental Psychology p. 146.

वह इसके लिए पहिले से ही उस पर एकाग्र चित्त होने की तैयारी कर लेता है। इसे ही अपेक्षी ध्यान (expectant attention) कहते हैं। उदाहरण के तौर पर कभी कभी हमें अपने दोस्त के आने की सम्भावना पर पूरा विश्वास हो जाता है। जैसे ही दरवाजे पर खड़ाखड़ाहट सुन पड़ती है हम विश्वास के साथ उठ खड़े होते हैं कि हमारा दोस्त आ गया जब कि परिवार के किसी सदस्य ने ही दरवाजा खड़खड़ाया था।

अध्याय ५

प्रशिक्षण का स्थानान्तर (Transfer of Training)

स्थानान्तर का विचार शायद सम्पूर्ण पढ़ाई का आधारभूत (basic) सिद्धान्त है। यदि बहुत से मनुष्य इस पर विश्वास न करें कि स्कूल की पढ़ी हुइ चीजें जीवन में भी लाभदायक होंगी तो शायद वे स्कूलों को चलाना अथवा उनमें विश्वास करना बन्द कर देंगे। जो स्कूलों में विश्वास करते हैं या शिक्षा के कार्य में अपना जीवन समर्पित करते हैं उनका विश्वास है कि स्कूल में प्राप्त अङ्कगणित का ज्ञान व्यावहारिक जगत में भी लाभदायक होता है और स्कूल के वातावरण में विकसित में किये गए चारित्रिक गुण निरक्षक जगत में भी व्यक्ति के जीवन में पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहते हैं और वे उसका स्थान समाज में उच्च करते हैं।

स्थानान्तर की समस्या मनोवैज्ञानिकों एवं शिक्षकों दोनों को ही काफी समय परेशान करती रही है। वह नियमित प्रशिक्षण (Formal Training), मानसिक अनुशासन (Mental Discipline) और प्रशिक्षण केस्थानान्तर के नामों से भिन्न-भिन्न समयों होती रही है। यह प्लैट्ट (Platoe) के सिद्धान्तों में से एक नियम था। प्लेटो ने कहा है : "Further have you ever noticed that those who have a natural capacity for calculation are,generally

speaking, naturally quick at all kinds of study; which men of slow intellect if they are trained and exercised in arithmetic if they get nothing else from it, all improve and become sharper than they were before ?" अर्थात् प्लेट्व ने कहा है "आपने कभी देखा है कि जिन लोगों में अंकगणित की गणना की स्वाभाविक सामर्थ्य होती है वे बहुधा प्रत्येक प्रकार के अध्ययन में प्रवीण होते हैं। कमजोर या मन्द बुद्धि-वाले लोगों को यदि अङ्कगणित में प्रशिक्षित व अभ्यास कराया जाय तो वे और भी कुछ नहीं सीख पायेंगे तो कम से कम इतना अवश्य होगा कि वे सभी पहिले से अधिक तेज व प्रवीण जावेंगे।"

मानसिक अनुशासन से सिद्धान्त (Theory of mental Discipline) के अनुसार अध्ययन की सामग्री अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण होती है—महत्व की वस्तु है उसका मस्तितक को प्रशिक्षण करने का प्रभाव। तार्किक शक्ति (Reasoning) अङ्कगणित द्वारा, स्मृति इतिहास द्वारा प्रशिक्षित की जा सकती है। कोई भी नीरस से नीरस वस्तु बच्चों को तब लाभदायक होती है यदि उससे प्रशिक्षण सम्भव हो। भूतकाल में निश्चित रूप से और वर्तमान में किसी सीमा तक स्थानान्तर से लोगों ने बड़ी बड़ी आशायें लगाई हैं। उन लोगों का विश्वास था कि जो हस्तकला (Manual Training) में साफ सुथरा काम करेगा वह अपने कपड़ों के प्रबन्ध में, अपने कागजों में और यहाँ तक कि अपने विचारों में भी साफ सुथरा रहेगा। उनका यह भी विश्वास था कि जिस व्यक्ति ने पढ़ाने के काम में प्रवीणता प्राप्त कर ली है उसे पाठशाला के प्रबन्ध में भी दक्षता प्राप्त करना सरल है।

स्थानान्तर का मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त या शक्ति मनोविज्ञान (Psychological theory of Transfer of Training or Faculty Psychology)—

शक्ति मनोविज्ञान, प्राचीन संरचनिक सिद्धान्त (Structure theory) का नवीन रूप है। इसके अनुसार मस्तिष्क में विभिन्न शक्तियाँ, जो एक दूसरे से पारस्परिक स्वतन्त्र हैं- विद्यमान रहती हैं।

मध्यकाल से जानने (knowing), महसूस करने (feeling) और प्रच्छा (willing) आदि मस्तिष्क की प्रमुख शक्तियों ने आत्मा के स्वभाव के सिद्धान्तों को निर्धारण करने में महत्वपूर्ण योग दिया है। लोग निर्णय (Judgement), स्मृति (memory) और कल्पना (imagination) की शक्तियों का भी मूल्य पहिचानते थे। समय के साथ साथ इन स्वतन्त्र शक्तियों की संख्या निरन्तर बढ़ती रहीं। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में स्काटलैंड के दार्शनिक, रीड (Reid) ने अनुकरण करने की, आत्म गौरव (self-esteem), दया (Pity), कर्तव्य

(duty), प्रत्यक्षीकरण (perception), निर्णय (Judgement), स्मृति (memory), प्रत्यय (conception) और नैतिक रुचि (moral taste) आदि शक्तियों को मिलाकर लगभग तीस शक्तियों की सूची उपस्थित की। उन्नीसवीं शताब्दि के प्रारम्भ में इनकी संख्या सैंतीस हो गई।

प्रश्न यह उठता है कि शक्ति मनोविज्ञान (Faculty Psychology) की मुख्य विशेषतायें क्या है ? निस्संदेह रूप से इसका जन्म आत्मा के कार्यों द्वारा मानसिक व आध्यात्मिक जीवन के वर्गीकरण से हुआ होगा। उदाहरणस्वरूप, ये कार्य जानना, महसूस करना, भूख लगना, तर्क करने की शक्ति आदि हो सकते हैं।

उन दिनों लोगों का विश्वास था कि उपरोक्त शक्तियों को उचित प्रशिक्षण से तीव्र किया जा सकता है ताकि आगे उन शक्तियों से काम लेने पर वे और अच्छी तरह कार्य कर सकें। इस मनोविज्ञान की विचारधारा के अनुसार शिक्षा का मुख्य कार्य या उद्देश्य इन शक्तियों को प्रशिक्षित कर इनको तीव्र करना था।

लोगों का यह भी विश्वास था कि इनका प्रशिक्षण कठिन विषयों, जिनमें एकाग्रचित्त और कठोर प्रयत्न करने पड़ते हैं, द्वारा ही हो सकता है। शिक्षा के इस सिद्धान्त के आधार पर यह स्वाभाविक ही था कि लैटिन, ग्रीक, गणित, तर्क शास्त्र आदि विषयों को अध्ययन के आदर्श विषय माना गया। इन विषयों की आगे जीवन में भी कोई उपयोगिता होगी या नहीं—इस बात को किसी ने विचारने का प्रयत्न नहीं किया। मुख्य बात तो यह समझी जाती थी कि जो लोग परिश्रमपूर्वक पढ़ेंगे उनके मस्तिष्क की उन्नति होगी और वे अपने योग्यता के स्तर को भी ऊँचा उठा पायेंगे। मानसिक शक्तियों का उपयुक्त अध्ययन द्वारा तीव्र करने के सिद्धान्त को 'मानसिक अनुशासन' (mental discipline) के नाम से पुकारा जाता है। शिक्षा द्वारा अनुशासन प्रदान करने का भी यहाँ अभिप्रायः समझा जाता है परन्तु यह कहाँ तक सत्य है यह एक विचारणीय बात है।

मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों एवं खोजों ने शक्ति मनोविज्ञान को निराधार सिद्ध कर दिया। अब हम बुद्धि, स्मृति या अन्य ऐसे कार्यों को एक अकेली इकाई (unit) नहीं समझते। स्मृति की रचना जटिल है; स्मृति के असंख्य भेद हैं और बहुत से व्यक्तियों की स्मृति अन्य सामग्रियों की अपेक्षा किसी किसी सामग्री के लिए बड़ी तीव्र होती है जो दूसरों के लिए दुर्लभ होती है। यदि स्मृति एक प्रकार की नहीं होती है जिसे प्रशिक्षित किया जा सके तो यह

स्पष्ट ही है कि पूरी स्मृति को किसी प्रशिक्षण द्वारा प्रशिक्षित नहीं किया जा सकता।

प्रयोगशाला में सीखने और तर्क करने की शक्ति पर किये गए प्रयोगों ने नियमित अनुशासन ((Formal Discipline) के पुराने विचार को अस्तित्व विहीन कर दिया है। उसके स्थान पर स्थानान्तर के नवीन नियम को अधिक युक्त संगत बतलाया है। इस नियम को साधारण शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि सीखने से मस्तिष्क आमतौर से तीव्र नहीं होता बल्कि सीखी हुई चीजें व्यक्ति के आगामी व्यवस्थापन (Adjustment) को प्रभावित कर सकती है। साधारण उदाहरण द्वारा यह वात स्पष्ट हो जावेगी। मान जीजिये कोई लड़की ३ × ५ = १५ को स्कूल में सीख लेती है। इसको सीखने के पश्चात् वह बाजार में पाँच आने प्रति पेंसिल के हिसाब से तीन पेंसिलें खरीद लेती हैं। इस समय वह स्कूल में सीखे प्रश्न द्वारा पेंसिलों की कीमत निर्धारित कर लेगी कि कुल पन्द्रह आने दाम हुए। यह स्थानान्तर के नियम का बड़ा ही स्पष्ट उदाहरण है। यह और इसी प्रकार को अन्य उदाहरण इस बात की पुष्टि करते हैं कि कुछ सीखे हुये तथ्य व्यक्ति विशेष के भावी जीवन की परि-स्थितियों में व्यवस्थापन (adjustment) कायम करने में सहायक होते है। परन्तु यदि सीखे हुये तथ्य भुला दिये गए या किसी तरह दूसरी चीजों से मिल गए तो सफल व्यवस्थापन सम्भव न होगा।

सफल व्यवस्थापन के लिये आवश्यक है कि हम नाना प्रकार की दक्षताओं व ज्ञान को अर्जिति कर उनका अभ्यास करें। जो व्यक्ति अपरिचित व नए शहर को जाता है तो उसे असंख्य सड़कों व गलियों के नाम व स्थान को सीखना पड़ता है—व्यापार के प्रमुख केन्द्रों को भी जानना पड़ता है। इनको सीख लेने पर भविष्य में वह इनका उपयोग करता है। यही स्थानान्तर का नियम है। दिन प्रति दिन के अनुमव और सामान्य बुद्धि में हम इस नियम का प्रयोग करते रहते हैं।

इस विषय पर ज्यादा वाद विवाद नहीं है कि लिखना, पढ़ना व अङ्कगणित (Three R's) का ज्ञान साधारण तौर पर जीवन में स्थानान्तरित होता है। परन्तु पढ़ने की योग्यता बहुत कुछ विशिष्ट शब्द भण्डार (Vocabulary) पर निर्भर करती है और अङ्कगणित, ज्ञान व दक्षताओं की जटिल गठरी है। औसत पाठक 'deciduous', 'extrovert' आदि शब्दों के अर्थ जाने बिना आसानी से काम चला सकते है। औसत व्यक्ति भी वर्गमूल और घनमूल निकालने की क्षमता न होने पर भी निभ सकता है। इससे स्पष्ट है कि कुछ शब्दों का ज्ञान व अङ्कगणित की कुछ क्रियाएँ (operations) स्थानान्तर की

दृष्टि से अधिक मूल्यवान होती है जब कि कुछ शब्दों का ज्ञान व अङ्कगणित की कुछ क्रियायों का स्थानान्तर मूल्य कुछ भी नहीं या थोड़ा होता है।

तर्क शास्त्र (Logic), बीजगणित व लैटिन का मूल्य हमारे जीवन में इन चीजों के अभ्यास पर अवलम्बित होता है परन्तु हमें अभ्यास के प्रत्यय को समझने के लिए अपना दृष्टिकोण विकसित करना होगा। लैटिन भाषा का ज्ञान हमें अंग्रेजी के कुछ शब्दों को समझने में सहायक होता है जैसे 'stella' माने Star। अब यदि बालक लैटिन के 'Stella' शब्द का अर्थ जानता है तो वह लैटिन के वैसे ही दूसरे शब्द, (Stellar) का अर्थ निकाल सकता है यानी 'outstanding'।

यदि हमारी सीखी हुई चीज़ किसी दूसरी चीज को समझने में सहायक होती है और हम उसका प्रयोग करते हैं तो इसका स्थानान्तर होता है और हमारे लिए इसका मूल्य है।

मनोवैज्ञानिकों ने अनुसंधान से ज्ञात किया है कि किसी क्षेत्र की क्रिया दूसरे क्षेत्र में स्न्तथानारित होती है या नहीं।

जेम्स (James) ने स्मृति तक अपना अनुसंधान कार्य सीमित किया और उसने यह जानने का प्रयत्न किया कि बीस मिनट के नित्य अन्तरों में, ३६ दिनों में याद की हुई 'Paradise Lost' नाम की पुस्तक 'Victor Hugo' की कविता समझने की सामर्थ्य को बढ़ा सकेगी अथवा नहीं। 'Paradise Lost' को पढ़ने के पूर्व उसने १३२ मिनट में 'विक्टर ह्यूगो' की १५८ लाइनें याद कीं और बाद में आगे की केवल १५८ लाइनों को उसने १५१ मिनटों में याद किया। उसने अपनी याद करने की इस कमी का कारण थकान बताया। इस घटना में उसे स्थानान्तर का प्रमाण नहीं मिला।

थार्नडाइक ने न्यूयार्क के स्कूलों में इस सम्बन्ध में व्यापक प्रयोग किये। उसने बच्चों के साधारण साफल्य (General attainment) तथा सामर्थ्य की स्कूल के विषयों के प्रभाव से तुलना की। विषयों के बीच बहुत कम अन्तर पाया गया परन्तु लैटिन भाषा के स्थानान्तर का प्रमाण इस पक्ष में था। लैटिन, गणित, रसायन शास्त्र, इतिहास आदि विषयों में धनात्मक स्थानान्तर के प्रमाण मिले। पाकशास्त्र (Cooking), चित्र कला (Drawing), व्यापार, नागरिकशास्त्र में नकारात्मक (Negative) परिणाम मिले।

थार्नडाइक (Thorndike) और वुडवर्थ (Woodworth), ने इस बात का पता लगाया कि लम्बाई, वजन, क्षेत्रफल आदि का निर्णय करने की शक्तियों

को भी प्रशिक्षित किया जा सकता है या नहीं परन्तु उन्हें कोई धनात्मक परिणाम न मिला। इङ्गलैंड में विन्च (Winch) ने कविता पढ़ने के द्वारा इतिहास के प्रति स्मृति को प्रशिक्षित करने का प्रयास किया। उसे नियमित प्रशिक्षण (Formal Training) का मामूली प्रमाण मिला। स्लीट (Sleight) ने भी स्मृति को कविता, अङ्कगणित की तालिकाओं और गद्यांशों के अर्थ सीखने के द्वारा प्रशिक्षित करने का प्रयास किया। पर उसे कोई प्रमाण न मिला।

जेम्स, थार्नडाइक और वुडवर्थ के अनुसंधानों ने अमरीकी स्कूलों के पाठ्यक्रम को बदलने को विवश किया। चूंकि किसी भी विषय द्वारा चीजों को सीखने का प्रशिक्षण नहीं दिया जा सकता इसलिए पाठ्यक्रमों में जीवन में उपयोगी विषयों को ज्यादा से ज्यादा रक्खा जाना चाहिए। अमेरिका की शिक्षा में यही सिद्धान्त देखने को मिलता है जबकि इङ्गलैंड में नियमित प्रशिक्षण (formal training) में लोगों का विश्वास है।

जौनस्टन (Johnston) द्वारा किया गया प्रयोग गणित के अध्यापकों के लिए बड़ा महत्वपूर्ण है। उसने तार्किक (logical) न्याय और वैज्ञानिक तर्क और खोज निकालने की समस्याओं (detective problems) पर ज्यामिति को सीखने का प्रभाव देखना चाहा। उसने बच्चों के तीन समूह लिए—पहला नियन्त्रित समूह (controlled group) और दूसरा समूह (group) जिसने Euclidean आधार पर ज्यामिति का अध्ययन किया था और तीसरा वह समूह जिसने एक विशेष ज्यामिति का अध्ययन किया था जिसमें तर्क करने पर बल दिया गया था और जिसमें निगमन (deduction) और उद्गमन (Induction) पद्धतियों का विश्लेषण किया गया था तथा जिसमें बच्चों को विधियों का ज्ञान (method conscious) कराया गया। ज्यामिति के अतिरिक्त अन्य किसी भी क्षेत्र में प्रत्यय (concept) का प्रयोग नहीं किया गया। केवल स्वयंसिद्ध (axiom) के क्षेत्र में किया गया जबकि इसका प्रयोग दोनों समूहों में किया गया। इससे निम्नलिखित परिणाम देखने को मिले—

एक ही बुद्धिलब्धि (I. Q.) और आयु के बच्चों के तीन समूह
प्रथम परीक्षा (General Reasoning test— not Geometrical)

Special Geometry group	Conventional Euclidean Geometry group	Control group
Second Test % improvement on the first		
13·9%	12%	11%

इन समूहों को बारी-बारी से बदला गया और पहिले के परिणामों की पुष्टि की गई। इस प्रयोग से ज्ञात हुआ कि तर्क करने की शक्ति को प्रशिक्षित करने के लिए प्राचीन या परम्परागत ज्यामिति उपयोगी नहीं होती।

अवयवीवाद मनोविज्ञान और स्थानान्तर

(Gestalt Psychology and Transfer of Training)

हम बहुधा देखते हैं कि विभिन्न वस्तुओं के रंग और प्रवृत्तियों का सम्बन्ध अच्छी व धुंधली रोशनी में, सूर्य की रोशनी व बिजली की रोशनी में एक से रहते हैं। घेरे वाली वस्तुओं (circular objects) पर के बिन्दुओं में स्थिति सम्बन्धी निश्चित पारस्परिक सम्बन्ध दिखाई देते हैं चाहे उनको अलग-अलग कोणों से देखा जाय जैसा चित्र (अ) तथा चित्र (ब) में दिखाया गया है।
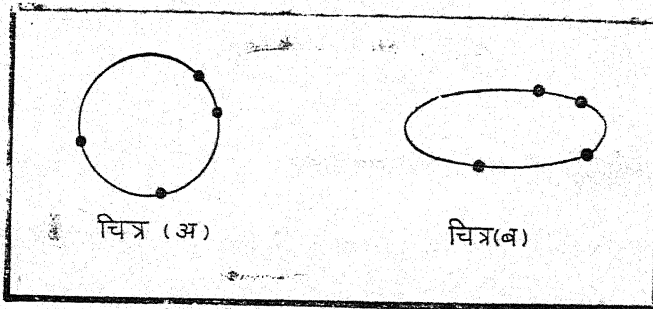
चित्र १२

अवयवीवादी मनोवैज्ञानिकों ने इसको स्थानान्तर के नियम (Law of Transposibility) के अन्तर्गत संग्रहीत किया। इसका प्रतिपादन मुर्गियों पर किये गए प्रयोगों द्वारा किया गया। नीचे के चित्रों पर ध्यान दीजिए :—

मुर्गियों के बच्चों को दोनों भूरे रंग के संकेतों (A) में से हल्के भूरे रंग के
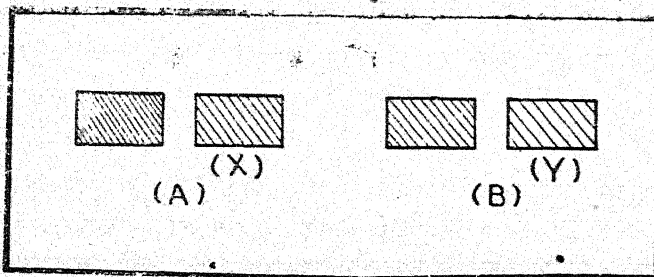
चित्र १३

संकेत (X) पर चुगने को प्रशिक्षित किया गया। इसके बाद उन्हें (B) संकेत

(Signal) दिया गया जिसमें पहिले वाला हल्का भूरा संकेत (X) अब अधिक गहरा लगता था क्योंकि उसका जोड़ा मिलाने के लिए उससे हल्के भूरे रंग का संकेत (Y) रक्खा गया था।

अब मुर्गियों ने नए हल्के संकेत (Y) दिखाने में चुगा। जिस अनुभव का स्थानापन्न (transposed) हुआ वह एक तत्व (X संकेत) नहीं था बल्कि उसका पूर्ण संरूप (whole pattern of configuration) अर्थात् आपेक्षिक हल्का भूरा रंग था। यह उदाहरण हमारे प्रतिबोधक अनुभवों (perceptual experiences) के स्थानापन्न का है। स्थानान्तर (Transposibility) का यही नियम ज्ञानात्मक संरूप (cognitive configuration) में भी लागू होता है। निम्नलिखित उदाहरण ज्ञानात्मक संरूप के स्थानान्तर (transposibility) का है :—

घोड़ा : खुर (Hoof) : : मनुष्य : ?

घोड़े और उसके खुर से सम्बन्धित ज्ञानात्मक संरूप नई परिस्थिति, जिसमें मनुष्य शामिल है, में स्थानान्तरित (transposable) होता है और पांव (foot) शब्द हमारे मस्तिष्क में उत्तर के रूप में आता है। अक्सर हम देखते हैं कि बच्चे $\frac{2a}{4}$ जैसे अभ्यासों को कर लेते हैं परन्तु $\frac{2a+2}{4}$ जैसे प्रश्नों को हल करने में असमर्थ होते हैं। बच्चा $\frac{2a}{4}=\frac{a}{2}$ कह सकता है परन्तु उसे जब $\frac{2a+2}{4}$ हल करना होता है तो वह $\frac{a+2}{2}$ उत्तर देता है। वह $\frac{2a}{4}$ भिन्न की क्रिया को $\frac{2a+२}{4}$ को हल करने में लागू करने का प्रयत्न करता है, परन्तु वह सम्पर्ण संरूप के किसी एक ही भाग का स्थानान्तर करता है जिससे यह गलती हो जाती है। शिक्षक और विद्यार्थी बिना प्रयत्न और कष्ट के स्थानान्तर (transposibility) को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। इसके लिये अनेकों अभ्यास तथा प्रयत्न करवाने होंगे।

स्थानान्तर के सिद्धान्त
(Theories of transfer)

स्थानान्तर के संबन्ध में दो मुख्य विचार धारायें हैं। (१) थार्नडाइक ने समान तत्व (Identical Element) नामक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इसके अनुसार स्थानान्तर उन प्रवृत्तियों (tendencies) और व्यवहार की इकाइयों (behaviour unit) के कारण होता है जो हमारी अभ्यास की हुई और बिना अभ्यास की हुई क्रियायों में समान रूप से पाया जाता है।

"The theory of identical elements states that transfer is due to the number of tendencies or behaviour units that are common to the practiced and unpracticed activities."

यदि हम जोड़ने की मशीन (adding machine) पर अभ्यास करते समय तीन संख्या लिखे Key को दबाकर तीन लिखना सीख जाते हैं और पाँच संख्या लिखने पर पाँच वाली Key को ठीक से दबाना सीख जाते हैं तो ये दोनों ही क्रियायें उस समय हमें सहायक सिद्ध होंगी जब हम टाइप करने का अभ्यास करना शुरू करते हैं क्योंकि उसमें भी इसी प्रकार Key दबानी होती है।

(२) दूसरा मत यह है कि स्थानान्तर तभी सम्भव है जब कि दोनों क्रियाओं में सोचने के तरीके, विधियों और सीखने की आदतों में समान तत्व पाये जायँ। जड (Judd) ने प्रणालियों के निष्कर्ष के निकालने के महत्व पर विशेष बल दिया है। किसी क्रिया में सामान्य प्रवृत्तियों के अधिक विकास होने पर उन्हें दूसरी क्रियायों में भी प्रयोग किया जा सकता है। Generalisation theory इस मत का प्रतिपादन करती है कि किसी एक क्रिया के निष्कर्ष अथवा सामान्य सिद्धान्तों के बनने तथा दूसरी क्रिया में उनके उपयोग करने से स्थानान्तर होता है। अन्य लेखकों ने स्थानान्तर के लिये दोनों क्रियाओं में समान अभिवृत्तियों (Common attitudes) के होने की आवश्यकता पर बल दिया है। आदर्शों के स्थानान्तरों में ईमानदारी (honesty) व सफाई के आदर्श टामसन (Thomson) के अनुसार मुख्य हैं। वर्ट (Burt) का कहना है कि समान तत्वों का उपयोग होने की संभावना अधिक होती है यदि सीखने वाला उसके स्वभाव और उसकी सामान्य व्यवहारिकता से भली भाँति परिचित हो जाय। शिथिल (Passive), स्वत: (Automatic) तथा अनैच्छिक (unintentional) स्थानान्तर की अपेक्षा सक्रिय (active) व ऐच्छिक (deliberate) स्थानान्तर कहीं अधिक सार्थक व प्रभावशाली होता है।

डा० पील ने सीखने के सारे सिद्धान्तों का सारांश अपने निम्नलिखित शब्दों में दे दिया है :—

"Transfer of training is only possible when there has been active structuring of insights and that the carry-over of learning from one field to another is an example of the principle of transposibility of insight."[1]

1. Peel, E. A. : 'The Psychological Basis of Education; Oliver and Boyd, London : 39 A Welbeck Street, W. 1, 1956 p. 67.

सूभों के सक्रिय रचनाबद्ध होने से ही स्थानान्तर सम्भव है। एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में सीखने के स्थानान्तर ही सूझ के स्थानान्तर (Transposibility) के सिद्धान्त का उदाहरण हैं।

स्थानान्तर को प्रभावशाली बनाने का तरीका

(Method for making the effective transfer)

जो शिक्षक स्थानान्तर को करना चाहे उसे सर्व प्रथम यह निश्चय करना चाहिए कि किसी विषय का या उसका कौन सा पहलू अन्य क्षेत्रों में लाभ-दायक होगा। ज्यामिति की पढ़ाई से वह अन्य समस्यायों के प्रति तर्कपूर्ण साधनों का विकास कर सकता है। यदि उसकी यह इच्छा है तो उसे इस तर्क पूर्ण साधन (logical approach)को अपने विषय की पढ़ाई में प्राथमिक स्थान देना चाहिए। यह अक्सर ज्यामिति की पढ़ाई में नहीं किया जाता है।

स्थानान्तर करने वाले तत्व को मुख्य केन्द्र पर लाना ही पर्याप्त न होगा बल्कि उसको रचनाबद्ध कर उसे मूर्त रूप दे देना उचित होगा। पाठ की सामग्री के अतिरिक्त उसे अन्य क्षेत्रों में भी लागू करना चाहिए। यदि ज्यामिति का अध्यापक रहस्यभरी कहानियों या नैतिकता में तर्क पूर्ण साधन का प्रयोग करना सिखाना चाहता है तो उसे बच्चों को इस प्रकार का अभ्यास कराना होगा कि वे ऐसी सामग्रियों में इस नियम (Logical approach) को लागू कर सकें।

स्थानान्तर बड़े लड़कों की अपेक्षा छोटे लड़कों में और बहिर्मुखी (Extrovert) की अपेक्षा अन्तर्मुखी (Introvert) विद्यार्थियों में अधिक सम्भव है। परंतु इस बात का ठीक-ठीक आत्मविश्वास के साथ उत्तर देना कठिन है क्योंकि इन दिशाओं में उचित कार्य अभी नहीं किया गया है। स्थानान्तर में बुद्धि को विशेष प्रतिकारक (factor) बहुत दिनों से माना गया है। यदि बुद्धिमान लड़के सामान्य सिद्धान्तों को जानने व उनको मूर्त रूप देने में अधिक सफल न हों तो हमारे लिए बड़े आश्चर्य की बात होगी। जैसा हम पहिले कह आये हैं कि सामान्य सिद्धान्तों को मूर्त रूप देना ही स्थानान्तर में सहायता करता है। अतः मेधावी लड़के इससे फायदा उठायेंगे।

अध्याय ६

शिक्षा में खेल तथा खेल विधि

(Play and the Play-way in Education)

बचपन में बच्चे की क्रीड़ायें उसके विकास का महत्वपूर्ण साधन हैं। सभी लोग इस बात से सहमत हैं कि बचपन का अपना अनोखा क्षेत्र है। बाह्य आवश्यकताओं अथवा उद्दीपनों से सर्वथा मुक्त क्रीड़ाओं में बचपन अपना आत्म प्रदर्शन करता रहता है।

खेल के सम्बन्ध के सिद्धान्त

(१) **अतिशय शक्ति व्यय का सिद्धान्त** (Surplus Energy Theory)— यह बिल्कुल सत्य है कि बचपन व यौवन काल में हर जीव व प्राणी के पास अतिशय शक्ति का भंडार रहता है। कुछ तो शक्ति शारीरिक विकास में व्यय हो जाती है और शेष खेल कूद में लगती है। इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि खेल अतिशय शक्ति को व्यय करने का साधन मात्र है।

यह सिद्धान्त पूर्ण रूप से सही नहीं मालूम होता। एक थके बच्चे का उदाहरण लीजिए। यदि उसे नीरस कार्य में बराबर व्यस्त रहने की अपेक्षा खेल में लगा दिया जाता है तो वह खेल में अपनी सारी थकान को भूल

जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि खेल अतिशय शक्ति के व्यय करने का साधन न होकर नई शक्ति प्राप्त करने का साधन है।

यह सिद्धान्त इस बात को समझाने में भी विफल रहता है कि खेल का निश्चित रूप क्यों होता है ? बच्चे थक जाने पर, जब उनमें अतिशय शक्ति नहीं रह जाती, खेलते रहते हैं। ऐसा क्यों होता है ? इस बात को भी यह सिद्धान्त बताने में असफल रहता है।

(२) **मनोरंजन का सिद्धान्त** (Recreation Theory):—इस सिद्धान्त के अनुसार बच्चा अपनी थकावट को दूर करने तथा मनो-विनोद के लिए खेलता है। साधारण व्याख्यानुसार मनोविनोदात्मक खेल स्नायुमंडल (nervous system) के नये पथों (tract) की शक्तियों का उपयोग करते हैं और थके हुये पथों को उन जहरीले पदार्थों से जो उनमें इकट्ठा हो जाता है मुक्त होने का समय प्रदान करते हैं। इस बीच में थके हुए पथ चयन क्रिया (anabolism) द्वारा शक्ति संचय कर लेते हैं।

यह व्याख्या भी सन्तोषजनक नहीं है। खेल के प्रभाव से बच्चा थका देने वाले कार्य को फिर से जारी ही नहीं करता अपितु उस कार्य में वह अपनी दूनी शक्ति को लगाता है। मनोविनोदात्मक सिद्धान्त के अनुसार बच्चा अपनी थकान को दूर करने व मनोविनोद के लिए खेलता है। प्रश्न यह है कि जो बच्चे थके नहीं हैं वे क्यों खेलते हैं ? इसका उत्तर इस सिद्धान्त द्वारा नहीं दिया जा सकता है।

(३) **पूर्वाभिनय का सिद्धान्त** (Anticipatory Theory) :—मेलब्रांक (Malebranche) ने इस सिद्धान्त को प्रदान किया, पर कार्ल ग्रूस (Karl Groos) ने इसकी पूरी तरह से व्याख्या कर इसका प्रचार किया। बच्चा खेल में अपनी बौद्धिक शक्तियों व निधियों का अभ्यास करता है और अपने उन मुख्य व प्रधान रुचियों की खोज करता है जो उसके प्रौढ़ अवस्था के काम में आते हैं। खेल-खेल में वह जानवरों की नकल करता है जो उसके भावी प्रौढ़ जीवन में गम्भीर क्रियायों का रूप धारण करती हैं। बिल्ली का बच्चा ऊन के गेंद का शिकार करता है क्योंकि आगे चलकर वह चूहों का शिकार करेगा। कुत्ते का बच्चा अपने भाई का पीछा करता है और उसे खेल खेल में धोका देता है क्योंकि आगे चलकर वह अपने शिकार का पीछा करेगा और उसे धोका देगा। नन साहब का कहना है "A playful youth is a biological device to secure to the higher animals an efficient equipment for the battle of life. It is not so true, says Groos epigrammatically, that animals play while they are young as

that they are young so long as it is necessary for them to play in order to prepare themselves for the serious business of adult life."[1]

उच्च श्रेणी के पशुओं (जिसमें मनुष्य भी सम्मिलित हैं) के लिए क्रीड़ा युक्त यौवन जीवन की संग्राम की तैय्यारी की शारीरिक क्रिया है। ग्रूस (Groos) के मतानुसार यह उतना सत्य नहीं है कि जानवर जब तक तरुण रहते हैं तब तक खेलते हैं जितना कि जब तक उनको प्रौढ़ जीवन की गम्भीर तैय्यारियों के लिए खेलना आवश्यक होता है तब तक वे तरुण रहते हैं। चर-चिल (Churchill) ने अपनी आत्मकथा में लिखा है "My choice of a military career was entirely due to my collection of toy soldiers ...the toy soldiers turned the current of my life." अर्थात् मैंने फौजी जीवन इस लिए अपनाया है क्योंकि बचपन में मैंने सिपाहियों के खिलौनों का संग्रह किया था। सिपाहियों के खिलौनों ने मेरे जीवन का प्रवाह ही बदल दिया। बचपन में लड़कियाँ गुड़ियों से खेलती हैं क्योंकि आगे चलकर उन्हें बहुएँ बनना होता है। इस सिद्धान्त के सत्य को प्रमाणित करने के लिए असंख्य उदाहरण दिये जा सकते हैं।

पशुओं और मनुष्यों के खेलों में काफी अन्तर क्यों होते हैं इस सिद्धान्त के द्वारा इस प्रश्न का भी उत्तर दिया जा सकता है। पशुओं की प्रौढ़ क्रियाएँ बहुत ही कम होती हैं और उनका प्रतिरूप भी एक ही सा रहता है जिससे उनके खेल भी सीमित और रूढ़िवद्ध (Stereotyped) होते हैं जबकि दूसरी ओर नन के शब्दों में "The adult life that awaits the child is very largely undetermined. Nature, therefore, while she bids the young beast rehearse in sport just those activities which he will certainly use some day in earnest, prompts the chid to experiment even in infancy with all kinds of movements and endless imitated or invented occupations, and as he grows older, with play in which he conceives himself as an airman, a sailor, a postman, a big game hunter and other attractive modles of life.[2]

मनुष्य के बच्चे का भावी प्रौढ़ जीवन अधिकांशतः अनिश्चित रहता है इस-लिए प्रकृति, जबकि पशु के छोटे बच्चे को उन सारी क्रियाओं का, जिन्हें एक न

---

१. Nunn, T. P. : 'Education , Its Data and First Principles'; Edward Arnold & Co, London, 1949, Page 81.

२. Nunn, T. P. : 'Education , Its Data and First principles', Edward Arnold & Co, London, 1949, Page 81.

एक दिन उसे करना ही होगा, पूर्वाभ्यास करने का संदेश देतीहै, मनुष्य के बच्चे को उन सारी क्रीड़ाओं, गतियों, असंख्य नक़ल किए अथवा खोज निकाले गएव्यापारों पर प्रयोग करने को प्रोत्साहित करती है और बच्चा ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है वह अपनी क्रियायों में एक वैमानिक के, नाविक के, डाकिये के, शिकारी के रूप में और अन्य जीवन के आकर्षक रूपों में अपने को देखता रहता है।

पिछले सिद्धान्त की बहुत कुछ आलोचना का उत्तर यह सिद्धान्त दे देता है। बच्चे भिन्न-भिन्न प्रकार के खेल क्यों खेलते हैं—इसका उत्तर इस सिद्धान्त द्वारा हमें मिल जाता है। शिक्षक को यह सिद्धान्त इस विषय को समझने में सहायक होता है कि बच्चा आगे चलकर क्या हो सकेगा।

(४) **जातिस्वभाव पुनरावर्तन का सिद्धान्त** (Recapitulation Theory):– स्टेनली हाल (Stanely Hall) ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि खेल द्वारा बच्चा अपनी जाति के इतिहास की पुनरावृत्ति करता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने बचपन के खेलों में इसका प्रदर्शन करता है। वह खेल को पूर्वाभास के रूप में न मानकर यादगार के रूप में मानता है। इस सिद्धान्त के कई उदाहरण हैं। बिल्ली के बच्चे और कुत्ते के बच्चे के खेल को इस सिद्धान्त के अनुसार उसी प्रकार आसानी से समझाया जा सकता है जैसे पूर्वाभिनय सिद्धांत द्वारा। छिप खुलकर खेलना, पीछा करना, शिकार करना, मछली मारना, पत्थर फेंकना, पेड़ों में घोंसले व शरण के स्थान बनाना आदि सभी दृढ़तापूर्वक जाति के यौवन की याद दिलाते हैं।—

"Hide and seek, chasing, hunting and fishing, stone throwing, the building of house and shelter especially in trees all remind as strongly of the youth of the race."[१]

प्रश्न यह उठता है कि जाति के भूतकाल के इतिहास को बचपन का खेल क्यों जिन्दा बनाये रखता है? अच्छा यह होता कि इसे प्रयत्न कर भुला दिया जाता। हाल महोदय (Hall) के अनुसार खेल अपनी क्रिया में विरेचक(cathartic or purgative) हुआ करता है। मनुष्य अपनी क्रूरता व बुराई की पुरानी प्रवृत्तियों का सर्वथा उन्मूलन नहीं कर सकता परन्तु खेल द्वारा उनकी खराबियों को दूर कर उन्हें नैतिक मूल्यों वाली भावनाओं में बदलने का प्रयत्न करता है। यह विरेचक सिद्धान्त (cathartic theory) पुनरावर्तन के सिद्धान्त से भिन्न नहीं है, बल्कि पहिला सिद्धान्त दूसरे की पूर्ण व्याख्या करता है। पूर्वा-

१. Ross, J. S.: 'Ground work of Educational Psychology' George G. Harrap & Co. L.d., London, 1947 p. 104.

भिनय सिद्धान्त (Anticipatory theory) तथा जाति स्वभाव पुनरावर्तन सिद्धान्त (Recapitulatory Theory) दोनों एक दूसरे के विरोधी न होकर एक दूसरे के पूरक हैं। बच्चे का खेल एक ही समय में पूर्वजों की क्रियाओं का पुनरावर्तन व प्रौढ़ की क्रियायों का पूर्वाभिनय हो सकता है बशर्ते दूसरे प्रकार की क्रियायें वही हों जिन्हें जाति असंख्य पीढ़ियों से उसी तरह करती आई हो।

"Thus it may be true that spontaneous play often drives its typical features from the adult life of distant ages, and also true that these racial memories still reawaken in each generation because they have a direct value for the adult life of the present epoch."[१]

इस प्रकार यह सत्य हो सकता है कि बच्चे में स्वतः उमड़े हुए खेल की अनोखी विशेषताएं अति प्राचीन प्रौढ़ जीवन से प्राप्त हो सकती हैं। यह भी सत्य है कि जातिगत स्मृतियाँ प्रत्येक पीढ़ी में जाग्रत हो जाती है क्योंकि वर्तमान युग की प्रौढ़ जिन्दगी में इनका प्रत्यक्ष महत्व है। हाल महोदय का विश्वास है कि खेल गति युक्त वंशानुक्रम (Motor Heridity) का सबसे शुद्ध साधन है। यदि यह सत्य है तो फिर नृत्य, क्रिकेट, शिकार आदि खेलों की व्याख्या जातिगत पुनरावर्तन सिद्धान्त द्वारा की जा सकती है। दूसरी ओर जहाँ खेल में शरीर की अपेक्षा बुद्धि की आवश्यकता पड़ती है वहाँ ग्रूस (Groos) की व्याख्या अधिक शिक्षाप्रद है।

'अतिशय शक्ति व्यय' सिद्धान्त और 'मनोरंजन सिद्धान्त' की एक आलोचना जिनका उत्तर उपरोक्त दो अन्य सिद्धान्तों द्वारा न दिया जा सका उसको मैग्डूगल (McDuogall) के थकान (Fatigue) की व्याख्या से दिया जा सकता है। उसके अनुसार किसी प्रकार के कार्य में जो हम शक्ति व्यय कर सकते हैं वह उस शक्ति की तरह नहीं है जो किसी मशीन में वस्तु के उत्पादन के निमित्त होती है। बहुत देर तक निरन्तर रहने वाली क्रियाओं का करना कठिन हो जाय यदि दूसरे साधनों से प्राप्त शक्ति इस क्रिया में सहायक न हो। और वह साधन है मानव का जन्मजात स्वभाव (innate dispositions) या मूल प्रवृत्तियाँ (instincts) जो पशु और मानव दोनों के व्यवहारों के आदि श्रोत हैं। जिस कार्य को उपयुक्त भावना (impulse) की अपर्याप्त शक्ति पूरा करने में असमर्थ होती है वह विषद एवं जटिल वंशानुक्रमगत् भावना ग्रन्थियों (Engram complexes) से प्राप्त शक्ति द्वारा पूरा कर लिया जाता है। उदाहरण के तौर पर पर्वतों पर की सैर की असुविधायें और कष्ट प्रसन्नता पूर्वक भुलाये जा

१. Nunn, T. P. : 'Education, Its Data and First Principles p. 82.

सकते हैं। क्योंकिसैर की खुशी की भावना का श्रोत शक्ति प्रदान करता रहता है।

खेल और काम (Play and Work)

अब हम कार्य व खेल के अन्तर को समझेंगे। यह इसी अध्याय के प्रारम्भ में ही बतलाया जा चुका है कि किसी भी क्रिया में खेल की विशेषता है स्वतःता या स्वाभाविकता (spontaneity)। खेल किसी बाह्य लाभ के लिए नहीं खेला जाता यह अपने स्वयं के लिए किया जाता है। काम में क्रिया को क्रिया के लिए न कर उसके अलावा अन्य किसी मूल्य के लिए किया जाता है। ब्रैडले (Bradley) ने सुर्वथा उचित ही कहा है कि खेल में क्रिया में स्वतःता (spontaneity) होती है जबकि कार्य में बाहर से कुछ प्रतिबन्ध लगा दिये जाते हैं। उन्हीं के शब्दों में कर्ता अपनी क्रिया को खेल समझता है यदि वह अपनी स्वेच्छा से जब चाहे करे और जब चाहे छोड़ दे या अपनी इच्छानुसार उसके करने की दशाओं या नियमों में परिवर्तन कर सके। वह उसको कार्य तभी समझेगा यदि वह उस पर अटल आवश्यकता के कारण लादा गया हो, या नौकरी या कर्तव्य की भावना से उसने उसे स्वीकार किया हो। अंगरेजी में यही भाव निम्नलिखित ढङ्ग से व्यक्त किया गया हैं :—

"An agent thinks of his activity as play if he can take it up or lay it down at choice or vary it at will the condition of its exercise; he thinks of it as work if it is imposed on him by unavoidable necessity or if he is held to it by a sense of duty or vocation."[१]

जो व्यक्ति अपने व्यवसाय का विशेषज्ञ होता है वह अपने कर्तव्य को बोझ नहीं समझता। उसे उसके कारण कोई दबाव नहीं होता क्योंकि वह अपने कार्य को खेल समझता है। यदि मनुष्य अपने व्यवसाय में दक्ष नहीं है तो वह उसे असहनीय भारस्वरूप समझता है; उसे अपने कार्य से प्रसन्नता नहीं मिलती अतः उसका वह खेल के रूप में आनन्द नहीं ले पाता।

काल्पनिक खेल (Make-believe Play)

बालकों के खेल का काल्पनिक खेल (Make-believe Play) एक मुख्य रूप है। प्रायः हम बच्चों को अपने खेलों में डाक्टर, ग्वाला, ड्राइवर आदि के

---

१. Nunn, T. P. : 'Education , Its Data and First Principles', p. 88.

कार्यों को करने के रूप में पाते हैं। ऐसा बच्चे क्यों करते हैं ? कुछ लोगों का विचार है कि बच्चे अनुकरण के कारण इस प्रकार की क्रियाओं को करते हैं। किसी सीमा तक यह निश्चित रूप से सत्य है। इसका मुख्य कारण होता है कि बच्चे को अपनी समस्त मूल प्रवृत्तियों विशेषतय: उनकी आत्म प्रदर्शन (Self assertion) की प्रवृत्ति को उसके वातावरण में प्रकट होने का क्षेत्र नहीं मिलता। उसकी सीमित शक्तियों के लिए भौतिक और सामाजिक वातावरण आवश्यकता से कहीं अधिक होता है और वह जैसा चाहता है उस पर अपना आधिपत्य क़ायम नहीं कर पाता। इस खेल (Make believe play) में उसकी संग्रहीत शक्ति को बाहर आने के लिये साधन मिल जाता है। वह एक ट्राम के ड्राइवर के काल्पनिक रूप में धनात्मक आत्म भावना (positive self-feeling) की प्राप्ति करता है जिसके लिये उसका नीरस वातावरण अपर्याप्त शुभअवसर प्रदान करता है। अत: सभी काल्पनिक खेलों (Make-believe play) को हम मूलप्रवृत्यात्मक शक्तियों का बहाव कह सकते हैं जो इस खेल के बिना बन्द की बन्द ही पड़ी रहतीं। बालक वस्तुत: अध्यापक या ट्राम कन्डक्टर नहीं है परन्तु खेल के समय वह अपने को ड्राइवर या अध्यापक सचमुच में समझता है। वह काल्पनिक व यथार्थ (real) जगत के भेद को नहीं समझ पाता। अत: बच्चे का काल्पनिक खेलों में विश्वास करने की शक्ति उसकी जगत के वास्तविक स्वरूप को न समझने की योग्यता के कारण होता है।

बच्चा यथार्थ की अपेक्षा अपनी काल्पनिक दुंनियाँ को महत्व जानबूझकर नहीं देता। अपने प्रारंभिक निर्माण के वर्षों में यह आत्म प्रदर्शन का केवल जैविक (biological) साधन है जिससे वह अपनी क्रियाओं की वास्तविक दशाओं पर पूर्ण नियंत्रण करने की अयोग्यता के कारण हताश नहीं होता। बाद में शनै: शनै संसार की भौतिक वस्तुओं द्वारा उत्पन्न समस्याओं को सुलझाने के लिए वह योग्य बनता जाता है।

इसलिए हमें आशा करनी चाहिए कि समय के बढ़ते रहने से ज्यों-ज्यों उसे संसार का ज्ञान और उस पर उसका नियंत्रण बढ़ता जावेगा उसी क्रम से उसका काल्पनिकता में विश्वास (Make-believe element) का महत्व घटता जावेगा।

शिक्षा में खेल विधि (The Play-way in Education)

हमने बार-बार इस बात की पुनरावृत्ति की है कि किसी क्रिया को जिसे हम खेल कहते हैं उसमें स्वत:ता या स्वाभाविकता (Spontaneity) का होना

अनिवार्य है। उसमें किसी भी प्रकार का नियंत्रण अथवा बन्धन जो 'काम' में होता है, नहीं होना चाहिए। नन महोदय ने खेल के स्थान पर स्वतन्त्रता (Freedom) शब्द का और काम या कार्य के लिए अनुशासन (Discipline) शब्द का प्रयोग किया है—

"The statement of the ideal would, in fact, cease to be provocative if for 'play' one substituted 'freedom' and for 'work' 'discipline', yet its meaning would be little changed." अर्थात् यदि खेल के स्थान पर 'स्वतन्त्रता' शब्द और कार्य के लिए 'अनुशासन' प्रयोग किया जावे तो उनके अर्थ में विशेष परिवर्तन न होगा और यह आदर्श विवरण किसी भी प्रकार का विवाद उपस्थित न करेगा। परन्तु यहाँ स्वतन्त्रता शब्द का आशय अनर्गलता (liscence) या किसी काम को मन चाहे करने की स्वाधीनता (liberty) से नहीं है।

इन विचारों ने शिक्षा को जगत में प्रचलित विचारों को भी प्रभावित किया और शिक्षकों का ध्यान उन शैक्षिक युक्तियों की खोज निकालने में लगा जो सावधानी से चुने हुये क्षेत्रों में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को स्थान दें। स्काउट आन्दोलन को खेलविधि (Play-way) विचारधारा से ही जन्म मिला। मोन्टेसरी पद्धति (Montessori method), डाल्टन प्लान (Dalton plan), किंडरगार्टन (Kinder garten) योजना, और ह्यूरिस्टिक विधि (Heuristic method) और योजना विधि (Project method) इसी खेल विधि की स्वतन्त्रता के सिद्धान्त पर आधारित हैं।

बालचर तथा कैम्प स्कूल (Boy Scouts and Camp school) :— स्काउट आन्दोलन उन विधियों को बड़े ही अच्छे तरीके से उपस्थित करता है जिनमें विभिन्न खेल प्रेरणायें (motives) बौद्धिक व नैतिक प्रशिक्षण के लिए प्रयोग की जा सकती हैं।

इसमें सबसे पहिले जंगल के असभ्य जीवन की ओर निर्देश है। उसमें कैम्प लगानेकी प्रथा, चरवाहे के साहस पूर्ण जीवन का संकेत और एक रैड इण्डियन के प्राकृतिक शिक्षण की ओर संकेत किया जाता है। इससे समूह आदि को बनाने में यूथचारी प्रवृत्ति (Gregarious tendency) तथा अन्य सामाजिक प्रवृत्तियों का भी निर्माण होता है। सबके मिलने का अपना स्थान होता है।

---

1. Nunn, T. P.: 'Education , Its Data and First Principles, p. 100.

अपनी संस्था के गुप्त चिन्ह व उसके प्रति विश्वास पात्र बने रहने की भी शिक्षा भी मिल जाती है। बालचरों का समान वेष होता है जिसके द्वारा आपसी सम्बन्ध की भावना दृढ़ हो जाती है और साथ ही साथ आत्म-प्रदर्शन (self display) की प्रवृत्ति को भी सन्तोष मिलता है। इसी विधि द्वारा लाभदायक ज्ञान व कुछ अमूल्य नैतिक विचारों की शिक्षा दी जाती है। इस विधि के अनुसार समान रुचि वाले अन्य व्यक्तियों के प्रति कृतज्ञ रहने की भावना की शिक्षा मिलती है और टोली नायक को अपने बीच का ही व्यक्ति समझा जाता है।

कैम्प स्कूल भी बौद्धिक व सामाजिक शिक्षा को प्रदान करने का साधन समझना चाहिए। शिक्षा के जगत में कैम्प शहरी व ग्रामीण जीवन के बीच की खाई को पाटने में काफी सहायता प्रदान करता है।

मोन्टेसरी पद्धतिः—मैरी मोन्टेसरी के मोन्टेसरी पद्धति ने शिक्षा के जगत को अपनी ओर आकर्षित कर लिया है। इस प्रणाली में बच्चे को अपनी शिक्षा के प्रति उत्तरदायी बनाया जाता है। बाह्य हस्तक्षेप कम से कम किया जाता है। यह ध्यान में रखा जाता है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इस पद्धति में बच्चों को एक दूसरे के साथ रहने के, खेल और कार्य में एक दूसरे को सहयोग देने के, और सामाजिक तथा व्यक्तिगत विशेषताओं से अपने को विभूषित करने के शुभ अवसर प्रदान किये जाते हैं। मान्टेसरी ने कुछ उपदेशात्मक यंत्रों (Didactic apparatus) को भी खोज निकाला है जिनसे बच्चे स्वयं सीख सकें। इस प्रणाली में अध्यापिका को 'डाइरैक्ट्रिस' (Directrice) कहते हैं। इसका मुख्य कार्य निरीक्षण करना है परन्तु वह शिथिल निरीक्षक न होकर एक सक्रिय (Active) निरीक्षक होती है जो व्यर्थ के हस्तक्षेपों से दूर रहती है पर सहायता के समय सहायता प्रदान करने को सदा तैय्यार रहती है। इस प्रणाली में बच्चे डाइरैक्ट्रिस (Directrice) की देखभाल में अपना कार्य चुनते हैं और स्वयं अपने आलोचक होना भी सीखते हैं। इस प्रकार से वे काफी मात्रा में स्वावलम्बन, आत्मसम्मान, दूसरों को सम्मान प्रदान करना, साउद्देश्य परिश्रम आदि गुण सीख लेते हैं जो परम्परागत कक्षा शिक्षण विधि से प्रयत्न करने पर नहीं सीखे जा सकते।

इस प्रणाली में एक मुख्य बात है कि बच्चा जो चाहे वह कर सकता है परन्तु जिसको वह करना चाहता है वह बहुत ही सख्ती व संकीर्णता की सीमाओं में बंधा रहता है। उसको बेलन (cylinders) को उचित सूराखों में फिट करना पड़ता है और विभिन्न वर्णों की तालिकाओं को उनके उचित क्रम में लगाना पड़ता है। कहने का मतलब है कि जैसी सामग्री की व्यवस्था

होती है वैसा ही उसे करना होता है इसके अतिरिक्त और कुछ भी वह नहीं कर सकता ।

डाल्टन योजना (The Dalton Plan) :—व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के आदर्श पर आधारित योजनाओं का स्पष्ट उदाहरण डाल्टन पद्धति है । इसका प्रारम्भ मिस पर्कहेस्ट (Miss Parkhurst) ने किया जो मोन्टेसरी पद्धति के तरीकों से अत्यन्त प्रभावित थीं । इस पद्धति में स्कूल समय-तालिका के अनुसार बच्चे मन पसन्द समय में अपने विषयों का अध्ययन करते हैं । इस योजना में कक्षा कार्यों (class-assignments) का विस्तृत क्रम रहता है । प्रत्येक विषय में एक निश्चित सीमा तय कर दी जाती है जिसे एक निश्चित समय में पूरा करना होता है । इस सम्बन्ध में आवश्यक सूचना व कार्य की विधि सम्बन्धी संकेत दे दिये जाते हैं । बच्चे समस्या का निराकरण वैयक्तिक अथवा सामूहिक रूप से करते हैं । सामान्य निर्देशों के लिए वे कक्षा में एक साथ एकत्रित होते हैं । बड़े-बड़े स्कूलों में यह योजना सम्भव नहीं है ।

किंडर गार्टन विधि (Kinder Garten method) :— इसके संस्थापक हैं फ्रॉबल (Frobel) जिन्होंने सर्व प्रथम सन् १८३७ में एक किंडरगार्टन स्कूल स्थापित किया । सन् १८३७ से १८४८ तक उन्होंने सोलह अन्य किंडर गार्टन स्कूल खोले । फ्रॉबल महोदय का सिद्धान्त पूर्ण आदर्शवाद (Absolute idealism) के दर्शन पर टिका हुआ है । उन्होंने समस्त जगत को एक प्राण प्रधान पूर्ण माना है और मनुष्य को उसका एक अंश । स्वत: क्रिया द्वारा मनुष्य इस प्राण प्रधान विश्व से अपने जुड़े हुये सम्बन्ध को पहिचानता है । अतः विकास के निमित्त स्वत: क्रिया को आवश्यक अंग माना गया । उन्होंने बच्चे को पूर्ण (absolute) का शिशु माना जो कुछ क्षमताओं से विभूषित रहता है जिसको अपने प्राकृतिक विकास के तरीकों को अपनाने देना चाहिये । आन्तरिक विकास के नियमों के अनुसार इन गुणों के पूर्ण विकास के लिए अनुकूल अवसर प्रदान किये जाने चाहिए । अतएव उन्होंने शिक्षा की विधि में बच्चे को केन्द्र माना न कि विषय सामग्री को । उनके दूसरे सिद्धान्त का सम्बन्ध उपयुक्त सामग्री तथा तरीकों से है । फ्रॉबल का विश्वास था कि बच्चे की क्रियायों का पूर्ण केन्द्र खेल है और उसे ही शैक्षिक जगत में बच्चे की भावनाओं (Impulses) की अभिव्यक्ति के लिए पथ प्रदर्शक मानना चाहिए । इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने अधिक समय तक बच्चे के खेल,

रुचि और क्रियायों का सूक्ष्म निरीक्षण व विश्लेषण कर दो माध्यमों (Instrumentalists) के बहुत से क्रम निकाले— (१) गानों, कथाओं, खेलों, चित्रों और प्रातःकालीन वार्तालाप के आधार पर बच्चों के अनुभव, (२) वे सामग्रियाँ जिन्हें उपहार (gifts), व्यवसाय (occupations) के नाम से कहा जाता है। दूसरी प्रकार की सामग्री गणित सम्बन्धी बातों पर आधारित होती हैं। इन उपहारों के अन्तर्गत छः उच्च स्तर के रंगों के छः गेंद, पदार्थों, गोलों (spheres), घन (Cube), बेलनों (cylinders) के भिन्न-भिन्न रूप से विभाजित किये गए समूह आदि आते हैं। इन उपहारों को निर्धारित किये गए तरीकों द्वारा रूप, रंग, आकार, संख्या, वज़न और इसी प्रकार की अन्य चीज़ों के बारे में ज्ञान प्रदान करने के लिए प्रयोग किया गया। इस प्रकार से प्राप्त आदर्शों का रचनात्मक, आकार बनाने की, बुनाई, सिलाई और नाटकीय क्रियाओं में प्रयोग किया गया।

ह्यूरिस्टिक विधि (Heuristic Method) :—इस विधि को प्रारंभ में विज्ञान की पढ़ाई में प्रयोग किया गया। इसके जन्म दाता हैं आर्मस्ट्रौंग (H. E. Armstrong)। शीघ्र ही यह विधि लोकप्रिय हो गई और इसका प्रयोग विज्ञान के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में हुआ। इस विधि में बच्चे को एक प्रारम्भिक अन्वेषक के रूप में छोड़ दिया जाता है। वह अपने अनुभवों से लाभान्वित होता है। उसके सम्मुख एक व्यावहारिक समस्या प्रस्तुत की जाती है और वह अपने ज्ञान के द्वारा उसका निराकरण ढूँढ़ता है। चूँकि इस सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य है बच्चे को अन्वेषक के रूप में छोड़ना अतः यह खेल विधि (Play method) के सिद्धान्त पर आधारित है।

योजना विधि (The Project Method) :—यह सिद्धान्त भी खेल विधि (Play-way) की नींव पर आधारित है। आइये, इस विधि का सार समझें। यदि कोई व्यक्ति किसी काम को करते समय अपने उद्देश्य को भली भाँति समझता है तो हम कह सकते हैं कि वह योजना विधि का अनुसरण कर रहा है। समस्या विधि (Problem method) का यह तार्किक फल है। भिन्न-भिन्न प्रकार की योजना विधि हो सकती है। प्रत्येक योजना विधि बच्चे की किसी क्रिया या अनुभव को महत्व देती है। मानलीजिए बच्चों ने बागवानी की योजना को अपनाया है। गणित जानने वाले विद्यार्थियों से यह कहा जायेगा कि बागवानी के पूरे क्षेत्र को नापें, उसका क्षेत्रफल निकालें और पूरे क्षेत्र को क्यारियों में विभक्त करें। कृषक समूह वाले खाद देने तथा मौसमी बुवाई पर विचार करेंगे। व्यापार-शास्त्री खर्च का लेखा-

जोखा रक्खेंगे । विज्ञान के विद्यार्थी फूल और पुष्पों का विशेष अध्ययन करेंगे। अतः इस विधि में बच्चे की स्वतः क्रिया पर विशेष बल दिया जाता है ।

उपरोक्त सभी विधियों में खेल के सिद्धान्त को केन्द्र माना गया है । कुछ विधियों को सफलतापूर्वक स्कूलों में अपनाया जा सकता है । स्कूलों की परिस्थितियों के अनुसार ही इनमें से कोई विधि अपनाई जा सकती है ।

(8) वालचर पद्धति

—: ❀ :—

अध्याय ७

बुद्धि, उसकी प्रकृति तथा उसका परिपोषण

(Intelligence : Its Nature and Nurture)

प्रस्तावना :—प्राचीनकाल से ही लोगों की विचारधारा थी कि कुछ लोग बुद्धिमान तथा कुछ बुद्धिहीन या मन्द बुद्धि होते हैं परन्तु उनका बुद्धि के बारे में कोई सही विचार न था और न यह ज्ञान ही था कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से कितना अधिक बुद्धिमान् है। वे केवल इतना ही अनुमान लगा सकते थे कि एक अच्छे ज्ञान वाला व्यक्ति कितना बुद्धिमान हो सकता है। उस समय बुद्धि शब्द का कोई मनोवैज्ञानिक महत्व भी नहीं था। पिछली शताब्दी के अन्त तक बुद्धि की परिभाषा के लिए काफी कोशिश भी की गयी थी परन्तु उनमें किसी को भी सफलता तथा मान्यता नहीं मिली। गौल, लेवेटर आदि लोगों ने किसी व्यक्ति की बुद्धि का विचार उसके सिर के माप तथा परिमाण से तथा उसकी प्रकाश, ध्वनि और स्पर्श की अनुभूति से किया था। प्राचीन काल में सन् १७९५ ई० में इसका एक ऐतिहासिक महत्व रखने वाली वह घटना है जो कि ग्रीनविच नक्षत्र वेधशाला में एक नक्षत्र के समय के निरीक्षण पर आधारित है। इस वेधशाला में एक निरीक्षक एक नक्षत्र निरीक्षण में अपने अफसर से अधिक समय देने के कारण अपनी नौकरी खो बैठा था और उस

पर अपनी नौकरी सुचारु रूप से न करने का अभियोग लगाया गया था। कुछ समय पश्चात् कैटेल ने इन व्यक्तिगत भिन्नताओं का महत्व ढूँढ़ लिया। अपने प्रयोग में जो कि उंड नामक व्यक्ति की प्रयोगशाला में किये गये थे, उसको यह ज्ञात हो गया कि मनुष्य एक दूसरे से अपनी मांस पेशियों की गति तथा संवेदक (sensory) विवेचन में भिन्न होते हैं। फ्रांस का रहने वाला एलफ्रेड बिने (१८५७-१९११) पहला व्यक्ति था जिसने बुद्धि का सही अध्ययन किया था। बिने एक फ्रांसीसी मनोविज्ञ था। उसके सम्मुख यह समस्या थी कि पेरिस के एक विद्यालय में कुछ छात्रों को उच्चकोटि की शिक्षा देने पर भी उनको कोई लाभ नहीं होता है जबकि कुछ छात्र जिनको कि साधारण कोटि की शिक्षा दिये जाने पर भी अत्यन्त लाभ होता है। वह इन दोनों कोटि के बालकों में अन्तर ज्ञात करना चाहता था। प्रथम श्रेणी वाले बालकों को बुद्धि में निम्नकोटि का नाम दिया गया था। चूँकि मन्दबुद्धि वाले बालक दूसरों की अपेक्षा सीखने में अधिक समय लगाते हैं जिसके कारण बहुत सा समय व्यर्थ जाता है इसलिये यह ज्ञात किया गया कि कितना ज्ञान बालक के स्तर तथा योग्यता के अनुकूल है और कितना नहीं है। उसने बहुत से परख (tests) बालकों के अनुभव द्वारा तैयार किये और उनको करीब २०० छात्रों पर प्रयोग भी किया। इसके पश्चात् उसने परख का उनकी कठिनाई के आधार पर श्रेणीकरण किया। इस तरह उसका पैमाना १९०५ ई० में तैयार हो गया था। इन परखों को उसने फिर विस्तृत रूप दिया और १९०८-१९११ में आयु के आधार पर उनको विभाजित भी किया जिसका वर्णन इस अध्याय के अन्तिम भाग में दिया गया है।

यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि बिने से पहिले लोगों को बुद्धि के महत्व का ज्ञान नहीं था, परन्तु लोगों में मन्द बुद्धि तथा पिछड़े बालकों का निदान तथा उपचार विधियों में सुधार करने की धारणा अवश्य थी। सबसे प्रथम फ्रांस के दक्षिणी भाग अभेरोन विभाग में १७९७ ई० में एक जंगली बालक जोकि मन्द बुद्धि का था उसके बारे में जानकारी प्राप्त की गयी थी। इस जंगली बालक को पेरिस में लाया गया जहाँ कि मनोविज्ञों ने उसके अध्ययन हेतु काफी रुचि ली थी।

उस बालक को नवीन वैज्ञानिक ढङ्ग पर शिक्षा दी गयी थी। इटराड नामक विख्यात मनोविज्ञ ने इसका कार्य भार स्वयं संभाला। बहुत प्रयत्न करने पर भी जब वह इस बालक को सामान्य स्तर तक न ला सका तो उसने उसका भार त्याग दिया। इटराड के पश्चात् उसके शिष्य सेंगवीन ने मंद बुद्धि बालकों की शिक्षा का भार स्वयं सँभाला। कुछ ही समय पश्चात् मनोविज्ञों ने यह निष्कर्ष निकाला कि ये मंद बुद्धि बालक किसी निश्चित समूह में

नहीं रखे जा सकते हैं बल्कि मानसिक योग्यतानुसार ये समस्त आबादी के निम्न भाग में आते हैं।

बुद्धि की प्रकृति (Nature of intelligence) :—अब प्रश्न यह होता है कि बुद्धि वास्तव में कहते किसको हैं ? इसका मतलब क्या है ?

बुद्धि क्या है ? यह प्रश्न एक महत्वशाली वाद-विवाद का प्रश्न है। भिन्न-भिन्न मनोविज्ञों ने इसकी भिन्न-भिन्न परिभाषायें दी हैं परन्तु इन सबका हम आसानी से तीन श्रेणियों में वर्गीकरण कर सकते हैं :—

(१) वे लोग जोकि बुद्धि को एक ऐसी अकेली योग्यता मानते हैं जो कि सभी बुद्धि सम्बन्धी विधियों में सम्मिलित होती हैं।

(२) वे लोग जो कि इसको दो या तीन योग्यताओं का समूह मानते हैं जिनका भिन्न-भिन्न रूपों में प्रधान अंश होता है।

(३) तीसरे वे लोग हैं जो कहते हैं कि इसका कोई वास्तविक स्वरूप नहीं है परन्तु यह विशिष्ट योग्यताओं के औसत रूप के लिये एक सुविधाजनक नाम है।

प्रथम मत को मानने वाले स्टर्न, बर्ट, वुडरो तथा स्पीयरमेन हैं।

स्टर्न के अनुसार बुद्धि जीवन की नवीन समस्याओं और अवस्थाओं के अनुसार उपयोजन शक्ति है।

बर्ट की परिभाषा के अनुसार 'बुद्धि स्वाभाविक प्रकृतिदत्त एक मानसिक योग्यता है।'

वुडरो के अनुसार 'बुद्धि योग्यता-उपार्जन के हेतु योग्यता है।'

प्रो० स्पीयरमैन की परिभाषा सबसे निराली और आश्चर्यजनक है। जिसके कारण इस विषय पर विवाद खड़ा है और शैक्षिक अनुसन्धान को प्रोत्साहन भी मिला है। सन् १९०४ ई० में उसने ज्ञान-तन्तु सम्बन्धी परखों तथा बुद्धि के मध्य सम्बन्ध के विषय में अपने विचार प्रकाशित किये जिनके अनुसार उसने यह प्रदर्शित किया कि "समस्त मानसिक क्रियाओं में एक आधारभूत क्रिया निहित रहती है और दूसरी प्रत्येक क्रिया के लिए एक विशेष योग्यता होती है।" प्रथम प्रकार की अर्थात् आधारभूत मानसिक योग्यता को उसने "सामान्य योग्यता" का नाम दिया जिसको उसने 'g' चिन्ह द्वारा प्रकट भी किया, और अन्य विशेष प्रकार की योग्यताओं को S_1,S_2,S_3 रूपी चिन्हों द्वारा प्रकट किया है। सामान्य योग्यता ही वह केन्द्रीय योग्यता है जिसके द्वारा प्रकृतिदत्त (native) बुद्धि की माप की जा सकती है। इस प्रकार जब हम किसी परिस्थिति का सामना करते हैं अथवा कोई कार्य सम्पादन करते हैं तो प्रतिक्रिया में सामान्य-

योग्यता (g)का उत्तरदायित्व निहित रहता है और उस विषय के प्रति शेष प्रति-क्रिया में विशेष योग्यता (s) निहित रहती है। उदाहरणार्थ जब हम भौतिक शास्त्र की परीक्षा में बैठते हैं तो उसमें सामान्य और विशेष योग्यता दोनों ही प्रयोग में लायी जाती हैं। स्पीयरमैन के इस सिद्धान्त को "मानसिक योग्यता का द्वैतवाद" (Two factor theory of Spearman) कहते हैं। स्पीयरमैन ने यह भली भांति प्रदर्शित कर दिया है कि विभिन्न परिस्थितियों को सुलझाने में जो सामान्य योग्यता निहित रहती है उसे साम्बन्धिक-गुणक (correlation coeffecients) द्वारा अथवा यों कहिये कि सम्बन्धों की क्रमित वंशावली (hierarchy) द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। विभिन्न परिस्थितियों में सामान्य योग्यता की समान मात्रा में आवश्यकता नहीं होती; कुछ परिस्थितियों के लिये अधिक और कुछ के लिये न्यून मात्रा में उसकी आवश्यकता होती है। अतः कुछ परख-परिस्थितियाँ अन्य की अपेक्षा 'g' (general factor) द्वारा अधिक प्रभावित रहती है। परन्तु हम किसी ऐसी परिस्थिति की कल्पना नहीं कर सकते हैं जिसमें न्यूनाधिक मात्रा में 'g' की आवश्यकता न पड़ती हो। स्पीयरमैन के सिद्धान्त ने यह स्पष्ट कर दिया कि समस्त बौद्धिक योग्यताओं की यह प्रकृति रहती है कि वे किसी सीमा तक परस्पर मिश्रित हो जाती हैं परन्तु फिर भी विषमता बनी ही रहती है। उदाहरण के लिये, अगर कोई विद्यार्थी अंग्रेजी में होशियार है तो वह गणित में भी और सुलेख कला में भी प्रवीण पाया जाता है। साथ ही यह भी निश्चित है कि विशेष विषयों के लिये किसी विशेष प्रकार की योग्यता की आवश्यकता होती है। अतः कुछ विद्यार्थी अँग्रेजी में गणित की अपेक्षा अधिक प्रवीण हो सकते हैं और इसके विपरीत भी हो सकता है। यह देखा जाता है कि व्यावहारिक और शारीरिक क्रियाओं में विशेष योग्यता की अधिक और सामान्य-योग्यता की कम आवश्यकता होती है। अतः इन योग्यताओं के मध्य अन्तर स्पष्ट है। स्पीयरमैन द्वारा ज्ञात किये गए सामान्य तथा विशेष योग्यताओं के मध्य अन्तर के सिद्धान्तों में सत्यता है, परन्तु व्यवहार में इन दोनों प्रकार की योग्यताओं को पृथक करने में कठिनाई उपस्थित होती है।

स्पीयरमैन का मानसिक योग्यता का द्वैतवाद का सिद्धान्त

(Two Factor Theory of Spearman)

स्पीयरमैन ने सहसम्बन्ध गुणक की गणना के आधार पर विचार करने की किया से सम्बन्धित चार प्रकार की ज्ञान-सम्बन्धी योग्यताओं के माप का

परीक्षण किया है। फिर उसने इन गुणक को निम्नलिखित विधि से क्रम में रखा और इस प्रकार और अन्य परिणाम निकाले।

$$(r\text{ab} \times r\text{cd}) - (r\text{ad} \times r\text{bc}) = 0$$

यहाँ $r$ab 'a' और 'b' प्रकार की योग्यताओं के पारस्परिक सम्बन्ध के गुणकों का बोधक है। उसी प्रकार $r$cd, $r$ad, $r$bc भी विभिन्न योग्यताओं के पारस्परिक सम्बन्ध के गुणक हैं। स्पीयरमैन ने इस नियम को 'चार राशि' (Tetrad equation) सूत्र का नाम दिया। वाम पक्ष के संकेत-चिह्न का मूल्य Tetrad difference कहलाता है।

रैक्स नाइट की 'Intelligence & Intelligence testing' नामक पुस्तक के उद्घृत किये हुये निम्नांकित उदाहरण से 'मानसिक योग्यता द्वैतवाद' के सिद्धान्त को सुस्पष्ट किया जा सकता है।

कल्पना करो हमने पाँच पृथक-पृथक योग्यताओं को निष्कर्ष निकालने, वाक्यपूर्ति करने, संख्या के श्रृङ्खलाबद्ध परिगणन, शब्दों के पर्यायवाची शब्द लिखने एवं सूचना की भाषा को रूपान्तर करके सुबोध बनाने की योग्यताओं को माप लिया है। हमने यह भी मान लिया कि पाँचों योग्यताओं में प्रत्येक का अन्य चार योग्यताओं से सह सम्बन्ध गुणक को भी मालूम कर लिया है। यह गुणक निम्नलिखित हैं :—

	निष्कर्ष निकालने की योग्यता	वाक्य-पूर्ति	संख्या परिगणन	पर्यायवाची शब्द	भाषा स्पष्टीकरण
निष्कर्ष निकालने की योग्यता	—	·४२	·३५	·२८	·२१
वाक्य-पूर्ति	·४२	—	·३०	·२४	·१८
संख्या परि-गणन	·३५	·३०	—	·२०	·१५
पर्यायवाची शब्द	·२८	·२४	·२०	—	·१२
भाषा स्पष्टी-करण	·२१	·१८	·१५	·१२	—

गुणक की यह तालिका 'चार राशि समीकरण' (tetrad equation) के नियमानु-कूल है। अगर हम किन्हीं चार प्रकार की योग्यताओं को लें और उन्हें a, b, c और d चिन्हों द्वारा प्रकट करें तो $(r\text{ab} \times r\text{cd}) - (r\text{ad} \times r\text{bc}) = 0$ समीकरण

बनता है। उदाहरण के लिये मान लो a भाषा स्पष्टीकरण की योग्यता, b वाक्य-पूर्ति योग्यता, c निष्कर्ष निकालने की योग्यता तथा d संख्या परिगणन की योग्यता के परिचायक हैं तो 'चार राशि समीकरण' यह बनता है : (·१८×·३५)—(·१६×·४२)=०

उसी तरह अगर a पर्यायवाची शब्द बनाने की, b संख्या परिगणन की, c निष्कर्ष निकालने की एवं d वाक्य-पूर्ति की योग्यता का बोध कराये तो वह समीकरण निम्नांकित होगा :—

(·२०×·४२) — (·२४×०३५) = ०

उपर्युक्त उदाहरण में हमने ४ प्रकार की योग्यताओं में से केवल उनकेदो ग्रुप पर विचार किया है। कोई भी उदाहरण'चार राशि समीकरण' के सिद्धान्त का समर्थन करेगा गणितक तर्क द्वारा स्पीयरमैन ने यह सिद्ध करने का दावा किया है कि चूँकि विभिन्न योग्यताओं की माप 'चारराशि समीकरण' के सिद्धान्तानुकूल है, अतः उनमें प्रत्येक में सामान्य योग्यता का पुट विद्यमान रहता है; साथ ही विशेष योग्यता भी विद्यमान रहती है जो उस क्षेत्र के लिए आवश्यक है। यही 'मानसिक योग्यता का द्वैतवाद' का सिद्धान्त कहलाता है। थोड़ा ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि जो योग्यतायें दो वर्गों में (सामान्य और विशेष) विभाजित की जा सकती हैं,'चारराशि समीकरण' के सिद्धान्त का समर्थन करती हैं। प्रत्येक योग्यता का चूँकि वह किसी सीमा तक सामान्य-योग्यता पर निर्भर रहती है, उससे थोड़ा बहुत सम्बन्ध अवश्य रहता है। जो योग्यताएँ सामान्य योग्यताओं के ऊपर अधिकांश में आश्रित रहती हैं वे सामान्य योग्यता से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित रहती हैं और जो योग्यताएँ विशेष योग्यता के ऊपर आश्रित रहती हैं उनका सामान्य योग्यता से क्षीणतम् सम्बन्ध रहता है। पुनश्च, कोई भी दो योग्यताएँ जिनका सामान्य योग्यता से सम्बन्ध रहता है, परस्पर भी सम्बन्धित रहती हैं। उदाहरणार्थ, अगर निष्कर्ष निकालने की योग्यता का सामान्य योग्यता से ·७ अंश तक का सम्बन्ध है और वाक्य-पूर्ति योग्यता से ·६ अंश का सम्बन्ध है तो निष्कर्ष निकालने की योग्यता का वाक्य पूर्ति की योग्यता से ·७×·६=·४२ अंश का सम्बन्ध होगा।

मान लीजिये हमने ५ प्रकार की योग्यताओं को यथा निष्कर्ष निकालने, वाक्य पूर्ति का शृङ्खलाबद्ध परिगणन, पर्यायवाची शब्द लिखने, और भाषा को रूपान्तरित करके स्पष्ट करने की योग्यताओं को; उदाहरण के लिये ग्रहण किया। यह भी कल्पना करो कि उपर्युक्त योग्यताओं का सामान्य योग्यता से क्रमशः ·७, ·६, ·५, ·४ और ·३ अंश का सम्बन्ध स्थापित है। इस उदाहरण के अनुसार वाक्य पूर्ति योग्यता का पर्यायवाची शब्द लिखने की योग्यता से

·६ × ·४ = ·२४ अंश का सम्बन्ध होगा; इसी प्रकार अन्य योग्यताओं का पारस्परिक सम्बन्ध ज्ञात किया जा सकता है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि इन विभिन्न योग्यताओं के पारस्परिक सम्बन्ध का गुणक वही होगा जो कि उपर्युक्त दी गयी तालिका में है। यह सम्बन्ध चारराशि समीकरण के सूत्र के अनुकूल है।

स्पीयरमैन ने योग्यता द्वैतवाद से और भी निष्कर्ष निकाला है। वह यह सिद्ध करने का वादा करता है कि जो योग्यतायें दो वर्गों (सामान्य और विशेष) में विभाजनीय हैं, वे 'चतुर्राशि समीकरण' के सूत्र का समर्थन करती हैं; विलोम रूप में जो योग्यतायें चतुर्राशि समीकरण के सूत्र के अनुकूल हैं, वे दो वर्गों में विभाजनीय हैं।

हमारे लिये 'योग्यता द्वैतवाद' में सबसे उपयोगी और महत्वपूर्ण बात यह है कि सामान्य योग्यता का अंश हमारी प्रत्येक मानसिक क्रियाओं और विचार करने की क्रियाओं में विद्यमान रहता है। वह सामान्य योग्यता एक महत्वपूर्ण वस्तु है जिसे हम बुद्धि कह कर पुकारते हैं। स्वयं स्पीयरमैन ने इसे 'g' माना हैं। उसके मतानुसार 'बुद्धि' शब्द केवल एक ध्वनि-मात्र रह गया है; केवल यह शब्द मात्र है जिसके अनेक अर्थ हो सकते हैं। अतः उसका कोई भी निश्चित अर्थ नहीं है। स्पीयरमैन ने इस शब्द का प्रयोग अवांछनीय समझा है। उसने स्पष्टतः चिन्ह 'g' का प्रयोग 'बुद्धि' के लिये अनेक स्थान पर किया है और जैसा कि आगे हम देखेंगे यह प्रयोग न्यायोचित ही है।

स्पीयरमैन का दावा है कि प्रत्येक मानसिक क्रिया सामान्य और विशेष योग्यता पर आधारित रहती है। वह इस बात से सहमत है कि विशेष योग्यता में कुछ ऐसे तत्व होते हैं जो अन्य योग्यताओं में भी विद्यमान रहते हैं। वह यह भी स्वीकार करता है कि विशेष योग्यता के यह तत्व यदा कदा एक दूसरे से इतने मिश्रित और अपृथकनीय होते हैं कि उनको 'सामूहिक योग्यता' (Group factors) कहा जा सकता है। उदाहरण के लिये फ्रेन्च भाषा सीखने के लिये सामान्य और विशेष योग्यता की आवश्यकता होती है। इसके लिये विशेष योग्यता का एक विशेष तत्व शाब्दिक योग्यता (verbal ability) की अतीव आवश्यकता होती है। यह 'शाब्दिक योग्यता' सामूहिक योग्यता भी कही जा सकती है, क्योंकि यह योग्यता अन्य मानसिक क्रियाओं में, जिनमें शब्दों की आवश्यकता होती है, निश्चयात्मक रूप से विद्यमान रहती है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण सामूहिक योग्यतायें (group factors) यह हैं :—

(१) शाब्दिक योग्यता (verbal ability)

(२) सांख्यिक योग्यता (numerical ability)

(३) यान्त्रिक योग्यता (mechanical ability)
(४) सङ्गीत योग्यता (musical ability)
(५) तार्किक योग्यता (logical ability)
(६) सतत मानसिक प्रयास की क्षमता।
(७) स्मरण के कुछ रूप।
(८) एक प्रकार की मानसिक क्रिया से हटकर अन्य मानसिक क्रिया करने की शक्ति।
(९) साहित्यिक, वैज्ञानिक और हस्तकला सम्बन्धी सामूहिक योग्यता।

बिने और मैक्सवैल गार्नेट बुद्धि के सामान्य सिद्धान्त के अनुयायी हैं। बिने के मतानुसार बुद्धि विचार प्रतिक्रिया के तीन प्रतिकारकों से सम्बोधित की जा सकती है। वे निम्न हैं :—

(१) किसी समस्या को समझने, मानसिक क्रिया को उसका हल निकालने के लिये सन्नद्ध करने और ध्यान को केन्द्रीय करने की योग्यता।
(१) परिस्थिति की आवश्यकतानुसार मस्तिष्क को ढालने की योग्यता।
(३) स्वआलोचना की योग्यता।

इसी सम्बन्ध में बिने और साइमन का कथन है 'कि हमको ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्धि में एक आधार भूत-प्रशक्ति (faculty) निहित रहती है।'[1] यह व्यवहारिक जीवन के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस प्रशक्ति को हम विवेक (judgment) और व्यावहारिक ज्ञान (common sense), प्रयोगात्मक ज्ञान (practical sense), कार्य प्रारम्भ करने की क्षमता तथा स्वयं अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बनाने की योग्यता कह सकते हैं।

मैक्सवैल गार्नेट के मतानुसार 'मानसिक-प्रशक्ति' शब्द जिस रूप में प्रयोग में आता है उसकी माप $E=\sqrt{g^2+c^2}$ सूत्र द्वारा की जा सकती है। जबकि E=मानसिक प्रशक्ति, g=सामान्य योग्यता तथा c='चातुर्य' तथा वस्तुओं को समानता के आधार पर सम्बन्धित करने की योग्यता से है। उन्होंने यह बताया कि 'g' सामान्य प्रतिकारक एक या एक से अधिक समूह योग्यता में मिश्रित रहता है और उसे 'बुद्धि' समझा जाता है।"

बुद्धि के सम्बन्ध में एक अन्य तीसरा सिद्धान्त है जिसे थार्नडाइक, वुडवर्थ और जी० एच० टामसन ने प्रतिपादित किया है। इसके अनुसार बुद्धि मस्तिष्क

---

१. Binet & Simon, 'The Development of Intelligence in Children' (Kites translation, Training school, Vineland, New Jersey, 1916)

की विभिन्न स्वतन्त्र शक्तियों का नाम है। थार्नडाइक के मतानुसार मानसिक योग्यता अनेकों सम्बन्ध निर्मित करने की शक्ति को कह सकते हैं और जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में इन सम्बन्धों अथवा प्रारम्भिक योग्यताओं की आवश्यकता पड़ती है। उसने इस मत का खण्डन कर दिया कि कोई 'सामान्य केन्द्रीय योग्यता' (common central factor) होती है। थार्नडाइक और वुडवर्थ ने यह सावित कर दिया कि प्रशिक्षण को उस सीमा तक स्थानान्तरित नहीं किया जा सकता है जितना कि शिक्षा-शास्त्रियों ने समझ रखा है (जैसे कि कविता के याद करने का प्रभाव, दूसरी वस्तु पर तथा लैटिन पढ़ने का स्कूल के दूसरे विषयों पर प्रभाव इत्यादि)। इससे वे इस विचार पर पहुँचे हैं कि सीखने की क्रिया सामान्य नहीं वरन् वैशेषिक होती है और मस्तिष्क विभिन्न वैयक्तिक और अनाश्रित प्रशक्तियों का योग मात्र होता है।

टामसन ने स्पीयरमैन के गणितिक विधि की तीव्र आलोचना की। उन्होंने यह बतलाया कि 'मानसिक योग्यता का द्वैतवाद' का सिद्धान्त गणितिक परिणामों का सम्भावित न कि आवश्यक परिणाम है। टामसन की Sampling Theory के अनुसार मनुष्य के मस्तिष्क में बहुत सी मानसिक योग्यतायें पाई जाती हैं। किसी मानसिक परख को हल करने के लिये व्यक्ति अपनी सामूहिक योग्याओं के नमूने का प्रयोग करता है। यदि दो परखों में मानसिक सम्बन्ध एक ही प्रकार के बनते हों तो इन दोनों में एक सामान्य योग्यता पाई जा सकती है परन्तु यदि भिन्न-भिन्न सम्बन्ध बनते हों तो परखों में कोई भी एक वस्तु सामान्य नहीं होगी बल्कि विशेष रूप में होगी।

थर्सटन की बहुसंख्यक योग्यता सिद्धान्त

(Multiple factor theory
of Thurstone)

मानसिक योग्यताओं के विषय में अनेकों प्रयोगों के पश्चात् थर्सटन ने ५६ परख करीब २४० विद्यार्थियों को दिये और परख परिणामों को प्रस्तुत किया। थर्सटन के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि विभिन्न योग्यताओं के पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या करने के हेतु एक सामान्य योग्यता और अन्य विशेष योग्यताओं के मान लेने से ही उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती है; इसके लिये हमें कुछ अन्य योग्यताओं को मानना होगा और सामान्य योग्यता अर्थात् 'g'(general factor) उनमें से एक और सबसे महत्वपूर्ण योग्यता होगी। उनके अनुसार आठ प्रमुख अथवा आधारभूत योग्यतायें मानी गई हैं। वे निम्नलिखित हैं :—

V=Verbal Comprehension (शाब्दिक विशालता)

P=Perceptual speed (पर्यवेक्षण गति)
I = Inductive reasoning (आगमन तर्क शक्ति)
N=Number (संख्या की गणना)
M=Rote memory (स्मरण शक्ति)
D=Deductive reasoning (निगमन तर्क शक्ति)
W=Word fluency (वाक्-शक्ति)
S=Space or Visualization (वस्तुप्रेक्षण शक्ति)

वास्तव में थर्सटन ने सामान्य-योग्यता (g) का खंडन नहीं किया परन्तु उसकी (Factor analysis) की विधि में कोई सामान्य योग्यता (g) की प्राप्ति नहीं हो पाई थी। उसने यह बतलाया कि मानवीय योग्यता की उत्तम व्याख्या कुछ अन्य निम्न महत्व की योग्यताओं की सत्ता की मान्यता द्वारा की जा सकती है। जीवन की कुछ परिस्थितियों में, जिनमें सामान्य-योग्यता 'g' की अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती है, इन निम्न कोटि की महत्व वाली योग्यताओं के महत्व में वृद्धि हो जाती है। इसका उदाहरण किसी यान्त्रिक-कार्य में उससे सम्बन्धित विशेष कौशल व योग्यता का सामान्य योग्यता की अपेक्षा अधिक उपयोगी सिद्ध होना है।

बुद्धि के सिद्धान्त की कहानी यहीं पर समाप्त नहीं होती है। बहुत से मनोविज्ञों ने बुद्धि की परिभाषा भिन्न-भिन्न रूप से दी है। इनमें से मुख्यतया एविनघस, टरमैन, कालविन, प्याजी इत्यादि लोगों ने बुद्धि की परिभाषा अपने विचारानुसार दी है। इसी स्थान पर उपरोक्त व्यक्तियों की बुद्धि की परिभाषा देना स्थानानुकूल ही होगा।

एविनघस के शब्दों में, "मानसिक योग्यता' से यह तात्पर्य है कि उसके द्वारा कोई व्यक्ति समस्त वस्तु का उसके विभिन्न सम्बन्धों द्वारा मूल्य और अर्थ को प्रदर्शित करता है" संक्षेप में यह एक संयोजन-प्रक्रिया है।

टरमैन का कथन है कि "प्रत्येक व्यक्ति उसी सीमा तक बुद्धिमान माना जा सकता है जिस सीमा तक उसमें अमूर्त विचारशीलता (abstract thinking) पायी जाती है।"

कालविन ने बुद्धि की परिभाषा इस प्रकार की है, "बुद्धि आंतरिक योग्यताओं का वह समूह है जिसकी सहायता द्वारा कोई व्यक्ति कुछ न कुछ मात्रा में कोई बात सीखने में समर्थ हो सकता है।"

प्याजी ने इसका एक सुन्दर दृष्टिकोण लिया है—उनका विचार यह है' कि उस दशा में व्यक्ति का व्यवहार अधिक बुद्धियुक्त होता है जिसमें कि व्यक्ति तथा लक्ष्य के बीच का पथ साधारण से जटिल होता है"। जो सम्बन्ध सुगम नहीं

होते हैं वे केवल बुद्धिमान व्यक्ति ही जान सकते हैं। केवल कम बुद्धिमान व्यक्ति ही मूर्ख होता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं द्वारा यह सिद्ध है कि बुद्धि के विषय में कितना विचार-वैभिन्य है। उन सभी परिभाषाओं को संक्षेप में निम्न प्रकार से प्रकट किया जा सकता है।

बुद्धि वह सामान्य योग्यता है जो विभिन्न प्रकार से क्रियान्वित होती है, जो निम्न कोटि की मानसिक क्रियाओं की अपेक्षा उच्चतर मानसिक क्रियाओं में अधिक प्रदर्शित होती है। विशेषतः किसी समस्या विशेष का समाधान करने के हेतु यह अधिक प्रयुक्त होती है। इसका सम्बन्ध बाह्य प्रभावों के ग्रहण करने से ही नहीं है वरन् विश्लेषण, आयोजन और पुनर्व्यवस्था इत्यादि मानसिक क्रियाओं से भी होता है।

बुद्धि का मापन

(Measurement of Intelligence)

यह सामान्य अनुभव है कि कुछ विद्यार्थी किसी बात को सुगमता पूर्वक और शुद्ध रूप में सीख जाते हैं और कुछ विद्यार्थी समान साधनों की उपस्थिति में भी ऐसा नहीं कर पाते हैं। और यह और भी आश्चर्यपूर्ण बात है कि कुछ विद्यार्थी अन्य विद्यार्थियों की अपेक्षा उत्तम शिक्षा प्राप्त करने पर भी पिछड़े हुए रहते हैं। विद्यार्थी के अन्दर शीघ्र, शुद्ध तथा सुगमतापूर्वक सीखने की योग्यता का ही नाम बुद्धि है। किसी विद्यार्थी की शैक्षिक सफलता उसकी स्वाभाविक बुद्धि, उसके भौतिक स्वास्थ्य, परिश्रम-शीलता, वातावरण और शिक्षा की अवधि पर अधिक आश्रित रहती है। विद्यार्थी की विद्यालय विषयों में सफलता उपरोक्त बातों पर ही निर्भर रहती है। गुरु, माँ-बाप तथा स्वास्थ्य परामर्शदाता किसी विद्यार्थी की शिक्षा-योग्यताओं में सुधार कर सकते हैं परन्तु स्वाभाविक बुद्धि में वृद्धि करना दुष्कर कार्य है। एक विद्यार्थी जोकि जन्म से अस्वाभाविक हो उसके लिये केवल इतना ही किया जा सकता है कि उसके वातावरण में कुछ सुधार हो जाय। बुद्धि मापन कार्य में कुछ कठिनाइयाँ हैं। स्वाभाविक(native) बुद्धि से अर्जित(acquired) बुद्धि का पृथक्कीकरण कठिन है। डा० कामत ने ठीक कहा है, "कोई व्यक्ति अपनी स्वाभाविक बुद्धि (native intelligence), अर्जित ज्ञान, कौशल अथवा क्रियाओं के द्वारा प्रकट करता है। शुद्ध, अमूर्त बुद्धि का कोई अस्तित्व नहीं है। उसे सदैव किसी सहारे की आवश्यकता पड़ती है जिसके द्वारा वह अपने को प्रकट कर सके। यह साधन (vehicle) विभिन्न प्रकार के होते हैं। वातावरण और अवसर की विभिन्नता से मानसिक

क्रियाओं को विभिन्न निर्देशन प्राप्त होते हैं। अतः स्वाभाविक बुद्धि का मापन इन विभिन्न साधनों के मापन द्वारा ही सम्भव है।"

हमारे सामने अब समस्या यह है कि हम बुद्धि प्रदर्शन के कौन-कौन साधन चुनें। यदि यह साधन अल्प संख्या में चुने जाते हैं तो त्रुटियाँ होना अनिवार्य है। हम उनके चुनने में गणितिक शुद्धता नहीं दिखला सकते हैं। इस सम्बन्ध में बिने की पद्धति ग्राह्य है। साधन में तीन मुख्य बातें होनी चाहिये:—

(१) विभिन्न वातावरण के बालकों के हेतु यह परख या साधन उनके सामान्य अनुभवों के आधार पर व्यवस्थित की गई हो।

(२) उनमें अधिकाधिक भिन्नता हो।

(३) यह परखें मूल योग्यताओं की माप के लिए नहीं वरन् उच्च मानसिक प्रशक्तियों की परीक्षा हेतु बनाई गई है।

बिने की परख-पद्धति का उल्लेख करने से पूर्व हमें विभिन्न योग्यताओं की जाँच के लिये प्रयोग में लाई गई पहिले की अन्य परखों के विषय में कहना आवश्यक है। पहिले की बुद्धि परखों को इस प्रकार निर्मित किया गया था कि वे किसी वाह्य मापदण्ड से सम्बन्धित थीं, यद्यपि इन परखों में पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त क्षीण था। अतः यह परख पद्धति विफल सिद्ध हुई। बुद्धि मापन हेतु कुछ अन्य पद्धतियाँ भी अस्तित्व में आईं। इन पद्धतियों द्वारा किसी व्यक्ति के सिर के आकार और आकृति द्वारा उसकी बुद्धि का अनुमान लगाया जाता था। बिने ही प्रथम व्यक्ति था जिसने यह सिद्ध किया कि मस्तिष्क की योग्यता उसकी कार्य-क्षमता पर निर्भर होती है। किसी ऐन्जिन की कार्य-क्षमता की जाँच करने के लिये उसके पिस्टन का आकार, भार तथा वाष्प-दबाव के अनुमान के परिणाम आदि का जानना आवश्यक है परन्तु इस तरह हमारे परिणाम विश्वनीय नहीं हो सकते हैं। ऐन्जिन की कार्य-कुशलता उसकी क्षमता के द्वारा ही ज्ञात की जा सकती है।

दीर्घकालीन अन्वेषण के पश्चात् बिने ने ज्ञात किया कि उस शिक्षक का कार्य जो सामान्य बालकों को शिक्षा देता है सुगम हो जाता है। वे आसानी से तथा शीघ्रता से सीख सकते हैं। उस समय तक शिक्षा पद्धति में पर्याप्त बिकास हो चुका था। लोग यह समझ चुके थे कि विभिन्न आयु वाले बालकों को किस प्रकार का शिक्षण दिया जाना चाहिये। परन्तु विकृत मस्तिष्क (mental defective) वाले बच्चों की शिक्षा के विषय में सुझाव देना कुछ दुष्कर था। कभी-कभी ऐसा-पाया जाता था कि १२ वर्ष के बालकों को ८ वर्ष के बच्चे की भाँति शिक्षण दिया जाता था, यहाँ तक कि कभी-कभी उसको ५ या ७ वर्ष के बच्चे की तरह भी शिक्षण देना आवश्यक हो जाता था। परन्तु बिने के समक्ष

प्रत्येक बच्चे के शिक्षा की समस्या थी। मानसिक दुर्बल बच्चों को बुद्धि की दृष्टि से उनसे कम अवस्था वाले बच्चों की भाँति समझकर बिने ने एक आयु के बालकों की क्रियाओं और योग्यताओं को दूसरी आयु के बालकों की क्रियाओं और योग्यताओं से तुलना करने के द्वारा बुद्धि मापन एवं परख करने का विचार प्रस्तुत किया। उसकी मुख्य समस्या एक सामान्य बुद्धि-स्तर के बालक की खोज मात्र थी।

बिने ने यह भी खोज की कि यदि बड़ी संख्या में बालकों की परख ली जावे, तो समस्त वर्ग की औसत योग्यता के द्वारा एक सामान्य बालक की योग्यता का बोध किया जा सकता है। वे बालक जिनके परख-फल उसी अवस्था के वर्ग के औसत परख-फल के बराबर हों 'सामान्य बुद्धि' वाले समझे जांय।

बिने ने अपने मित्र साइमन के सहयोग से इस सिद्धान्त को सिद्ध करने के लिये अनेक वर्षों तक कार्य किया और सन् १९०८ ई० में अनेक ऐसे प्रश्नों की सूची प्रकाशित की जिन्हें विभिन्न अवस्था के सामान्य-बुद्धि स्तर के बालक कर सकते थे।

विभिन्न आयु के बालकों के लिये बिने साइमन परख की कुछ परख सामग्री

(test items)

'आयु—३ वर्ष'

(१) नाक, आँख और मुँह को संकेत द्वारा बता सकता है।
(२) छोटे-छोटे वाक्यों को दुहरा सकता है।
(३) दो अंकों की संख्या को बोल सकता है।
(४) चित्र में वस्तुओं की गणना कर सकता है।
(५) अपना अन्तिम नाम जानता है।

'आयु—४ वर्ष'

(१) लिङ्ग भेद जानता है।
(२) परिचित वस्तुओं का नाम ले सकता है।
(३) तीन अंकों की संख्या बोल सकता है।

'आयु—५ वर्ष'

(१) विभिन्न भार के दो बक्सों की तुलना कर सकता है।
(२) वर्ग को देख कर उसको खींच सकता है।

(३) धैर्य के खेल, जैसे कर्ण द्वारा विभाजित किये गए आयताकार कार्ड को दूसरे अविभाजित कार्ड को देख कर फिर आयत को शक्ल में रखना।

(४) चार सिक्कों को गिनता है।

(५) १० शब्द-खंडों वाले वाक्य को दुहरा सकता है।

'आयु—६ वर्ष'

(१) दाँया और बाँया पक्ष जानता है।

(२) शब्द-खंडों वाले वाक्य को दुहराता है।

(३) कलात्मक तुलनायें कर सकता है।

(४) परिचित वस्तुओं की परिभाषा दे सकता है।

(५) तीन आज्ञाओं का पालन कर सकता है।

(६) आयु-भेद जानता है।

(७) प्रातः काल और मध्याह्न के पश्चात् काल के भेद को जानता है।

'आयु—७ वर्ष'

(१) अधूरे चित्र में पूरक वस्तु को बता सकता है।

(२) गायकों की संख्या बता सकता है।

(३) लेख की प्रतिलिपि कर सकता है।

(४) हीरे की आकृति को बना सकता है।

(५) चित्रों का वर्णन कर सकता है।

(६) १३ सिक्कों को गिन सकता है।

(७) ५ अङ्कों की संख्या को दुहरा सकता है।

(८) चार सामान्य सिक्कों के नाम जानता है।

'आयु—८ वर्ष'

(१) किसी गद्य खंड को पढ़ता है और दो बातें याद रख सकता है।

(२) नौ सिक्कों को गिन सकता है।

(३) चार रंगों का नाम बता सकता है।

(४) बीस से उल्टी गिनती गिन सकता है।

(५) इबारत लिख सकता है।

(६) अन्तरों को जानता है।

'आयु—९ वर्ष'

(१) तारीख, सप्ताह और माह के दिन, माह और वर्ष के नाम जानता है।

(२) सप्ताह के दिनों को दुहरा सकता है।

(३) सिक्कों को रेजगारी में बदल सकता है।
(४) उच्चतम परिभाषायें जानता है।
(५) गद्य-खंड पढ़ता है और छः बातें याद रख सकता है।
(६) भार के क्रमानुसार पांच बक्सों को क्रम से रख सकता है।

'आयु—१० वर्ष'

(१) वर्ष के महीनों के नाम बतला सकता है।
(२) नौ सिक्कों के नाम बतला सकता है।
(३) किसी वाक्य में ३ शब्दों का प्रयोग कर सकता है।
(४) सामान्य-ज्ञान के सरल प्रश्नों को समझ सकता है।
(५) सामान्य-ज्ञान के कठिन प्रश्नों को समझ सकता है।

'आयु—११ वर्ष'

(१) निरर्थक कथनों की आलोचना कर सकता है।
(२) किसी वाक्य में ३ शब्द प्रयुक्त कर सकता है।
(३) ३ मिनट में ६० शब्द कह सकता है।
(४) अमूर्त वस्तुओं की परिभाषा कर सकता है।
(५) किसी वाक्य में बेतरतीव रखे शब्दों को तरतीव में रख सकता है।

'आयु—१२ वर्ष'

(१) सात अंकों की संख्या को दोहरा सकता है।
(२) किसी शब्द की तुक मिलाने के लिये ३ शब्द बतला सकता है।
(३) २६ शब्द-खंडों के वाक्य को दुहरा सकता है।
(४) चित्रों की व्याख्या कर सकता है।

'आयु—१३ वर्ष'

(१) विभिन्न शक्लों में कागज काट सकता है।
(२) कल्पना में दो त्रिभुजों को उल्टा रख कर फिर ठीक ढंग से रख कर कुछ परिणाम निकाल सकता है।
(३) जोड़े के अमूर्त शब्दों के अन्तर को बतला सकता है।

बिने प्रणाली के अनुसार उपर्युक्त परीक्षायें प्रत्येक बच्चे को व्यक्तिगत रूप से दी जाती हैं। उसने इस बात पर जोर दिया कि परीक्षा के पूर्व बालक को विश्वास में लेना आवश्यक है। शांत वातावरण में परीक्षक इन प्रश्नों को बच्चों से एक के पश्चात् दूसरे के क्रम में पूछता था और आवश्यक सहायक सामग्री भी प्रयोग करता था। बिने की परख व्यक्तिगत और अधिकांश में

मौखिक थी। बिने ने परख देने से पूर्व उसकी विधि और प्रक्रिया को स्पष्ट कर दिया। उसकी परख-पद्धति उन लोगों की पद्धति से भिन्न है जो किसी बालक की बुद्धि की जाँच उसकी खेल में कुशलता अथवा आँख की चमक, द्वारा करते हैं। बिने के परख-प्रश्न स्पष्ट भाषा में लिखे होते हैं तथा प्रश्न-भाषा अपरिवर्तनीय होती है। प्रत्येक परीक्षार्थी को समान वातावरण में रखा जाता है। परख-सामग्री रखने की विधि भी स्पष्टतः दी हुई होती है क्योंकि यह देखा जाता है कि परख विधि में थोड़ा अन्तर भी परख परिणाम पर प्रभाव डाल सकता है। बिने ने विभिन्न बालकों का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् मानसिक आयु का सिद्धान्त खोजा जिसकी सहायता द्वारा वह उनके बुद्धि अन्तर को जान सकता था। एक ही उम्र के दो बच्चे तुलनात्मक दृष्टि से क्या कर सकते हैं वह इस परख का सांकेतिक बिन्दु है। यह स्पष्ट हो गया कि एक १० वर्ष का बालक जो ८ वर्ष के बालक के उपर्युक्त परख में सफल हो सकता है, मानसिक दृष्टिकोण से २ वर्ष पिछड़ा हुआ है। इसके विपरीत अगर वही बालक १२ वर्ष के बालक के उपर्युक्त परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकता है, बुद्धि में १२ वर्ष के बालक का समकक्षी है। इस प्रकार बिने ने एक महत्वपूर्ण सिद्धांत संसार को प्रदान किया। हम एक बालक के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं अगर हमको यह ज्ञात हो कि उसकी वर्षायु १० साल और मानसिक आयु भी १० वर्ष है। हम आसानी से कह सकते हैं कि उपरोक्त बालक एक सामान्य मानसिक योग्यता वाला है। अगर वर्षायु ८ वर्ष और मानसिक आयु १० वर्ष हो तो इस तरह का बालक सामान्य-स्तर से उच्च श्रेणी का है और यदि मानसिक आयु वर्षायु से कम है तो वह बालक निम्न श्रेणी का है। यदि निश्चित आयु ज्ञात हो तो यह मालूम हो सकता है कि ऐसा विद्यार्थी कितनी सीमा तक निम्न श्रेणी का है। बिने ने मनुष्यों के वर्गीकरण हेतु 'मानसिक-आयु' (mental age) का विचार प्रदान किया। इस पद्धति से वह मानसिक दुर्बलता वाले लोगों को पृथक कर सकता था।

बिने ने यह कार्य १९०५ ई० में प्रारम्भ किया था। फिर १९०८ में बुद्धि मापदण्ड का संशोधित रूप प्रकाशित किया गया और अन्त में सन् १९११ ई० में वह अन्तिम रूप में प्रकाशित किया गया। कुछ परखें जो प्रथम प्रकाशित मापदण्ड में अनुपयुक्त पाई गईं, उनको छोड़ दिया गया। बिने-साइमन परख-पद्धति को विभिन्न देशों में मान्यता मिली। इंगलैण्ड में सन् १९२२ में प्रोफेसर बर्ट ने Mental and scholastic tests के नाम से 'London Revision of Binet Tests" को प्रकाशित किया। अमेरिका में टरमैन ने

१९१३-१६ के मध्य में इस परखका संशोधन प्रकाशित किया जिसका नाम Stanford Revision and Extension of Binet-Simon scale for Measuring intelligence रक्खा तथा एक पथ-प्रदर्शिका 'Measurement of Intelligence' भी प्रकाशित की। जर्मनी और इटली में १९१३ ई० में मनोविज्ञ Bobertaga और Saffiote ने अपने-अपने संशोधन प्रकाशित किये। आंग्ल भाषा प्रधान देशों में टरमैन का संशोधन स्वीकृत किया गया और उस परख को बुद्धि-मापन हेतु आदर्श परख माना गया। स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में मैरिल के साथ कार्य करते हुये टरमैन ने सन् १९३७ ई० में 'The New Revised Stanford Binet test of Intelligence' प्रकाशित किया। इस नवीन परख का प्रयोग अमेरिका तथा इंगलैंड में व्यापक रूप से होने लगा है।

बिने की परख-पद्धति वैज्ञानिक दृष्टिकोण से त्रुटिपूर्ण है। छः वर्ष का बालक यदि मानसिक आयु में १ वर्ष पिछड़ा है और १२ वर्ष का बालक भी १ वर्ष पिछड़ा है तो पहले के बारे में बात दूसरी की अपेक्षा अधिक गम्भीर है परीक्षणों द्वारा यह भी ज्ञात किया गया कि निम्न स्तर पर १ वर्ष का मानसिक आयु का अन्तर उच्च स्तर पर जाकर २ वर्ष का अन्तर हो सकता है। अतः यह परिणाम निकला कि बालकों की तुलना उनकी मानसिक आयु के आधार पर नहीं की जा सकती है। ४ वर्ष का बालक यदि ३ वर्ष की मानसिक आयु का है तो बौद्धिक दृष्टिकोण से पिछड़ा हुआ माना जायगा; परन्तु १६ वर्ष का बालक यदि १५ वर्ष की मानसिक आयु का है तो वह सामान्य बालक माना जायगा। इसलिये भिन्न-भिन्न आयु के बालकों की तुलना हेतु एक 'स्वच्छन्द मापदण्ड' की आवश्यकता पड़ी। जर्मनी के मनोविज्ञ स्टर्न ने संसार को मानसिक-लब्धि (Mental quotient) का सिद्धान्त प्रदान किया। बाद में Terman ने इसका प्रयोग I. Q. (Intelligence quotient) के रूप में किया।

बुद्धि-लब्धि (I.Q.) किसी व्यक्ति की वर्षायु और मानसिक आयु के मध्य अनुपातिक सम्बन्ध है। इस अनुपात को १०० से गुणा कर दिया जाता है ताकि दशमलव चिन्ह की आवश्यकता न पड़े।

$$\text{इस प्रकार I.Q.} = \frac{\text{Mental Age}}{\text{Chronological Age}} \times 100 = \frac{\text{M. A.}}{\text{C. A.}} \times 100$$

अगर किसी बालक की मानसिक आयु (Mental Age) = 10 वर्ष

और उसी बालक की वर्षायु (Chronological Age) = 10 वर्ष

तो उसका I. Q. $= \frac{10}{10} \times 100 = 100$

अगर बुद्धि-लब्धि १०० है तो व्यक्ति सामान्य बुद्धि वाला माना जायगा। अगर वर्षायु की अपेक्षा मानसिक आयु कम है तो बुद्धि-लब्धि भी १०० से कम होगी और वह व्यक्ति सामान्य-बुद्धि से निम्न श्रेणी की बुद्धि वाला कहलायेगा। और अगर बुद्धि-लब्धि १०० से अधिक है तो वह सामान्य बुद्धि से उच्च-स्तर की बुद्धि वाला व्यक्ति माना जायगा। इस तरह से हमको ज्ञात हो गया कि सामान्य बालक की मानसिक आयु और वर्षायु बराबर होगी।

बुद्धि लब्धि के अनुसार हमारे देश के बालकों का वर्गीकरण निम्नलिखित है:—

वर्ग	बुद्धि-लब्धि	जन संख्या प्रतिशत	
		Actual	smoothed
प्रतिभाशाली (geneous)	१४० और उससे ऊपर	२·००	१·५
असामान्य (extraordinary)	१३०-१३९·९	३·६२	३·५
अत्यन्त उच्च (very superior)	१२०-१२९·९	७·१०	९
उच्च (superior)	११०-११९·९	१४·४३	१५
सामान्य (normal)	९०-१०९·९	४२·७३	४२
पिछड़े हुये (backward)	८०-८९·९	१५·५०	१५
अत्यन्त पिछड़े हुये (very backward)	७०-७९·९	१०·५०	९
सीमा पर (border line)	६०-६०·९	३·२०	३·५

मन्द-बुद्धि वाले बालक

वर्ग	बुद्धि-लब्धि	जन संख्या प्रतिशत	
		Actual	smoothed
(morons)	४०–५९·९	·९३	१·५
अधिक मन्द बुद्धि (imbeciles)	२०–३९·९		
जड़ बुद्धि वाले (idiots)	२० से नीचे		
	योग	१००	१००

1. Q. के आधार पर अङ्गरेजी बालकों का निम्नलिखित वर्गों में विभाजन किया जा सकता है।[1]

'बुद्धि-लब्धि	वर्ग में बालकों का प्रतिशत	वर्ग
१४५ तथा उससे अधिक	·२	प्रतिभाशाली
१३०-१४४	१·८	अधिक उच्च बुद्धि वाले
११५–१२९	१०	उच्च बुद्धि वाले
१००–११४	३८	सामान्य बुद्धि वाले
८५ - ९९	३८	
७०– ८४	१०	मन्द बुद्धि वाले
५५– ६९	१·८	मानसिक दौर्बल्य
५५ से नीचे	·२	नितान्त बुद्धि हीन

१. Peel, E. A. : 'Psychological Basis of Education'; Oliver & Boyd, London, 39 A Welbeck Street. W. 1., 1956.

बुद्धि-लब्धि का वितरण नीचे वाले ग्राफ में दिया गया है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि यह वक्ररेखा सामान्य है।
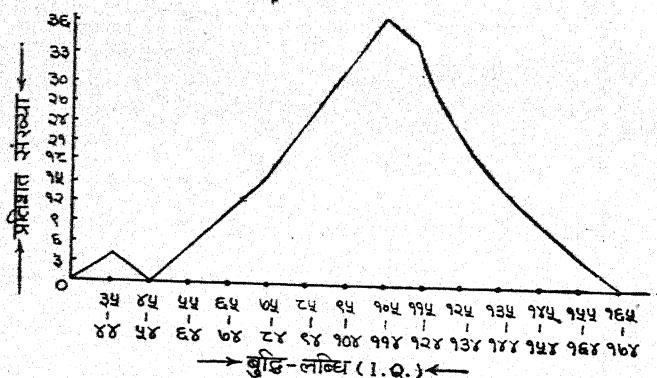
चित्र १४

इस ग्राफ में विभिन्न बुद्धि लब्धि के प्रतिशत जन संख्या को पढ़ा जा सकता है।

मानसिक आयु में विकास

(The growth of mental age)

यह माना जाता है कि किसी व्यक्ति की बुद्धि-लब्धि उसके जीवन भर एकसी रहती है। परन्तु यह भी ज्ञात हुआ है कि बुद्धि-लब्धि में अन्तर भी पड़ता है परन्तु साधारणतया यह अन्तर नगण्य है। यद्यपि किसी बच्चे अथवा व्यक्ति की किसी विशेष आयु स्तर पर बुद्धि-लब्धि एक सी होती है, परन्तु मानसिक आयु एक सी नहीं होती है। बच्चे की मानसिक आयु में विकास होता रहता है। किसी बच्चे की ८ वर्ष के स्तर की मानसिक आयु १० वर्ष के स्तर पर बड़ी हो सकती है। यह निश्चय रूप से ज्ञात किया जा चुका है कि मानसिक आयु में विकास २० वर्ष की आयु तक होता है। मन्द-बुद्धि के बच्चों में यह विकास दो एक वर्ष पूर्व ही रुक जाता है और तीव्र बुद्धि बालकों में यह विकास एक या दो वर्ष तक और होता है गोकि उसकी गति बड़ी ही मन्द होती है।

चूँकि मानसिक आयु विकास की सीमा २० वर्ष मानी गई है इसको यदि हम किसी व्यक्ति की बुद्धि-लब्धि ज्ञात करने के लिये प्रयोग करें तो हम यह कह सकते हैं कि कोई व्यक्ति जिसकी

वर्षायु २० से अधिक है २० ही वर्ष का माना जावेगा और इस तरह I. Q. ज्ञात करने हेतु उसकी मानसिक आयु को २० से भाग दिया जावेगा। उदाहरण के लिये एक व्यक्ति जिसकी वर्षायु २५ वर्ष है और मानसिक आयु २२ वर्ष है तो उसका I. Q. = २२/२० × १०० = ११० होगा।

निम्न चित्र में जन्म से प्रौढ़ तक मानसिक आयु विकास को दिखाया
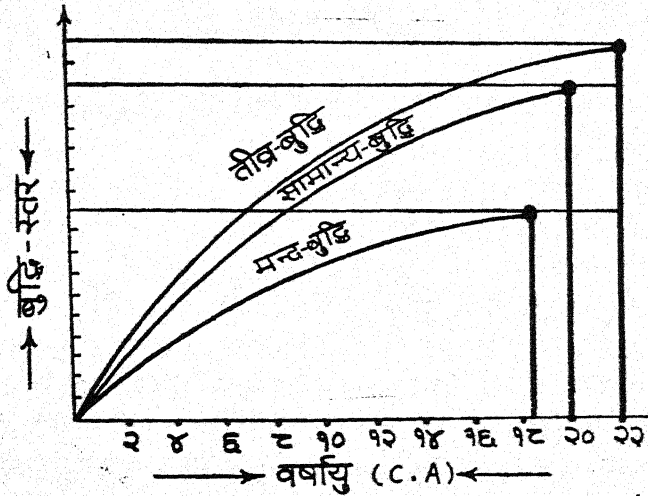
Diagram-Showing the growth of the mental age.

चित्र १५

गया है। इससे इस बात का ज्ञान होता है कि मन्द बुद्धि के लोग तीव्र बुद्धि लोगों की अपेक्षा जल्दी मानसिक विकास की चरम सीमा में पहुँच जाते हैं। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि सामान्य बालक की मानसिक आयु २० वर्ष तक की अवस्था तक बढ़ती है, इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि प्रौढ़ व्यक्ति २० वर्ष के बालक से अधिक ज्ञान नहीं रखता है। बुद्धि और ज्ञान एक वस्तु नहीं है। निश्चित तौर पर एक प्रौढ़ व्यक्ति का २० वर्षीय बालक की अपेक्षा अनुभव अधिक होता है। परन्तु २० वर्ष के बालक की सीखने की गति २५ अथवा ४० वर्ष के प्रौढ़ की सीखने की गति की अपेक्षा अधिक हो सकती है। बुद्धि का अर्थ परिस्थितियों के प्रति समयोजनशीलता (adaptability), तीव्रता और कुशलता है। बुद्धि, ज्ञान और अनुभव ये भिन्न वस्तु हैं। हम ३० वर्ष की अवस्था तक समस्त मानसिक प्रशक्तियों को प्राप्त नहीं कर पाते हैं। यह केवल ५० वर्ष की आयु तक सम्भव हो पाता है। परन्तु अनुभव का सहारा न लिया जाय तो २० वर्ष का तरुण

किसी परिस्थिति का इतनी ही कुशलता से सामना कर सकता है, जितना कि प्रौढ़ व्यक्ति।

बुद्धि-परख का प्रयोग

(Administration of an intelligence test)

बुद्धि परख प्रयोग करने से पूर्व मनोविज्ञ को चाहिये कि वह परीक्षित व्यक्ति में आत्म-विश्वास उत्पन्न कर दे और उसको धैर्यता दे। इस उद्देश्य की प्राप्ति करने की एक विधि बच्चों में यह भावना पैदा करना है कि वे कोई खेल खेलने जा रहे हैं। परीक्षक बच्चों की क्रिया की प्रशंसा करके उन्हें उत्साहित करता है चाहे उनके उत्तर शुद्ध हों अथवा अशुद्ध हों। बच्चे से यह कदापि नहीं कहा जाता है कि "यह अशुद्ध है।" उसे इस प्रकार के वाक्यों द्वारा उत्साहित किया जाता है कि 'शाबास, यह ठीक हैं' अब हम दूसरी वस्तु को लेंगे।

वास्तविक परख से पूर्व परीक्षक बच्चे की बुद्धि का प्रारम्भिक अनुमान लगा लेता है मान लीजिये अध्यापक का बच्चे की बुद्धि का अनुमान ही उसकी बुद्धि का परिचायक है। परीक्षक अनुमानित बुद्धि-स्तर से थोड़ा नीचे के स्तर से परख आरम्भ करता है, और यह परख इस सीमा तक की जाती है जब बालक किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाता है। कल्पना करो कि हम एक १० वर्ष १ माह वाले बालक की जो चौथी कक्षा में पढ़ता है, परख लेते हैं। माना कि उसका २५ बालकों की कक्षा में १५ वाँ स्थान है। यह भी मान लो कि अ, ब, स, द, य में से अध्यापक का बालक की बुद्धि का अनुमान 'द' है। उसकी मानसिक आयु ज्ञात करना अब सुगम है। बालक की उस आयु को जिस पर वह सभी प्रश्नों के उत्तर दे सकता है, आधार मानलो। चूँकि एक वर्ष में ६ प्रश्नों की व्यवस्था है अतः अगले प्रत्येक सही उत्तर के लिये २ माह उसकी इस आधारित आयु में जोड़ देना चाहिये। १० वर्ष की आयु के पश्चात् आयु वर्ग १२,१४, १६, १९ और २२ है। इसका तात्पर्य यह है कि १० वर्ष के स्तर से १२ वर्ष के स्तर तक ६ प्रश्न हल करने हैं अतः २ वर्ष में ६ प्रश्न हल करने हैं इसलिये १ प्रश्न का मान = ४ माह। सो प्रत्येक सही उत्तर के लिये ४ माह आधारित आयु में जोड़ देना चाहिये। यही नियम १४ और १६ वर्ष के स्तर की परखों के लिये है। १६ वर्ष के पश्चात् ३ वर्ष में ६ प्रश्नों की व्यवस्था है। अतः १९ और २२ वर्ष की स्तर की परखों के लिये, अगर बालक उनको सही करता हैं तो प्रत्येक प्रश्न के लिये ६ माह उसकी आधारित आयु में जोड़ देना चाहिये। अब अगर उपरोक्त **बालक** जिसकी वर्षायु १० वर्ष १ माह है ७ वर्ष के स्तर की सभी परखों में उत्तीर्ण रहा है, ८ वर्ष की परख के ३ प्रश्न,

९ वर्ष की परख के २ प्रश्न, मगर १० वर्ष के परख के किसी प्रश्न को सही हल नहीं कर पाया है, तो उपरोक्त बालक की मानसिक आयु निम्नलिखित विधि से ज्ञात की जा सकती है :—

मानसिक आयु

७ वर्ष के सभी प्रश्नों में उत्तीर्ण—७ वर्ष
८ वर्ष के ३ प्रश्नों में उत्तीर्ण—६ माह
९ वर्ष के २ प्रश्नों में उत्तीर्ण—४ माह
१० वर्ष के सभी प्रश्नों में अनुत्तीर्ण–०

कुल योग=७ वर्ष १० माह।

मानसिक आयु=९४ माह

वर्षायु=१२१ माह ∴ बुद्धि-लब्धि=$\frac{९४}{१२१}$×१००=७७·७ माह।

उसकी वर्षायु=१० वर्ष १ माह

मानसिक आयु=७ वर्ष १० माह।

अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि बालक बौद्धिक दृष्टिकोण से २ वर्ष और ३ माह पिछड़ा हुआ है।

एक अन्य उदाहरण ले लीजिये। मान लो कोई बालक जिसकी वर्षायु १५ वर्ष और ५ महीना है, १२ वर्ष के स्तर के सभी प्रश्नों में, १४ वर्ष के ५, १६ वर्ष के ५ और १९ वर्ष के स्तर के ४ प्रश्नों एवं २० वर्ष के स्तर के ३ प्रश्नों में उत्तीर्ण रहता है। उसकी बुद्धि-लब्धि निम्नलिखित होगी :—

मानसिक आयु

१२ वर्ष के ६ प्रश्नों में उत्तीर्ण =१२ वर्ष
१४ ,, ,, ५ ,, ,, ,, = १ वर्ष ८ माह
१६ ,, ,, ५ ,, ,, ,, = १ वर्ष ८ माह
१९ ,, ,, ४ ,, ,, ,, = २ वर्ष
२२ ,, ,, ३ ,, ,, ,, = १ वर्ष ६ माह

योग=१८ वर्ष १० माह

वर्षायु=१५ वर्ष, ५ माह अर्थात् १८५ माह

मानसिक आयु=१८ वर्ष १० माह अर्थात् २२६ माह।

∴ बुद्धि लब्धि =$\frac{२२६}{१८५}$×१००=१२२

यह बालकबौद्धिक दृष्टिकोण से सामान्य बालक से ३ वर्ष और ५ माह आगे है।

अगर बिने की परख पद्धति का अनुसरण किया जावे जिसके अनुसार केवल ५ प्रश्नों की व्यवस्था है, तो बालक की मानसिक आयु में ३ वर्ष से १० वर्ष के स्तर की उत्तीर्ण परखों में १ वर्ष का ·२ भाग जोड़ देना चाहिये, १२, १४, १६ वर्ष के स्तर की उत्तीर्ण परखों के लिये बर्ष का ·४ भाग और १६ और २२ वर्ष के स्तर की उत्तीर्ण परखों के लिये वर्ष का ·६ भाग जोड़ देना चाहिये। अगर प्रश्नों की संख्या ५ से न्यून हो तो १ वर्ष का तदनुकूल अंश उसकी मानसिक आयु में जोड़ना चाहिये।

बुद्धि-परखों का वर्गीकरण
(Types of Intelligence tests)

व्यक्तिगत और सामूहिक परखें (Individual and group tests)—बुद्धि-परखों के वर्गीकरण की दो मुख्य विधियाँ है: प्रथम 'व्यक्तिगत' और द्वितीग 'सामूहिक' परखें। व्यक्तिगत परख का आधार बिने तथा साइमन की मानसिक दौर्बल्य वाले बालकों के बुद्धि मापन हेतु तैयार परख है। यह परख सभी बालकों की बुद्धि मापन हेतु भिन्न-भिन्न परिवर्तनों के पश्चात् तैयार की गई। मुख्य परिवर्तन बर्ट, टरमैन और मैरिल द्वारा किये गये थे। बाद का परिवर्तित रूप अंग्रेजी बोलने वाले प्रदेशों में प्रयोग में लाया गया। यूरोप में मनोविज्ञ, इसकी जर्मन तथा स्कैण्डिनेविया वासियों के हेतु प्रमापीकृत परख तैयार कर रहे हैं। वैलेनटाइन ने भी एक व्यक्तिगत बुद्धि-परख का निर्माण किया है जोकि बिने की परख के परिवर्तित रूप से मिलती जुलती है। बहुत सी कार्यात्मक-परखें (performance tests) जैसे Kohs Blocks, Cube construction, Alexander's Passalong, The form boards and Peel's Blocks tests (डा० पील द्वारा तैयार किया हुआ), डा० भाटिया का परफौरमैन्स टैस्ट आफ इन्टैलीजैन्स इत्यादि व्यक्तिगत परखों के अन्तर्गत रखी जाती हैं।

(१) **सामूहिक परखें** :—सामूहिक परखों का इतिहास बड़ा संक्षिप्त है। सामूहिक परख का प्रारम्भ तभी से हुआ जब कि अमेरिका ने प्रथम विश्व महायुद्ध में भाग लिया था। १९१० ई० में अमेरिका के लोगों को युद्ध हेतु सैनिकों की परख की आवश्यकता पड़ी। इस कठिनाई को दूर करने के लिये उन्होंने सामूहिक परख का निर्माण किया। इसका तात्पर्य यह था कि एक ही समय में एक बड़े समूह की परख ली जा सके। इसके बाद ही इनका प्रयोग विद्यालयों में भी बालकों की परख तथा श्रेणीकरण हेतु किया जाने लगा।

इंगलैंड में टामसन और उनके साथियों ने Moray House में इस प्रकार की सामूहिक परखों का प्रयोग किया और १९२० ई० में टामसन और वर्ट ने Northumberland tests नाम की परख का निर्माण भी किया।

चूंकि सामूहिक परख के द्वारा विद्यार्थियों के बड़े समूह की एक साथ परीक्षा ली जा सकती है इसलिये इसका प्रयोग इंगलैण्ड की Local Educational Authorities बालकों के श्रेणीकरण तथा भिन्न-भिन्न स्तरों की शिक्षा के हेतु कर रही है। इसी कारण इसका प्रयोग सेना में तथा अन्वेषण कर्त्ता बुद्धि के प्रकार तथा बालकों की अभिरुचि ज्ञात करने के लिये प्रयोग में लाते हैं।

Omnibus type vs. Sub-test form :—सामूहिक बुद्धि परख के अन्य दो रूप होते हैं। प्रथम Omnibus from जिसमें परीक्षार्थी एक निश्चित् समय में सम्पूर्ण परख हल करता है, और द्वितीय Sub-test form है जिसमें सम्पूर्ण परख छोटे-छोटे भागों में विभाजित रहती है और प्रत्येक भाग के लिये समय निश्चित होता है तथा प्रश्न क्रम सरल से कठिन रूप में होते हैं। इसमें प्रत्येक भाग में एक ही प्रकार के प्रश्न होते हैं, जैसे एक भाग मेंanalogies, दूसरे में तर्क संगत इत्यादि। इन दोनों प्रकार के परखों में कुछ गुण और दोष होते हैं। omnibus परख में बालक के सम्पूर्ण परख हल करने में किसी प्रकार का हस्तपेक्ष नहीं किया जाता जब कि subtest रूप परख के प्रत्येक भाग के पश्चात् उसके नये भाग हल करने के आरम्भ में हस्तक्षेप किया जाता है। प्रत्येक subtest रूप के भागों के लिये करीब ५ मिनट का ही समय उपयुक्त समझा जाता है। यह भी देखा गया है कि omnibus रूप परख में बालक को सम्पूर्ण परख हल करने में थकान होने लगती है जिसके फलस्वरूप उसके परख अङ्कों पर प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त subtest रूप परखों में बालक को कोई थकान नहीं होती है जिसके कारण यह उसकी वास्तविक बुद्धि सीमा का मापन करता है।

शक्ति और गति परख (Power and speed test)—एक सामूहिक शक्ति परख वह है जिसमें प्रश्न सरल से कठिन रूप में क्रमित होते हैं और उसे हल करने के समय की कोई निश्चित सीमा नहीं होती है। परन्तु एक गति परख में प्रश्नों की कठिनाई एक निश्चित क्रम में होती है और उसका समय भी निश्चित होता है।

वास्तविक प्रयोग में इन दोनों का मिश्रण माध्यमिक शिक्षा हेतु विद्यार्थियों के छांटने में काम में लाया जाता है। इस प्रकार के परख में प्रश्न सरल से कठिन क्रम में होते हैं तथा परख हल करने की एक निश्चित सीमा भी होती है। यहाँ पर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि एक अच्छा विद्यार्थी जोकि कार्य धीरे-धीरे करता है उसके लिये परख का समय निश्चित करना

अन्याय तो न होगा। परन्तु भिन्न-भिन्न परिणामों द्वारा यह स्पष्ट है कि ११+ का बालक जोकि योग्य है उसकी गति भी और अयोग्य बालकों से तीव्र होती है। इसके अतिरिक्त सामूहिक परखों में समय इतना कम नहीं रखा जाता कि गति के कारण परख हल करने में किसी के लिए अन्याय हो जावे। हो सकता है कि केवल अति गतिमन्द विद्यार्थी इस प्रकार की परख सामान्य रूप से हल न कर सकें परन्तु इसका कारण परख की समय सीमा नहीं बल्कि विद्यार्थी की अयोग्यता ही हो सकती है। परन्तु परख की निश्चित समय सीमा होना अनिवार्य है क्योंकि माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ने वाले बालक तथा किसी व्यवसाय में जाने वाले व्यक्ति की कार्य कुशलता तीव्र भी होनी चाहिये।

इस बात का भी परिणाम मिलता है कि साधारण गामक तथा यांत्रिक क्रियाओं में गति की बड़ी आवश्यकता है। और इस प्रतिकारक का ज्ञान तब होता है जबकि प्रौढ़ व्यक्तियों की परीक्षा ली जाती है। परन्तु मानसिक योग्यताओं में 'गति' नाम का कोई ऐसा प्रतिकारक (factor) नहीं प्राप्त हुआ है जो कि एक भिन्न प्रतिकारक हो। इस समस्या पर स्वेडन देश में कार्य हो रहा है जिसके लिये वहाँ के निवासी स्वेडन के उत्तरी भाग के ग्रामवासियों के लिये एक परख तैयार करना चाहते हैं। लोगों की धारणा यह है कि 'गति' एक सांस्कृतिक प्रतिकारक (Cultural factor) है जिसका सम्बन्ध ग्राम तथा शहर के निवासियों के भिन्न-भिन्न कार्यों से है, तथा प्रत्येक व्यक्ति के कार्य करने की गति उसके कार्य की प्रकृति से सम्बन्धित होती है। इसी कारण ग्राम वासी की कार्य करने की 'गति' शहर वाले की अपेक्षा मन्द होती है।

सामूहिक परख का प्रयोग ८ वर्ष से ऊँची आयु के सामान्य बालकों के लिये आसानी से किया जा सकता है। इससे निम्न आयु के बच्चों के लिये छपे हुये आदेश समझने कठिन होते हैं। परन्तु यह कठिनाई दूर करने के लिये Moray House Picture test तथा Cornwell test के मौखिक परख के समान ही मौखिक आदेश दिये जा सकते हैं। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि 'शाब्दिक परखों' में आदेशों के ही कारण बालकों को परख हल करने में रुकावट होती है, और यदि इन आदेशों को बालकों के सम्मुख पढ़ दिया जाता है तो वे इस प्रकार की शाब्दिक परख हल करने में काफी मात्रा में सफल होते हैं।

सामूहिक परख को बच्चों को तब तक नहीं दिया जाता है जब तक कि वे कक्षा के वातावरण से पूर्ण रूप से परिचित न हो गये हों, जिससे कि किसी बाह्य कारण से उन्हें लिखित कार्य करने में किसी प्रकार की कठिनाई न

मालूम हो। प्रमापीकृत सामूहिक परखों का यह गुण है कि उसमें अनावश्यक प्रश्नों को निकाल दिया जाता है जिससे कि विद्यार्थियों के उत्तरों को सही तथा शीघ्रता से जांचा जा सके। इसके अतिरिक्त सभी परीक्षार्थियों के लिये समान वातावरण रहता है। यह हो सकता है कि प्रत्येक बालक के लिये वातावरण अनुकूल न हो परन्तु यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि प्रत्येक व्यक्तिगत विद्यार्थी यह अनुभव करे कि वह आराम में है जिससे कि परख अङ्क विद्यार्थी की बुद्धि का माप करे और उनमें उसकी संवेग की झलक न हो।

बुद्धि मापन की सामूहिक परखें, शाब्दिक, चित्र सम्बन्धी, प्रतीक-अंक (symbolic) तथा स्थान सम्बन्धित होती हैं। शाब्दिक परखों के प्रश्नों में शब्दों तथा संख्याओं का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ—

(अ) निम्न वाक्य की पूर्ति दांयी ओर लिखे शब्दों में से एक शब्द द्वारा करो।

जैसे सेव फल के लिये हैं वैसे ही मोटर.........के लिये है (ट्राम, बैल-गाड़ी, गाड़ी, टैक्सी)

(ब) निम्न की पूर्ति करो—

२ ६ २८ ५७ ( )

साधारण कार्यों तथा grammar स्कूल हेतु विद्यार्थियों को छाँटने में शाब्दिक परखों का प्रयोग किया जाता है। शब्दों के द्वारा ज्ञान में वृद्धि तथा समाज में विचार विनिमय होता है इसलिये शाब्दिक योग्यता का मापन करना महत्वपूर्ण है। परन्तु ऐसी परिस्थितियाँ भी होती हैं जिनमें इनका उपयोग कम होता है। जैसे उस बालक की परीक्षा के लिए जिसकी शिक्षा तथा विकास सामान्य रूप में नहीं हुआ शाब्दिक परख का महत्व कम है। पाठकों को यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि बुद्धि के शाब्दिक परख में उन शब्दों, तथा संख्याओं का प्रयोग किया जाता है जो विद्यार्थी ने सीख लिये हों। शाब्दिक परखों के प्रयोग में यह बात ध्यान देने की है कि जिस बालक की परख ली जाय उसकी सामान्य नींव तथा शिक्षा ठीक हो। यदि इस बात का ध्यान न रखा जायगा तो परख से वास्तविक बुद्धि का मापन न हो सकेगा। शाब्दिक परखों की विश्वसनीयता काफी उच्च कोटि की होती है।

छोटे बालक तथा भाषा न जानने वाले लोगों के लिये चित्र सम्बन्धी सामूहिक परखों का प्रयोग किया जा सकता है। उसके द्वारा शाब्दिक विचारों का अनुभव होता है जिसमें पढ़ने की योग्यता की आवश्यकता नहीं होती है।

इनकी मुख्य रूप में उपयोगिता ७ से १० वर्ष के बीच के बालकों के लिये होती है।

सामूहिक अशाब्दिक परखों में रेखा चित्रों के नमूने तथा भिन्न रूप के चित्रों का प्रयोग किया जाता है।

कुछ अशाब्दिक परखें केवल सामान्य बुद्धि 'g' को मापने तथा कुछ सामान्य और स्थान सम्बन्धी प्रतिकारक 'g+k' को मापने का कार्य करती हैं। अशाब्दिक परख, शाब्दिक परख की अपेक्षा, सामान्य बुद्धि 'g' का मापन कम कर पाती है।

अशाब्दिक परखों का प्रयोग उन अवस्थाओं में किया जाता है जब हम ऐसी बुद्धि का मापन करना चाहते हैं जिसमें शाब्दिक प्रभाव न हो या हमको यह ज्ञात हो कि परीक्षार्थी ने परख हेतु आवश्यक शिक्षा ग्रहण नहीं की है या विद्यार्थी में पाठन की क्षमता नहीं है। इनका प्रयोग उन अवस्थाओं में भी किया जाता है जबकि वाचन की योग्यता की तुलना विद्यार्थी के मानसिक स्तर से की जाय। बड़े विद्यार्थियों तथा प्रौढ़ लोगों के लिये चित्र सम्बन्धी परख से अशाब्दिक परख का प्रयोग अच्छा समझा जाता है क्योंकि इसको आवश्यकतानुसार जटिल बनाया जा सकता है।

(२) **व्यक्तिगत परखें** :—सामूहिक परख का अंकन वैषयिक होता है परन्तु इनकी सहायता से बालकों के संवेगात्मक अन्तरों का जानना कठिन होता है। इन अन्तरों के कारण परख अङ्कों में भिन्नता हो सकती है। व्यक्तिगत परखों में समय अधिक लगता है परन्तु इसके द्वारा परीक्षक को बालक की जानकारी अधिक होती है और उसके संवेगों का ज्ञान भी हो जाता है जिससे कि उसके साथ परीक्षक का व्यवहार भी उसी ढंग का हो सकता है जैसी कि उसकी आवश्यकता है। इसलिये व्यक्तिगत परखों का प्रयोग उन सभी परिस्थियों पर किया जा सकता है जहाँ कहीं सामूहिक परखों से जानकारी प्राप्त न हो सके। और मुख्यतम उनका प्रयोग निम्न सीमा पर के (borderline) तथा असाधारण बालकों के लिये लाभप्रद होता है। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत परख छोटे बच्चों के लिये भी लाभप्रद होती हैं क्योंकि न तो वह स्वयं पढ़ सकते हैं और न वे कक्षा के वातावरण में अपने आप को नियमित रूप से रख सकते हैं। इस तरह की परख में परीक्षक उन तत्वों को दूर कर सकता है जिनकी बुद्धि परख में आवश्यकता नहीं है।

बिने की परख की टरमेन-मैरिल द्वारा सही की हुई परख अधिकतर बालकों के सामान्य बुद्धि की परख करने में प्रयोग में लाई जाती है। इसके दो सामानान्तर भाग 'L' और 'M' हैं जिनमें स्मृति सम्बन्धी प्रश्न—जैसे कि

संख्याओं की स्मृति, वाक्यों की स्मृति, तर्क सम्बन्धी प्रश्न, शब्दों की परख हेतु प्रश्न, इत्यादि हैं।

प्राथमिक स्तर के लिये परख—सामूहिक परख जिस छोटे स्तर पर प्रयोग की जा सकती है वह किंडरगार्टन अथवा प्रथम कक्षा है। प्राथमिक स्तर के उपयुक्त सामूहिक परखों में किंडरगार्टन और दूसरी अथवा तीसरी कक्षा को भी सम्मिलित कर लिया गया है। इस स्तर पर कोई ऐसी परख प्रयुक्त नहीं हो सकती जिसमें बच्चों को लिखना या पढ़ना आवश्यक हो। इस कारण कभी-कभी इनको अशाब्दिक परख कहा जाता है। परन्तु अशाब्दिक परखें व भाषा-रहित परखों में भेद होता है। भाषारहित परखों में भाषा की बिलकुल आवश्यकता नहीं होती और वह निरक्षर, विदेशी भाषा-भाषी और बहरे व्यक्तियों के लिये उपयुक्त होती है।

विशेष बच्चों की परख के लिये प्राथमिक स्तर पर भी भाषा-रहित परखों का विकास किया गया है; परन्तु वास्तविक प्राथमिक स्तर की सामूहिक परख में मौखिक भाषा का पर्याप्त प्रयोग किया जाता है। प्राथमिक स्तर की सुविख्यात सामूहिक-परख 'पिन्टनर-कनिङ्घम' परख है जो लगभग २० वर्षों से प्रयोग में आ रही है। एक अन्य इस प्रकार की परख 'ओटिस एलफा' है। यह परख दो समान रूपों 'अ' और 'ब' में प्राप्य है। प्रत्येक परख में एक अशाब्दिक एवं एक शाब्दिक परख सम्मिलित है। एक कुशल योजना के द्वारा वही परख वस्तुएँ दोनों प्रकार की परखों में प्रयुक्त की जा सकती हैं। दोनों परखों को या तो पृथक-पृथक दिया जा सकता है अथवा दोनों को मिलाकर एक साथ ही परख-फल निकाला जा सकता है।

अशाब्दिक परखों में बालक को कहा जाता है कि कुछ दिये गये चित्रों में से उस चित्र को हटाये जो उस वर्ग से सम्बन्धित नहीं है। इन प्रश्नों का एक बड़ा दोष यह है कि कभी-कभी शुद्ध उत्तरों के विषय में भ्रांति हो सकती है। परख के निमित्त ऐसी सामग्री प्रस्तुत करना किंचित कठिन होता है, जिसमें केवल एक ही निश्चित उत्तर दिया जा सकता हो।

प्राथमिक विद्यालय के लिये परखें :—

यह परखें श्रेणी ४ से लेकर ८ वीं श्रेणी तक के प्रयोग के लिये निर्धारित की गई हैं। चूँकि इस स्तर के बालकों की साक्षरता निश्चित होती है अतः ये परखें प्रधानतः शाब्दिक होती हैं। इनमें से अनेक परखों में गणितिक और अन्य संख्या सम्बन्धी प्रश्न रखे जाते हैं। विद्यालय के बालकों के लिये सर्व प्रथम सामूहिक-परख राष्ट्रीय-बुद्धि परख थी। यह परख प्रथम महायुद्ध के अन्त में राष्ट्रीय अनुसन्धान परिषद् के तत्वावधान में कुछ मनोविज्ञान-शास्त्रियों द्वारा

तैयार की गई थी। ४ से ६ तक की श्रेणी के बालकों के लिये ओटिस बीटा (Otis Beta) परख भी बनाई गई थी। यह परख मुख्यतः शाब्दिक है। ओटिस बीटा परख पूर्वकालीन मानसिक योग्यता के लिये Otis Self-Administering Test का संशोधन मात्र है। परख के समस्त निर्देश परख-पुस्तिकाओं पर मुद्रित होते हैं और प्रत्येक प्रकार के आदर्श-प्रश्न भी रखे जाते हैं। समय-व्यवस्था भी सम्पूर्ण परखों के लिये एक सी होती है।

उच्च विद्यालय के विद्यार्थियों और सामान्य प्रौढ़ व्यक्तियों के लिये परख :—

उच्च विद्यालय के विद्यार्थियों के लिये प्राप्य-परखों में पिन्टनर-ओटिस परख का प्रमुख स्थान है। पिन्टनर (Pintner) कृत परख नवीं और उससे उच्चतर श्रेणियों के बालकों के लिये है। ओटिस-गामा (Otis Gamma) परख ओटिस शीघ्र-फ़ल मानसिक योग्यता परखों (The Otis Quick Scoring Mental Ability Tests) के उच्च-स्तर का ही प्रतिरूप है। यह परख ओटिस बीटा परख के आदर्श पर निर्मित है; अन्तर केवल इतना है कि प्रश्न ओटिस-बीटा परख के प्रश्नों के समान होते हुये भी उनसे अधिक दुरूह और जटिल होते हैं।

कालेज के विद्यार्थियों और उच्च अवस्था के प्रौढ़ों के निमित्त परखें:—

कॉलिज के विद्यार्थियों के लिये सबसे अधिक व्यापक मनोवैज्ञानिक परखें 'शिक्षा-अभिरुचि' परखें (Scholastic Aptitude Tests) हैं जिसका निर्माण कॉलिज-प्रवेश परख-बोर्ड (College Entrance Examination Board) और कॉलिज के नये लोगों के हेतु शिक्षा मनोविज्ञान परख सम्बन्धी अमेरिकन परिषद (The American Council on Education Psychological Examination for College Freshmen) जिसको ए०सी०ई० (A.C.E.) के नाम से भी पुकारा जाता है, द्वारा किया गया था। प्रथम परख जिसमें भाषा सम्बन्धी और गणित सम्बन्धी प्रश्न होते हैं, केवल वार्षिक ही होती है जो कॉलिज परख बोर्ड द्वारा व्यवस्थित की जाती है। दूसरी प्रकार की परख अर्थात ए०सी०ई० परख का प्रयोग प्रथम तो कॉलिज में प्रवेश पाने वाले विद्यार्थियों के लिये किया जाता है तत्पश्चात् सामान्यतः अन्य परख अवसरों पर भी प्रयुक्त की जा सकती है।

इंगलैण्ड में सामूहिक शाब्दिक परख

(Verbal Group Tests In England)

उपर्युक्त परख-पद्धति का इङ्गलेंड में प्रादुर्भाव सन् १६२० के पश्चात् हुआ। प्रोफेसर गौडफ्रे एच० टामसन (Godfrey H. Thomson) ने अनेक

सुपरिनिष्ठित बुद्धि-परखों (Standardized Intelligence Tests) का निर्माण किया। प्रथम परख मोरे-हाउस (Moray-House) परख के नाम से विख्यात हुई। वर्ट ने भी नौर्थम्बरलैन्ड-परखों के नाम से कुछ परखें निर्मित कीं। इन परीक्षाओं को उपर्युक्त नाम इसलिये दिया गया क्योंकि इन्हें सर्व प्रथम नार्थम्बरलैण्ड में बनाया गया। स्पियरमैन ने ऐसे परख-प्रश्नों की व्यवस्था की जिससे 'g' योग्यता का पर्याप्त परीक्षण किया जा सके। बैलार्ड (Ballard) ने चैलसी-परखों के नाम से कुछ परखें व्यवस्थित कीं जो इङ्गलैण्ड में व्यापक रूप से प्रयोग में लाई गईं। हाल ही में डॉ॰ कैटल (Cattle) ने कुछ महत्वपूर्ण सामूहिक-परखें व्यवस्थित की हैं। 'नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑव इन्डस्ट्रियल साइकोलोजी' (National Institute of Industrial Psychology, London) ने चार्ल्समेयर्स के पथ प्रदर्शन में कुछ महत्वपूर्ण शाब्दिक (Verbal) और अशाब्दिक (Nonverbal) सामूहिक परखें निर्मित की थीं।

भाषा-विहीन सामूहिक परखें और कार्यात्मक-बुद्धि परखें

भाषा विकास की कमी होने के कारण यह देखा जाता है कि बहरे लोगों के लिये शाब्दिक परखें अनुपयुक्त होती हैं उसी प्रकार जिन बच्चों की वाणी-शक्ति दोषमय है अथवा जिनमें किन्हीं कारणों से वाणी-शक्ति का पूर्णरूपेण विकास नहीं हो पाया है, वे स्टेन फोर्ड-बिने परख-पद्धति के उपयुक्त नहीं हैं क्योंकि इन परखों में वाणी द्वारा उत्तर देना पड़ता है। शिक्षा की दृष्टि से ऐसा बच्चा इतना पिछड़ा हुआ होता है कि वह लिखित परख में बैठने योग्य नहीं होता। निरक्षर व्यक्ति भी इस परख के लिये सर्वथा अयोग्य है। जिन बालकों के अन्दर पठन अयोग्यता है, वे भी इस परख के देने में असमर्थ होते हैं। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति विदेशी भाषा ही जानते हैं वे भी इन परीक्षाओं के लिये अयोग्य समझे जाते चाहिये।

उपर्युक्त कठिनाइयों के निवारणार्थ ही भाषा-विहीन और कार्यात्मक परखों (non-language and performance tests) का विकास किया गया है। इन परखों के अस्तित्व का अन्य उद्देश्य सामान्य बुद्धि-परखों के कुछ अभावों की पूर्ति करना है। कुछ कारणों से कुछ व्यक्ति शाब्दिक-परखों में अच्छा परिणाम नहीं दिखला पाते। जो बच्चे लजालु और अबाचाल होते हैं अथवा जो विद्यालय में असफलताओं के कारण हतोत्साह हो गये हैं वे कार्यात्मक परखों में सन्तोषजनक परिणाम उपस्थित कर सकने में समर्थ हो सकते हैं यद्यपि उनका ज्ञान नितान्त अल्प और खोखला है और उनकी व्यवहारिक योग्यता भी अपूर्ण है।

यह सर्वमान्य है कि भाषाविहीन और कार्यात्मक परखें शाब्दिक परखों की जगह पर प्रयोग की जाने के लिये ही नहीं बनाई गईं। उनका भी एक विशेष और सुनिश्चित उद्देश्य है।

भाषा विहीन सामूहिक परखें

प्रथम भाषा-विहीन सामूहिक परख 'आर्मी बीटा' परख थी जिसे प्रथम महायुद्ध के समय संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में निरक्षर अथवा विदेशी भाषा-भाषी सैनिकों की परख लेने के लिये विकसित किया गया। 'बीटा' परख उन सैनिकों को दी गई थी जो 'एल्फा परख' में सर्वथा अनुत्तीर्ण रहे थे। इन व्यक्तियों में निरक्षर और विदेशी भाषा-भाषी सैनिक ही नहीं थे वरन् वह व्यक्ति भी थे जिन्होंने कुछ कारणों से एल्फा-परख में हीन परिणाम उपस्थित किये थे।

'आर्मी-बीटा' परखों में निर्देश, संकेतों, मूकनाटक और श्यामपट पर अंकित चार्टों के द्वारा दिये जाते थे। परीक्षकों को बीटा-परख में एल्फा-परख की अपेक्षा अधिक कठिनाइयाँ महसूस होती थीं। बीटा-परख का निर्माण यथा सम्भव एल्फा-परख के आदर्श पर किया जाता है क्योंकि बीटा परख एल्फा-परख के स्थान को ग्रहण करने के लिये बनाई गयी थी।

आर्मी-बीटा परख में उसे असैनिकों (civilians) के उपयुक्त बनाने के हेतु अनेक संशोधन किये गये। उसका संशोधित रूप १९४६ में 'मनोविज्ञान कौर-पोरेशन' द्वारा प्रकाशित किया गया जिसके अनुसार संशोधित बीटा-परख का पुनर्परिनिष्ठीकरण हुआ है। इस परख के छः स्वरूप हैं—(१) अन्धे रास्ते (mazes) (२) प्रतीक-अंक प्रतिस्थानीकरण (Symbol substitution), (३) सामान्य वस्तुओं और विभिन्न कार्यों में संलग्न व्यक्तियों के चित्रों की त्रुटियों को बतलाना; (४) स्थान सम्बन्ध (Spatial relations); (५) चित्र-पूर्ति (picture completion); (६) वस्तुओं और संस्थाओं के जोड़ों में असमानता ज्ञात करना। एक अन्य सुविख्यात भाषा विहीन परख जो प्राथमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के लिये उपयुक्त है, पिन्टनर भाषा-विहीन परख (Pintner non-language test) है। इसका निर्माण बहरे बच्चों की परख के निमित्त किया गया था। शिकागो भाषा-विहीन परख भी उपर्युक्त परख का एक अन्य भेद है। यद्यपि यह परख इतनी प्रसिद्ध नहीं है जितनी आर्मीबीटा अथवा पिन्टनर परख; तो भी इसकी एक विशेषता और महत्व यह है कि विषयों की विभिन्नता और अनेकता इस परख द्वारा प्रदानित होती है।

कार्यात्मक बुद्धि-परखें (Performance Intelligence Tests)—इस परख के लिये परीक्षार्थी के लिये यह आवश्यक नहीं होता कि वह किसी भाषा के पढ़ने एवं लिखने की योग्यता रखता हो। इन परखों में परीक्षार्थी को दिये गये

वस्तुओं और उपकरणों की सहायता से कुछ डिजाइन या चित्र आदि बनाने होते हैं अथवा ठोस पदार्थों के रूप में कुछ समस्यायें हल करनी होती हैं। सबसे पुरानी कार्यात्मक परख (Form Board) सैग्युन (Seugin) द्वारा दुर्बल मस्तिष्क के व्यक्तियों के हेतु निर्मित की गई थी। प्रारम्भ में इस परख को क्षीण मानसिक-शक्ति के व्यक्तियों की ज्ञानात्मक-शक्तियों (Sensory) के प्रशिक्षण के निमित्त सैग्युन ने बनाया था। कालान्तर में इसको अन्य कार्यात्मक परखों का एक अंग बना दिया गया। इस परख-पद्धति के अनुसार विद्यार्थी को विभिन्न आकृति के लकड़ी के टुकड़े दिये जाते हैं फिर उससे एक पटल (board) के विभिन्न छिद्रों में उन टुकड़ों को आकृति के अनुसार बैठाने को कहा जाता है। परख-परिणाम का आधार परीक्षार्थी द्वारा लिया गया समय और प्रयोगित कार्य-पद्धति होता है। एक आकृति के टुकड़े को भिन्न आकृति के छिद्र में बैठाने के प्रयास को एक भूल माना जाता है।

एक अन्य प्रकार की कार्यात्मक परख को पोर्टस (Porteus) ने सन् १९२४ में व्यवस्थित की और उसका नाम पोर्टस-मेज परख (Porteus Maze Test) रखा। पहले प्रदर्शन के रूप में सरल अन्ध-गली (Mazes) को प्रयोग किया जाता है। परीक्षार्थियों को यह मेज (Maze) बिना किसी निर्देशन के दी जाती हैं। यह परख ३ वर्ष के बच्चे से लेकर प्रौढ़ व्यक्तियों के लिये है। इस परख पद्धति के अनुसार परीक्षार्थी को पेन्सिल की सहायता से मेज के प्रवेश-द्वार से इसके बाहर निकालने के द्वार तक बिना पेन्सिल उठाये रास्ता खींचना पड़ता है। इसके लिये समय का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। अगर परीक्षार्थी किसी रेखा को काटकर अथवा गलत रास्ते में घुसने से कोई भूल करता है तो परीक्षक उसे वहीं रोक देता है और अन्य मेज पर कार्य करने को कहता है। अगर परीक्षार्थी अपने द्वितीय प्रयास में विफल रहता है तो उसे उस स्तर पर असफल घोषित कर दिया जाता है।

एक अन्य प्रकार की कार्यात्मक-परख "मनुष्याकृति को खींचने" की परख होती है। इसके अनुसार परीक्षार्थी से पेन्सिल से किसी मनुष्य का चित्र कागज पर खींचने के लिये आदेश दिया जाता है। परख-परिणाम का आधार मनुष्य के विभिन्न अंगों जैसे आँख, नाक, कान इत्यादि के शुद्ध अथवा अशुद्ध खींचने अथवा उन अंगों के आकार के पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने की योग्यता होती है। चित्र के कलात्मक पक्ष का कोई विचार नहीं रखा जाता। परीक्षार्थियों की मानसिक आयु और बुद्धि-लब्धि ज्ञात करने के लिये सामान्य स्तर (norms) की तालिका का प्रयोग किया जाता है।

अलक्जैण्डर द्वारा कार्यात्मक-परखों का समूह-करण

डाक्टर अलक्जैण्डर ने तीन कार्यात्मक परखों को—कोह्स की ब्लाक डिजायन परख, घन-निर्माण परख तथा Pass Along Test को परस्पर सम्मिलित करने का सुझाव रखा था।

(अ) कोहस (Kohs) की ब्लाक डिजायन परख :—यह परख एक सुविख्यात कार्यात्मक परख है। यह मुख्यतः परीक्षार्थी की विश्लेषणात्मक तथा संश्लेषणात्मक योग्यता की परख है और इसके द्वारा हमें उसकी सामान्य योग्यता (g) तथा 'k' (Spatial) का भी पर्याप्त बोध हो जाता है। परख सामग्री में १६ रंगीन इंच घन और १० डिजायन (पहिले कोहस की पद्धति के अनुसार इसकी संख्या १६ थी) होते हैं जो दफ्ती के पटल पर लम्बाई में एक ही रंग में खिंचे हुये होते हैं। परीक्षार्थी से इन घनों को इस प्रकार रखने को कहा जाता है कि वे खिंचे हुये डिजायन के अनुरूप डिजायन उपस्थित करें। इसमें निश्चित समय-अवधि होती है। इस परख में अधिक से अधिक स्कोर संख्या २५ हो सकती है।

(ब) घन-निर्माण (cube construction) **परख**—इस परख में तीन चीजें होती हैं। (१) परख सामग्री में एक ३″ × १″ × १″ वाले आकार की लकड़ी का माडल ब्लाक जिसकी दीवारें लाल रंग से पुती हों, परन्तु शीर्ष और तल बिना रंग के हों, एवं ९ एक इंच घन (One inch cube) जिनको इस प्रकार रंगा होता है कि उनसे कि दिये हुए माडल के अनुरूप आकृति बन जावे।

(२) दूसरी परख में उपर्युक्त लकड़ी का ब्लाक शीर्ष और चारों तरफ रंगा होता है, परन्तु तल रंगहीन होता है। फिर उपर्युक्त ९ इंच घनों को इस प्रकार रंगा जाता है कि उनसे माडल के अनुरूप आकृति बन जावे।

(३) तीसरे प्रकार की घन-निर्माण परख के लिये आवश्यक सामग्री यह है; १ दो इंच का घन जो रंग सहित हो एवं ८ एक इन्च घन जिनकी तीन तरफें लाल रंगी हुई हों। परीक्षार्थी को इन घनों की सहायता से बड़ा माडल ब्लाक (model block) बनाने को कहा जाता है। अङ्क परीक्षार्थी द्वारा लिये गये परीक्षा-समय के आधार पर प्रदान किये जाते हैं।

(स) अलैक्जेण्डर का Pass Along Test :—यह एक अन्य सुप्रसिद्ध कार्यात्मक बुद्धि-परख है। इस परख में बालक को कुछ लाल और नीले रंग के लकड़ी के टुकड़ों को जो क्रम में रखे गये हैं, बिना उठाये लकड़ी के एक ढाँचे में खिसकाने की एक क्रिया द्वारा, निश्चित अवधि के अन्दर एक दिये गये डिजायन के प्रतिरूप में रखने को कहा जाता है। सम्पूर्ण परख में दुरूहता के

क्रम से ८ डिजायनों की श्रेणी होती है इसमें अधिक से अधिक स्कोर २० होता है। इस परख द्वारा व्यक्ति की व्यावहारिक योग्यता की माप हो जाती है।

वैक्शलर परखें

(Wechesler Tests)

बुद्धि-परखों के क्षेत्र में प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डेविड वैक्शलर का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। सन् १६३६ में उसने प्रौढ़ व्यक्तियों के बुद्धि-परख परिणामों को प्रकाशित किया। उसने प्रौढ़ व्यक्तियों की बुद्धि-परख सम्बन्धी कुछ कठिनाइयों का उल्लेख किया। कठिनाई यह है कि उनके लिये बुद्धि-परखें भली प्रकार प्रमापीकृत (standardized) नहीं हो पाती।

वैक्शलर ने ७ वर्ष से लेकर १६ वर्ष की आयु के ६७० बालकों के लिये और १७ वर्ष से लेकर ७० वर्ष तक के १०८१ व्यक्तियों के लिये बुद्धि-परखों को प्रमापीकृत किया। इसके अतिरिक्त नमूने के लिये उसने अन्य व्यक्तियों को भी परीक्षित किया अतएव एक विस्तृत प्रारम्भिक कार्य के पश्चात् उसने निम्नलिखित परखों को प्रमापीकृत करने के निमित्त चुना :—

(१) ज्ञानात्मक परख (Information Test)

(२) समझने की शक्ति परख (A General Comprehension Test)

(३) गिनती संख्या को आगे पीछे स्मरण करने की शक्ति (A combined memory span for digits backward and forward)

(४) समानताओं के बोध की परख (Similarities Test)

(५) गणितिक तर्क-शक्ति परख (Arithmetical Reasoning Test)

(६) चित्र को नियमित ढङ्ग से रखने की परख (Picture Arrangement Test)

(७) चित्र-पूर्ति परख (Picture Completion Test)

(८) ब्लाक डिजायन परख (Block Designs Test)

(९) वस्तु संयोजन परख (Object Assembly Test)

(१०) अङ्क-चिन्ह परख (Digit Symbol Test)

भारत में बुद्धि-परख प्रयोग करने का प्रथम प्रयास लाहौर के डा० सी० एच० राइस (Dr. C.H. Rice) ने किया था। उन्होंने सन् १९२१ ई० में "हिन्दुस्तानी बिने कार्यात्मक परख' (Hindustani Binet Performance Point Scale) प्रकाशित किया। यह परखें बिने परख-पद्धति पर आधारित थीं

और साथ-साथ कुछअन्य कार्यात्मक परखें भी बनाई। परख में अङ्क प्रदान करने के पश्चात प्रत्येक विद्यार्थी के प्राप्ताङ्कों को मानसिक आयु में परिवर्तित किया जा सकता है। परीक्षा के लिये सामान्यस्तर (Norms) पंजाब के ५ से १६ वर्ष के १०७० बालकों को परीक्षित करके तैयार किये गये हैं। आरम्भ में यह परखें केवल पंजाब के लिये ही थीं; तत्पश्चात् इनको हिन्दुस्तानी प्रधान प्रदेशों में प्रयोग किया जाने लगा। परन्तु इन परखों में संशोधन करना आवश्यक है।

इनमें जिन बच्चों की परख ली वे सब ५ वर्ष से ऊपर की अवस्था के थे और इस आयु से नीचे की आयु वाले बच्चों को जो मनोवैज्ञानिक दृष्टि कोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं बिल्कुल छोड़ दिया गया था। साथ ही किसी लड़की का परीक्षण नहीं किया गया था।

हिन्दुस्तानी-बिने परख से प्राप्त बुद्धि लब्धि की स्टेन फोर्ड-बिने परख से प्राप्त बुद्धि-लब्धियों की कोई तुलना नहीं की जा सकती। राइस की पुस्तक से ली गई नीचे की तालिका को देख कर इस बात का सुगमता-पूर्वक ज्ञान किया जा सकता है कि हिन्दुस्तानी बुद्धि-लब्धियाँ उच्चतर हैं। अतः 'बुद्धि-लब्धि' शब्द का प्रयोग सावधानी पूर्वक किया जाना चाहिये। भारतीय परख द्वारा १३० बुद्धि-लब्धि अमेरिका अथवा अन्य देशों की परख द्वारा १३० बुद्धि-लब्धि एक समान नही समझी जा सकती।

P. C. (प्रतिशत) of Cases	वर्गीकरण	स्टेनफोर्ड बुद्धि-लब्धि	हिन्दुस्तानी बुद्धि-लब्धि
सबसे उच्च ५%	प्रतिभाशाली (genius)	१४० और उससे ऊपर	१६५ और उससे ऊपर
तत्पश्चात् ५%	अत्यन्त उच्चबुद्धि	१२०—१४०	१४०—१६५
,, १५%	उच्च बुद्धि	११०—१ ०	१२०—१४०
मध्य ६०%	औसत बुद्धि	९०—११०	८५—१२०
तत्पश्चात् १५%	मन्द बुद्धि	८०— ९०	७०— ८५
,, ५%	सीमा पर	७०— ८०	५५— ७०
सबसे न्यून १%	दुर्बल बुद्धि का	७० से नीचे	५५ से नीचे

सन् १९२७ में डा० जे० मोरे (J. Maury) ने जो इविंग क्रिश्चियन कालेज इलाहाबाद में थे, भारतीय वातावरणानुकूल कुछ शाब्दिक समूह परखें (Verbal Group Tests) प्रकाशित किये। इनको प्रारम्भिक वर्गीकरण

परख (Preliminary Classification Tests) के नाम से पुकारा गया। इनका प्रकाशन उर्दू, हिन्दी और आंग्ल भाषा में किया गया था।

कुछ परीक्षा और परख सामग्री भारतीय बालकों के लिये सर्वथा अनुपयुक्त थी; अतः भारतीय वातावरण और परिस्थितियों के अनुकूल इन परखों में परिवर्तन किया गया। अमेरिकन सिक्कों के स्थान पर परिचित भारतीय सिक्के प्रयोग में लाये गये और चित्रअध्ययन परख (picture description) में पाश्चात्य जीवन दिग्दर्शन कराने वाले चित्रों के स्थान पर भारतीय जीवन सम्बन्धी चित्रों का प्रयोग किया जाने लगा। इसी प्रकार अन्य परिवर्तन भी किये गये।

भारतवर्ष में दो वर्ष से २० वर्ष तक के १०७४ बालक और बालिकाओं की परख ली गई। परख से प्रकट हुये तथ्यों के ऊपर प्रकाश पहले ही डाला जा चुका है। फिर भी कुछ महत्त्वपूर्ण बातों का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है।

(१) बालक के पैत्रिक व्यावसायिक अवस्था का उसकी बुद्धि से कुछ सीमा तक सम्बन्ध अवश्य रहता है।

(२) बालक और बालिकाओं के बुद्धि अन्तर के विषय में यह कहा जा सकता है कि आरम्भ में दोनों की बुद्धि साधारणतः समान होती है; परन्तु आयु वृद्धि के साथ-साथ उनकी बुद्धि में भी अन्तर बढ़ता जाता है। ११ वर्ष की आयु स्तर तक बालिकाओं की बुद्धि में औसतन मन्दगति से विकास होता है तदन्तर १३ वर्ष की आयु तक यह विकास औसतन तीव्रगति से होता है और समवयस्क बालकों की बुद्धि के बराबर उनका बुद्धि स्तर हो जाता है। परन्तु इसके पश्चात् उनका बुद्धि-विकास औसतन क्रमशः पुनः मन्द हो जाता है।

(३) मानसिक अभाव वाले बच्चों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया गया। डा० कामट के परख परिणामों का कुछ अंश नीचे दिया जाता है।

उदाहरणार्थ, एक बच्चे से जब कोई प्रश्न पूछा गया तो उसके उत्तर में उसने अपने कस्बे का, अथवा माँ या बाप का नाम कहा। यह उस समय भी हुआ जबकि उसका ध्यान प्रश्न की ओर पूर्णरूपेण आकृष्ट नहीं किया जा सका। दूसरे, बालक से जब कोई प्रश्न पूछा गया तो उत्तर में उसने अपने जीवन की कोई महत्वपूर्ण घटना वर्णन की (यथा अपने माँ-बाप द्वारा किसी अवसर पर पीटा जाना, अथवा आग दुर्घटना में जल जाना आदि)। एक अन्य बालक प्रश्नों के उत्तर में केवल 'ऊँचे-ऊँचे और ऊँचे चढ़ो' कहता था। पता

चलाने पर ज्ञात हुआ कि उस बालक को पेड़, घर की छतों आदि ऊँचे स्थानों पर चढ़ने का स्वभाव था।

(४) बुद्धि-लब्धि के आधार पर बच्चों का वर्गीकरण किया जा सकता है।

सन् १९२२ में संघीय क्रिश्चियन प्रशिक्षण कॉलेज अशाब्दिक समूह परख (Union Christian Training College Non-verbal Group Test) प्रमापीकृत की गई थी। उसका निर्माण टी० सी० विकारे (T. C. Vicary) और एम० ड्रेपर (M. Draper) ने किया था। यह परख ८ से १५ वर्ष तक के बच्चों के लिये है। इस परख में भाषा कठिनाई की समस्या उपस्थित नहीं होती। उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट है कि हमारे इतने बड़े देश में बुद्धि-परख का वास्तविक प्रारम्भ नहीं हुआ है। कम से कम हमारे देश में भिन्न-भिन्न भाषाओं वाले प्रदेशों के लोगों के लिये तथा बच्चों के लिये बिने परख की समतुल्य परख अवश्य होनी चाहिये। यह परख शाब्दिक सामूहिक परख के रूप में तैयार की जा सकती है। इसके अतिरिक्त डा० भाटिया की कार्यात्मक परख जिसमें भाषा की योग्यता की आवश्यकता नहीं है, हमारे देश के लिये बड़ी ही आवश्यक तथा उपयुक्त सिद्ध होती है। इस कार्य को आगे बढ़ाना चाहिये।

बुद्धि परख की उपयोगिता
(Use of Intelligence Tests)

शैक्षणिक उपयोग (Educational use) :—बुद्धि परख शिक्षकों के लिये बड़ी ही उपयोगी है। शिक्षक का कार्य बढ़ते हुये बच्चों को सम्भालना होता है। इसलिये यह आवश्यक है कि वह बच्चों के मस्तिष्क को समझे। जब तक वह बच्चों के मस्तिष्क मापन हेतु कोई सही और शुद्ध उपकरण न तैयार कर ले वह उनके मस्तिष्क का निदान (diagnosis) तथा उपचार नहीं कर सकता है। शिक्षक के लिये बिने की मानसिक मापन प्रणाली उपयुक्त उपकरण सिद्ध हो सकती है। विद्यार्थियों में सीखने की योग्यता तथा बुद्धि में भिन्नता होती है। यदि तीव्र तथा मन्द बुद्धि बालकों को एक ही प्रकार की शिक्षा दी जाय तो वह केवल समय का खोना ही होगा। उन विद्यार्थियों के लिये जो निम्नकोटि के हैं तथा जिनका I. Q. ६० से निम्न है तथा जो पिछड़े बालक हैं उनको कक्षा से अलग करके एक विशेष प्रकार के विद्यालयों में उनकी शिक्षा का प्रबन्ध करना लाभप्रद होगा। इसी प्रकार उच्च कोटि के बालक जिनका I. Q. करीब १४० से अधिक हो उनको भी साधारण कक्षा से पृथक करके विशेष योग्यता के शिक्षकों के द्वारा शिक्षा देना लाभप्रद होगा क्योंकि ये बच्चे देश के धन हैं। इसके अतिरिक्त ६० और १४० I. Q. के बीच के

बालकों को भी दो तीन भागों में विभाजित करके उनकी योग्यता के अनुसार शिक्षा देना आवश्यक होगा। उपरोक्त कथन उन्हीं विद्यालयों में सम्भव है जहाँ पाठ्यक्रम विस्तृत हो तथा विद्यालय स्वयं विस्तृत हों। अब प्रश्न यह है कि अध्यापक विद्यार्थियों की बुद्धि का ज्ञान किस प्रकार करें। इसके लिए उसे बुद्धि परीक्षा का प्रयोग करना होगा। शिक्षक बिना बुद्धि परीक्षा के बालक की बुद्धि का सही अनुमान नहीं लगा पाते। बालकों की बुद्धि की तुलना के लिये उनकी आयु को भी ध्यान में रखना चाहिये। माना दो विद्यार्थी एक ६ वर्ष और दूसरा ८ वर्ष का एक ही कक्षा में पढ़ते हैं और उनकी परख ली जाती है। यदि उस परख में उनके प्राप्ताङ्क समान हों तो हम यह नहीं कह सकते हैं कि वे दोनों विद्यार्थी 'बुद्धि' में समान हैं। यदि आयु को ध्यान में रखा जाय तो यह कहा जा सकता है कि प्रथम बालक दूसरे की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान है।

दूसरी कमी यह है कि शिक्षक कक्षा के कार्य के आधार पर विद्यार्थी की बुद्धि का मापन करते हैं। परन्तु यह सही विधि नहीं है। यह मुमकिन है कि एक कम बुद्धि वाला विद्यार्थी अधिक मेहनती हो जिसके कारण वह कक्षा के विषयों में दूसरे बालक की अपेक्षा, जो अधिक बुद्धिमान परन्तु कम मेहनती है अधिक अङ्क प्राप्त कर ले। इसके अतिरिक्त यह भी मुमकिन है कि शिक्षक के स्कूल विषयों में अङ्क देने में कुछ मानवीय पक्षपात (subjective element) भी हो जाता है जिसके कारण एक विद्यार्थी दूसरे की अपेक्षा समान उत्तर में अधिक अङ्क प्राप्त कर लेता है।

इसलिए उपरोक्त कथन से यह प्रमाणित हो जाता है कि विद्यार्थियों की' बुद्धि मापन हेतु मानसिक परखों का प्रयोग किया जाय।

अब यह प्रश्न पैदा होता है कि विद्यार्थियों का भिन्न-भिन्न स्तरों की शिक्षा हेतु विभाजन उनकी बुद्धि-लब्धि ((I. Q.) के आधार पर होना चाहिये या मानसिक आयु के आधार पर। साधारणतया यह प्रतीत होता है कि उनका विभाजन मानसिक आयु के आधार पर होना चाहिये। यह हो सकता है कि एक बालक की बुद्धि-लब्धि १२५ है फिर भी उसकी 'मानसिक आयु' जिस कक्षा में वह अध्ययन करता है उसके हेतु कम हो जिसके कारण उसका कार्य कक्षा में पिछड़ा हुआ हो। और दूसरा बालक जिसकी बुद्धि लब्धि १०० हो परन्तु मानसिक आयु अधिक हो वह उसी कक्षा में पहिले की अपेक्षा उतम कार्य कर सकता है। निम्न उदाहरण से इन दोनों विद्यार्थियों की तुलना की जा सकती है।

प्रथम विद्यार्थी M. A. = १२·५

$$C.\ A. = १० \quad \therefore I.\ Q. = \frac{१२·५}{१०} \times १०० = १२५$$

द्वितीय विद्यार्थी M. A. = १३

$$C.\ A. = १३ \quad \therefore I.\ Q. = \frac{१३}{१३} \times १०० = १००$$

उपरोक्त उदाहरण से तो यह स्पष्ट हो जाता है कि विद्यार्थियों के विभाजन में बुद्धि-लब्धि की अपेक्षा मानसिक आयु (M. A.) अधिक महत्वशाली है। परन्तु इसमें हमारे सम्मुख काफी कठिनाइयाँ पैदा हो जाती हैं। यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि उच्च तथा निम्न श्रेणी के विद्यार्थियों की मानसिक प्रगति में भिन्नता होती है। हो सकता है कि एक सामान्य बालक १ वर्ष में एक मानसिक वर्ष की ही प्रगति करे, तथा निम्न बालक केवल एक वर्ष से कम मानसिक आयु की प्रगति करे तथा उच्च बालक की प्रगति एक वर्ष से अधिक हो सकती है। यदि प्रारम्भ में ये तीनों एक ही मानसिक स्तर से कार्य करने लगें तो कुछ ही वर्षों के अन्त में उनकी उन्नति में पर्याप्त अन्तर आ सकता है। इसके साथ-साथ यह भी सम्भव है कि एक ही मानसिक आयु के बालकों की प्रगति भिन्न-भिन्न विषयों में भिन्न-भिन्न हो। इसका कारण यह है कि यदि विद्यार्थी की किसी एक विषय में अभिरुचि अधिक हो तो उसमें उसकी प्रगति दूसरे विषय की अपेक्षा अधिक होगी। इसके अतिरिक्त बालक की शारीरिक स्थिति तथा घर का वातावरण भी उसकी प्रगति पर प्रभाव डाल सकते हैं। इसलिये यदि एक ही मानसिक आयु के बालकों को एक साथ रख भी दिया जाय तो कुछ ही दिनों में फिर भी उनमें मानसिक भिन्नता आजावेगी। क्योंकि कुछ बालक अधिक प्रगति तथा कुछ कम प्रगति कर पायेंगे। इसलिये बालकों के विभाजन का आधार मानसिक आयु नहीं होना चाहिये।

यदि एक विद्यार्थी की बुद्धि सामान्य या औसत से उच्च है यानी उसकी बुद्धि-लब्धि (I.Q.) १०० से ऊपर है तो यह आशा की जाती है कि उसका (E.Q.) शैक्षणिक गुणक १०० से ऊपर हो। यदि (E.Q.) का मान कम है तो इससे यह स्पष्ट है कि विद्यार्थी अपने वास्तविक स्तर से निम्न कोटि का कार्य करता है। यदि यह अधिक है तो यह स्पष्ट है कि विद्यार्थी अपनी शक्ति से अधिक कार्य कर रहा है। यदि विद्यार्थी का (E.Q.) ८० है और I.Q. १०० है तो उसका 'Accomplishment quotient (A.Q.) ८० होगा। इससे यह स्पष्ट है कि विद्यार्थी अपनी क्षमता के अनुसार कार्य नहीं कर रहा है। दूसरी स्थिति में यदि विद्यार्थी का (E.Q.) १२० तथा I.Q. १०० हो तो उसका

Accomplishment quotient (A.Q.) १२० होगा। इसका तात्पर्य यह हुआ कि विद्यार्थी अपनी शक्ति से अधिक कार्य करता है।

१०० लब्धि को एक सामान्य लक्ष्य माना जाता है। माना कि एक विद्यार्थी जिसकी मानसिक आयु १० वर्ष है और (E.A.) शैक्षणिक आयु ९ वर्ष २ माह है तो उसका A.Q. $= \frac{११०}{१२०} \times$ १ ० $=$ ९२ होगा। इसी तरह एक दूसरा विद्यार्थी है जिसका E.A. पहिले के समान है याने ९ वर्ष २ माह, परन्तु (M.A.) $=$ ८ वर्ष ३ माह तो उसका A.·Q. $\frac{११०}{९९} \times$ १०० $=$ १११ होगा। प्रथम विद्यार्थी का A.Q. ९२ है जिसका प्रयोजन यह हुआ कि वह अपनी क्षमता अनुसार कार्य नहीं कर रहा है जैसा कि स्वाभाविक ही है। दूसरे विद्यार्थी का A.Q. १११ आता है। यह बड़ा ही अनुचित है क्योंकि यह विद्यार्थी अपनी क्षमता से ११% अधिक उच्च है जो कि असम्भव प्रतीत होता है। इसका कारण यह हो सकता है कि यह गुणक या लब्धि परख की अशुद्धता के कारण हो सकता है। उपरोक्त उदाहरण में इसका कारण साफल्य अङ्कों को उच्च कोटि की ओर ले जाना तथा बुद्धि अङ्कों को निम्न कोटि की ओर ले जाना हो सकता है। परीक्षा-फल हेतु प्राप्त लब्धि में इस तरह की त्रुटियाँ आ गयी हैं। यदि त्रुटियाँ एक ही दिशा की ओर होतीं तो वह एक दूसरे को समाप्त करने में सहायता देतीं।

व्यावसायिक मार्ग प्रदर्शन (Vocational guidance)—बुद्धि परखों का प्रयोग व्यावसायिक मार्ग प्रदर्शन में भी किया जाता है। शिक्षक तथा माता पिता का यह कर्त्तव्य है कि वह बालक को इस प्रकार मार्ग प्रदर्शित करें जिससे वह अपने व्यवसाय में पूर्ण सफल हो सके। भिन्न-भिन्न वास्तविक निरीक्षणों तथा सफल कार्यकर्ताओं ने भिन्न-भिन्न व्यवसायों में सफलता प्राप्त करने हेतु कुछ निम्नतम बुद्धि-लब्धि निश्चित की है। इस तरह से उन्होंने यह ज्ञात किया कि अध्यापकों के लिये १२५ तथा उसके ऊपर की बुद्धि-लब्धि उपयुक्त होती है। दन्त व्यवसाय वाले तथा क्लर्क व्यवसाय वालों को एक मध्य श्रेणी की बुद्धि की आवश्यकता होती है और अदक्ष व्यवसाय के व्यक्तियों की बुद्धि-लब्धि निम्न श्रेणी की होती है। यहाँ तक कि इसमें कार्य करने वाले लोग ८० से कम I.Q. के भी पाये जाते हैं। मनोविज्ञ यह ज्ञात कर सकता है कि भिन्न-भिन्न व्यवसायों के लिये कितनी बुद्धि लब्धि की आवश्यकता पड़ती है। इस तरह विद्यार्थी की बुद्धि-लब्धि जानने से उसको उसकी बुद्धि-लब्धि अनुसार व्यवसाय के लिये मार्ग दिखाया जा सकता है। जिस प्रकार व्यवसाय के हेतु I.Q. की आवश्यकता होती है उसी प्रकार विद्यालय में विद्यार्थियों के भर्ती करने के लिये भी I.Q. की आवश्यकता होती है।

एक बुद्धि-परख के द्वारा यह पूर्ण रूप से ज्ञात हो जाता है कि अमुक व्यक्ति किसी कार्य करने में भविष्य में सफलता प्राप्त करेगा या नहीं यदि वह और सब दृष्टिकोणों में उस व्यवसाय के लिये उपयुक्त है। यदि उसकी बुद्धि पर्याप्त है तो उसव्यवसाय के हेतु उसी व्यक्ति को चुनना लाभप्रद भी होगा।

थर्सटन के मतानुसार व्यक्ति के कार्यों में भिन्न-भिन्न जैसे V, F, N इत्यादि प्रतिकारक होते हैं। यदि हम इन प्रतिकारकों की किसी व्यक्ति में सही खोज कर लें तो हम यह दावे से कह सकते हैं कि उसका मार्ग दर्शन सही व्यवसाय में हो सकेगा। विश्लेषण द्वारा जितने कम प्रतिकारक आयेंगे उतना ही उनका महत्व अधिक होगा।

एक स्थान पर Sir Godfrey Thomson ने कहा है—'प्रतिकारक ज्ञात करने वाले व्यक्ति के लिये सबसे अधिक महत्वशाली बात यह है कि वह प्रतिकारकों की संख्या कम से कम ज्ञात करे और इन्हीं के अन्तर्गत बहुत से परख तथा व्यवसायों को सम्मिलित कर दे·········अगर इस बात की प्राप्ति हो जाय तो इसका प्रभाव बहुत सी सामाजिक समस्याओं पर उसी प्रकार पड़ेगा, जैसे कि सिक्कों के समाज में प्रयोग होने से लेन-देन की व्यवस्था का हल हो गया'।[1]

व्यावसायिक मार्ग प्रदर्शन किस स्तर पर होना चाहिये

अपने देश का उदाहरण सामने रखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हमारे स्कूलों में पढ़ने वाले बालकों की अधिक संख्या स्कूल के मध्य में तथा कालेज के पश्चात् पढ़ना छोड़ देते हैं। कुछ विद्यार्थी प्रारम्भिक स्तर के बाद, कुछ माध्यमिक स्तर के बाद तथा कुछ विश्वविद्यालयों के मध्य से ही विद्यालयों को छोड़ देते हैं। इस बात से यह स्पष्ट है कि हमारे देश में भिन्न-भिन्न स्तरों में विभिन्न प्रकार के व्यवसाय हेतु मार्ग-प्रदर्शन होना आवश्यक होगा। भिन्न-भिन्न स्तरों के अनुसार ही शैक्षणिक पद्धति अपनायी जानी चाहिये। माध्यमिक स्तर के उपरान्त भिन्न-भिन्न दक्ष व्यवसायों के हेतु पाठ्यक्रम होना अनिवार्य है।

---

१. Godfrey H. Thomson—'The factorial analysis of Human abilities,' (University of London Press), Page 118

बुद्धि सम्बन्धी तथ्य

(Facts about Intelligence)

बुद्धि और शरीर :—मस्तिष्क की हानि या कोई भी बीमारी से मानसिक कठिनाइयाँ पैदा हो जाती हैं। साधारणतया लकवा (Paralysis) जिसमें कि मस्तिष्क का धीरे-धीरे नाश हो जाता है, बीमार की मानमिक स्थिति का अन्त कर देती है। नालिका विहीन प्रणाली (endocrine system) के अनुचित कार्य करने से भी मानसिक क्षमता पर प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त और शारीरिक कठिनाइयों के कारण भी व्यक्ति की मानसिक स्थिति पर प्रभाव पड़ने के कुछ उदाहरण पाये जाते हैं। Dawson ने ग्लैस्गो चिकित्सालय में १०७६ बीमार बच्चों पर एक बुद्धि परख का प्रयोग किया था। उसके प्रयोग से यह स्पष्ट हो गया कि मुख्यतया मस्तिष्क तथा नालिका विहीन प्रणाली की बीमारी के कारण सामान्य बुद्धि पर प्रभाव पड़ता है।

बुद्धि और लिङ्ग (Intelligence and sex)—भिन्न-भिन्न लिङ्गों की बुद्धि के बारे में कोई महत्वपूर्ण अंतर बुद्धि परखों द्वारा प्राप्त नहीं हो सका है। 'बर्ट ने इंगलैंड के ३००० बच्चों पर एक प्रयोग किया और यह परिणाम निकाला कि ३ वर्ष से १४ वर्ष के बीच की आयु वाले बच्चों में औसतन लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा उच्च बुद्धि की होती हैं। यह अन्तर ७ वर्ष की आयु में सबसे महत्वशाली होता है। १० वर्ष की आयु में यह कुछ लड़कों की दिशा को आ जाता है और १४ वर्ष के लगभग लड़कियों में फिर उच्चता दृष्टिगोचर होती है। उपरोक्त प्रयोग से वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि औसतन लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा शीघ्रता से बुद्धि में परिपक्व हो जाती हैं परन्तु यह अन्तर कोई महत्वशाली नहीं होता है।

लड़के तथा लड़कियों के बुद्धि के इस औसतन अन्तर को ध्यान में रखते हुये हमारे देश में उपरोक्त बात बिलकुल उल्टी पाई जाती है। हमारे देश की लड़कियाँ अधिकतर अपनी माताओं के संपर्क में रहती हैं जो कि अधिकतया अशिक्षित हैं। उनको केवल एक अच्छी घर की माता तथा स्त्री बनने की शिक्षा दी जाती है। इसके विपरीत लड़के अधिकतर अपने पिता के सम्पर्क में रहते हैं जो कि माताओं की अपेक्षा अधिक शिक्षित हैं। लड़कों की शिक्षा अधिकतर पढ़ाई लिखाई की ओर रहती है। यह सत्य है कि वातावरण का बुद्धि पर कुछ न कुछ अवश्य प्रभाव पड़ता है। भारतवर्ष में जिस वातावरण में लड़के तथा लड़कियाँ रहती हैं वह और देशों से पूर्णतया भिन्न है, इसीलिये हमारे देश में लड़के और लड़कियों का अन्तर और देशों से भिन्न है।

डा० कमाट ने निम्न तथ्यों का अपने अध्ययन द्वारा पता चलाया है :—

'वर्षायु' (C.A.)	लड़के		लड़कियाँ	
	संख्या	मध्यमान मानसिक आयु	संख्या	मध्यमान मानसिक आयु
२ से २ वर्ष ११ माह	२०	२·७	१५	२·६
३ „ ३ „ ११ „	२०	३·५८	२०	३·४६
४ „ ४ „ ११ „	२५	४·४९	१६	४·४७
५ „ ५ „ ११ „	३९	५·५७	२४	५·०४
६ „ ६ „ ११ „	२८	६·३८	३७	६·२२
७ „ ७ „ ११ „	४४	७·३९	५०	६·७२
८ „ ८ „ ११ „	३५	९·१६	४६	८·१६
९ „ ९ „ ११ „	३९	९·७९	४१	८·९४
१० „ १० „ ११ „	६१	११·३	४२	९·१७
११ „ ११ „ ११ „	५५	११·५५	३८	१०·६५
१२ „ १२ „ ११ „	५४	१२·६७	३१	१४·०८
१३ „ १३ „ ११ „	५०	१४·०	३२	१४·०६
१४ „ १४ „ ११ „	३८	१४·५३	१८	१३·७३
१५ „ १५ „ ११ „	४४	१५·८६	१३	१४·८३
१६ और उससे ऊपर	८६	१६·७६	१३	१४·९२

[लड़के तथा लड़कियों की मध्यमान मानसिक आयु की तुलना]

"प्रारम्भ में लड़के और लड़कियों की स्थिति समान होती है परन्तु जैसे-जैसे उनकी आयु बढ़ती जाती है वैसे ही वैसे उनमें अन्तर भी बढ़ता ही जाता है। लड़कियों की उन्नति ११ वर्ष तक लड़कों की अपेक्षा कम स्तर की होती है परन्तु १३ वर्ष की आयु तक उसकी उन्नति की वक्ररेखा (curve) लड़कों से ऊपर पहुँच जाती है और १३ वर्ष के उपरान्त फिर यह वक्र रेखा नीचे की ओर झुकने लगती है। इस कथन की सत्यता पिछले टेबुल द्वारा स्पष्ट हो जाती है।"

बुद्धि परखों के अङ्कों पर बाह्य प्रतिकारकों का प्रभाव

(The influence of extraneous factors on scores in intelligence tests)

अभ्यास का प्रभाव :—बुद्धि परख पर अभ्यास का प्रभाव दो समान परखों को चार सप्ताह के अन्तर में प्रयोग करने पर ज्ञात हो सकता है। यदि बुद्धि परख में अभ्यास दिया जाय तो विद्यार्थियों की बुद्धि लब्धि में ५ I. Q. तक वृद्धि पाई जा सकती है।

Coaching **का प्रभाव** :—(Coaching) का तात्पर्य यह है कि परख के आदेशों का ज्ञान, परख में प्रयोग प्रश्नों का ज्ञान तथा उनमें पूछे गये सिद्धान्तों का ज्ञान तथा उनका अभ्यास करा देना। इसके प्रभाव से बुद्धि-लब्धि में ९ से १८ संख्या तक वृद्धि हो सकती है जो कि विद्यार्थी की व्यक्तिगत कार्यकुशलता तथा उसके अनुभव पर आधारित होती है।

विद्यालय की पढ़ाई का प्रभाव :—हुसैन ने स्वेडन में यह ज्ञात किया था कि स्कूल की पढ़ाई का प्रभाव विद्यार्थी की बुद्धि-लब्धि पर ५ से ८ अङ्क तक की वृद्धि कर सकता है। वाट तथा पिजन के मतानुसार माध्यमिक विद्यालयों में लगातार अध्ययन से बुद्धि-लब्धि पर बुरा प्रभाव पड़ता है जब कि लगातार प्रारम्भिक विद्यालय का बालक की बुद्धि-लब्धि पर उत्तम प्रभाव पड़ता है। थोड़े समय के अध्ययन तथा बीच-बीच में स्कूल छोड़ने से भी परख परिणामों पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

सांस्कृतिक प्रभाव (cultural influence) :—एक सांस्कृतिक विहीन परख तैयार करना बड़ा ही कठिन है। सांस्कृतिक प्रभावों में भाषा, परख प्रयोग की विधि, देश की परम्परा तथा नीति मुख्यता परख पर प्रभाव डालती हैं।

—:※:—

अध्याय ८

वातावरण तथा वंश परम्परा

Environment and Heredity

आजकल मनोवैज्ञानिकों के समक्ष एक जटिल समस्या इस बात का अध्ययन करने की है कि बालक के विकास (development) में वातावरण का अधिक प्रभाव होता है या उसकी वंश परम्परा का अर्थात् दूसरे शब्दों में बालक पित्र्य निधि (inherited endowments) के कारण अपनी शिक्षा में अधिक सफल होता है या वातावरण के प्रभाव से।

वातावरण का प्रभाव :—बालक के विकास में वातावरण के प्रभाव के बारे में सबसे दृढ़ विश्वास हैलवीटस (Helvetius) नामक फ्रांस के मनोवैज्ञानिक का था। इस मनोवैज्ञानिक का विचार था कि भिन्न भिन्न व्यक्ति अपनी योग्यताओं तथा चरित्र आदि में भिन्न इसलिये होते हैं कि उनको भिन्न भिन्न प्रकार की शिक्षा मिलती है। हैलीवीटस जौन लौक (John Locke) का अनुयायी था। लौक का कहना था कि हमारे चित्त में विचार इंद्रियों के द्वारा आते हैं। दो व्यक्तियों को, उस दिन से जब कि उन्हें संवेद्यता (sensibility) की पहिचान मालूम हुई हो, यदि एक-ही प्रकार की सवेदना (sensation) ग्रहण कराई जाय तो

उन दोनों के चित्त (mind) एक से रहेंगे। परन्तु ऐसा करना बहुत कठिन कार्य है। और चूँकि हम ऐसा नहीं कर पाते इसीलिये हर व्यक्ति में मानसिक भिन्नता पाई जाती है क्योंकि उनके वातावरण, जिनसे उनके चित्त को संवेदना मिलती है भिन्न भिन्न होते हैं। रूसो (Monsieur Rousseau) का भी विचार था कि व्यक्ति पैदा होते समय न तो अच्छा ही होता है और न पापी ही। सद्गुण (virtue) तथा दुर्गुण (vices) सब शिक्षा के परिणाम हैं। "Man is not born good nor is he born evil; virtues and vices are all fruits of education." इससे ज्ञात होता है कि रूसो का भी विचार था कि बालक के विकास में वातावरण का प्रभाव अधिक होता है।

राबर्ट ओविन (Robert Owin) का भी यही विचार था कि कोई व्यक्ति अपने चरित्र (character) का निर्माण स्वयं नहीं कर पाता, न ही वह कोई धारणा स्वयं बना पाता है। वे चीजें तो उस व्यक्ति के चित्त में पूर्वजों द्वारा आती हैं तथा वातावरण द्वारा प्रभावित होती हैं। इसलिये शिक्षा द्वारा किसी व्यक्ति का चरित्र उच्च से उच्च तथा निम्न से निम्न बनाया जा सकता हैं। ओविन के शब्दों में "Man never did nor ever can form either his own opinions or his character ; both are the inevitable results of what has been impressed on his mind by his predecessors and the circumstances which sorround him. It follows that any character, from the best to the worst, from the most ignorant to the most enlightened, may be given to any community, even to the world at large, by the application of the proper means ; and those means are education, understood in a sufficiently wide sense."[१]

मनोवैज्ञानिकों ने अपचारी (delinquent) बालकों का अध्ययन करके इस बात को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि वातावरण से उनके मानसिक विकास (mental growth) में प्रभाव पड़ता है। Dr. W. N. East ने ४००० अपचारी बालकों में प्रयोग किया और देखा कि उनमें चार प्रतिशत

१. Owen, R. : 'New View of Society' 1813, Reprinted in Everyman's Library, 1927.

बालकों में मानसिक दुर्बलता थी। यह चार प्रतिशत उस प्रतिशत से कहीं अधिक है जो कि पूरी जन संख्या में पाया जाता है। इससे यह तो ज्ञात होता है कि कुछ सीमा तक वंश परम्परा मानसिक विकास में प्रभाव डालती है परन्तु बालक के वातावरण का जैसे—घर की दशा, मां बाप की बुरी प्रकृति, बुरा स्कूल आदि का भी मानसिक विकास में प्रभाव पड़ता है। यह भी पाया गया कि यदि अपचारी बालकों को अच्छे वातावरण में रखा जाय तथा उनका उपचार किया जाय तो वे समाज में अच्छे व्यक्ति भी बन सकते हैं। प्रोफेसर नन (Professor Nunn) ने लिखा है "The records of such institutions as a Barnardo Homes point in the same direction as East's scientific analysis ; for they tend to show that the most unpromising stocks, when properly nurtured, may yield good and sound human materials."[१]

वंश परम्परा का प्रभाव

हैलवीटस, ओविन तथा डारविन के विचारों के विरुद्ध गाल्टन ने अपने विचार प्रकट किये। गाल्टन का दृढ़ विश्वास था कि बालक के विकास में वंश परम्परा (Heredity) का प्रभाव होता है। गाल्टन ने प्रयोगों द्वारा देखा कि यदि यमजों (Twins) को भिन्न-भिन्न वातावरण में रखा जाय तब भी उनका व्यवहार एक समान रहता है। "Twins behave throughout their lives as if they were clockworm automata turned out by the same factory and wound up at the same moment."[१] यह इसीलिये होता है कि यमजों की वंश परम्परा एक ही होती है और उसी से वे प्रभावित होते हैं न कि भिन्न-भिन्न वातावरणों से।

जूक्स (Jukes) के परिवार का इतिहास भी इस बात को सिद्ध करने में सहायक होता हैं कि वंश परम्परा का प्रभाव वातावरण से अधिक होता है। एक भ्रष्टाचारी जूक परिवार का इतिहास कीटिंग (Keatinge) ने इस प्रकार दिया है : "एक जूक परिवार के १००० व्यक्तियों में में पांच पीढ़ियों में ३०० की शैशव काल में ही मृत्यु हो गई; ३१० करीब २३०० वर्षों तक भिखारी रहे; ४४० बीमारी से पीड़ित रहे; १३० अभियोगी थे (जिनमें ७ खूनी थे); केवल २० ने व्यापार को अपनाया।"[२] इस प्रकार के पारिवारिक इतिहास से

---

१. Nunn. T. P. : 'Education, Its Data and First Principles' ; Edward Arnold & Co, London, 1949, p. 116.

२. Keatinge. : 'Studies in Education', p. 27.

यह बात सिद्ध होती है कि वंशपरम्परा का प्रभाव व्यक्ति के विकास में होता है।

गाडर्ड ने कालीकॉक कुटुम्ब का अध्ययन करके वंश परम्परा का प्रभाव बताने का प्रयत्न किया। मार्टिन कालीकॉक एक सामान्य कोटि का सिपाही था। अपने सिपाही जीवन में एक मन्द बुद्धि स्त्री के साथ उसका अवैध संबंध हो गया था। इससे एक वंश की शाखा चली। लड़ाई से वापस आने के बाद उसने एक कुलीन वंश की सच्चरित्र महिला से विवाह किया। इससे एक दूसरे वंश की शाखा चली। पहले वंश की शाखा से ४८० व्यक्ति उत्पन्न हुए जिनमें १४३ मन्द-बुद्धि, ४६ सामान्य बुद्धि, ३६ जार-सन्तान, ३३ वेश्याएं, २४ शराबी, ३ मिरगी के रोगी, ३ घोर अपराधी और ८ वेश्यालयों के स्वामी निकले। दूसरे परिवार से उत्पन्न वंशजों में ४९६ व्यक्तियों का पता लगाया जा सका। इनमें केवल पांच व्यक्ति व्यभिचारी अथवा मन्द बुद्धि के निकले और शेष सभी ने विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिष्ठा प्राप्त की।

इसी प्रकार का एक और पारिवारिक इतिहास वंश-परम्परा का प्रभाव सिद्ध करने में सहायक हुआ। यह हैं कार्ल पियर्सन द्वारा 'बेजउड—डारविन-गाल्टन' कुटुम्ब का इतिहास। इससे यह ज्ञात किया गया कि लगातार पांच पीढ़ियों तक इस कुटुम्ब के वंशज इंग्लैन्ड के 'रायल सोसायटी' के सदस्य रहे तथा उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिष्ठा प्राप्त की।

वंश परम्परा के कुछ नियम (Some Laws of Heredity)

(१) **पित्रद्रव्य का सिद्धान्त** (Theory of Germplasm) :—इस सिद्धान्त के प्रवर्तक वीजमैन (Wiseman) थे। उनका कहना है कि हमारे शरीर में कई जीव कोष होते हैं। शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों के लिये भिन्न भिन्न प्रकृति के जीव कोष होते हैं। इनमें एक सन्तति उत्पादन के हेतु भी जीव कोष होता है। पुरुष में यह शुक्र तथा स्त्री में अण्ड के रूप में पाया जाता है। अंग्रेजी में इन्हें क्रमशः जर्म (germ) सैल तथा गैमिट (Gamet) कहते हैं। इन दोनों के संयोग से गर्भादान होता है और सन्तान उत्पन्न होती है। इनके संयोग से भ्रूण कोष की सृष्टि होती है। विभिन्न अवयवों के निर्माण कर देने पर भी मूल बीज कोष का नाश नहीं होता। एक ही बीज-कोष से वंशपरम्परागत बहुत से व्यक्तियों का जन्म होता है। पिता इस बीज-कोष को उसके मूल रूप में ही अपनी सन्तान में भेज देता है। इस लिये बालक

में अपने पिता के सभी गुण पाये जाते हैं। इसलिये कहा जा सकता है कि बालक उतना ही प्राचीन है जितना कि उसके पूर्वज।

यह बात तो ठीक है कि पिता अपनी सन्तान को बीज कोष के रूप में अपने गुणों को देता है। परन्तु क्या सन्तान पिता के जीवन काल में उसके अर्जित गुणों को भी वंशपरम्परागत रूप में प्राप्त कर लेती है। ऐसा नहीं होता। इसके लिये बीजमैन ने एक प्रयोग किया। उसने कई पीढ़ियों तक चूहों की दुम काट दी। फिर भी इन दुम कटे हुए चूहों से कोई ऐसा चूहा उत्पन्न नहीं हुआ जिसकी दुम कटी हो। इससे उसने निष्कर्ष निकाला कि व्यक्ति अपने पूर्वजों के अर्जित अथवा अनुभव से प्राप्त गुणों को संक्रमित नहीं करता। पिता सन्तान को वही गुण दे सकता है जो वंश परम्परागत हैं।

(२) **लेमार्क** (Lamark) **का सिद्धान्त :**—लेमार्क का सिद्धान्त बीजमैन के सिद्धान्त के विपरीत है। लेमार्क के अनुसार अर्जित गुणों को भी सन्तान वंशपरम्परा के नियम के अनुसार प्राप्त करती है अर्थात् पिता के अर्जित गुणों का प्रभाव भी उसकी सन्तान में पड़ता है। लेमार्क का कहना है कि हम अपने को वातावरण के अनुकूल बदलते हैं ताकि हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। इससे हमारे रहन-सहन, खान-पान आदि में परिवर्तन आ जाते हैं और यही परिवर्तित गुण हमारी सन्तान में भी आ जाते हैं। लेमार्क अपनी बात की पुष्टि जिरैफ़ (Giraffe) नामक अफ्रीकी जंगलों के जानवर से करता है। यह जानवर पेड़ों की पत्तियाँ खाकर अपना जीवन निर्वाह करता है। चूँकि वह पेड़ पर नहीं चढ़ सकता इसलिये उसे अपनी गर्दन ऊँची करके पेड़ की पत्तियाँ तोड़नी होती हैं। अतः जीरैफ़ जाति प्रत्येक पीढ़ी में अपनी गर्दन बढ़ाने की चेष्टा करती हैं। इस प्रकार धीरे-धीरे उसकी गर्दन लम्बी होती गई।

(३) **मैग्डूगल का मत :**—मैग्डूगल (McDougall) ने भी लेमार्क के सिद्धान्त की पुष्टि अपने प्रयोग द्वारा की। उसने एक झील में कुछ चूहे छोड़ दिये। उस झील से एक मार्ग अंधेरे वाला था तथा दूसरा रोशनी वाला। ये चूहे रोशनी वाले मार्ग से जाया करते थे। रोशनी वाले मार्ग में उनको बिजली का धक्का (shock) लगाया जाता था जिससे भयभीत होकर वे अंधेरे मार्ग को ढूँढ़ने का प्रयास करते थे और कई भूलों के बाद उसे ढूँढ पाते थे। मैग्डूगल ने देखा कि पहली पीढ़ी वाले चूहे १६५ बार गलती करने के बाद सही रास्ते (अर्थात् अंधेरे रास्ते) की ओर जा सके। पर २३ वीं पीढ़ी वाले चूहे केवल २५ बार ही गलती करके अंधेरे मार्ग से निकल जाने में सफल हुए। इससे

मैग्डूगल ने यह सिद्ध किया कि भावी सन्तान अपने पूर्वजों के अर्जित गुणों को वंशपरम्परानुसार प्राप्त करती है।

(४) **डार्विन का सिद्धान्तः**—डार्विन (Darwin) का विचार है कि विकास सदैव प्रकृति पर ही निर्भर रहता है। उसके अनुसार इस संसार में जीव अपने जीविकोपार्जन हेतु पर्याप्त भोजन तथा आवश्यक सामग्री चाहता है जो उसे सुलभ नहीं हो पाती। इसलिये जीवित रहने के लिये वे भोजन तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं को ग्रहण करने की चेष्टा करते हैं। इससे उनमें जीवन संघर्ष (struggle for existence) होता है। जो अधिक बलिष्ठ होता है उसकी जीत होती है और वही केवल जीवित रह पाता है। इसी को जीवन संघर्ष तथा बलिष्ठ अतिजीविता (Struggle for existence and survival of the fittest) कहते हैं। इस प्रकार वातावरण से प्राणी में परिवर्तन आता है और वही परिवर्तन भावी सन्तति में संक्रमित हो जाता है। यद्यपि लेमार्क तथा डार्विन के विचारों में सिद्धान्ततः मतभेद है; परन्तु दोनों मानते हैं कि अर्जित गुण संक्रमित होते हैं।

(५) **मेण्डलवाद** (Mendalism) :—अधिकांश देखा गया है कि प्रकृति सामान्यता की ओर अग्रसर होती है विलक्षणता की ओर नहीं। इसी लिये हम देखते हैं कि अधिकांश व्यक्ति सामान्य बुद्धि (normal intelligence) वाले होते हैं। बहुत कम तीव्र बुद्धि होते हैं और बहुत कम मन्द बुद्धि। इस प्रकार प्रकृति सदैव स्थैर्य और संतुलन को निभाने की चेष्टा करती है। मेण्डल ने इस कथन की पुष्टि की है। मेण्डल के निष्कर्ष को 'मेण्डवाद' कहते हैं। इसके अनुसार हम यह मानते हैं कि प्रकृति शुद्ध गुण वाली सन्तति को बढ़ाती रहती है। मेण्डल ने मटर पर परीक्षण करना प्रारम्भ किया। छोटे और बड़े दोनों प्रकार के मटर अलग अलग बोने पर उसने देखा कि छोटी मटर से केवल छोटी और बड़ी से केवल बड़ी मटर उत्पन्न होती है। परन्तु जब उसने छोटे और बड़े को बराबर की संख्या में मिला कर बोया तो देखा कि छोटी मटरें एक दम विलीन हो गयीं अर्थात शुद्ध गुण वाली सन्तति को बढ़ाने वाली प्रकृति की चेष्टा सफल रही।

छोटेपन का गुण सुप्त रह गया और बड़ापन व्यक्त रहा। पर जब वर्ण-सङ्कर जाति की मटर बोई गई तो पता चला कि वर्णसङ्करता का प्रभाव गया नहीं। उसमें एक चौथाई मटर विशुद्ध छोटी निकली। इस विशुद्ध छोटी मटर के बोने पर सदा छोटी ही मटर उत्पन्न होती रही। वर्णसङ्कर मटर से एक चौथाई विशुद्ध बड़ी भी निकली, और उसके बोने पर सदैव बड़ी ही मटर उत्पन्न हुई, शेष दो चौथाई मिश्रित जाति की अथवा मध्यम बड़ी। इस मिश्रित

जाति वाली मटर के बोने से एक चौथाई विशुद्ध बड़ी, एक चौथाई विशुद्ध छोटी और दो चौथाई मिश्रित अथवा मध्यम बड़ी निकली।

बुद्धि तथा वंश परम्परा (Intelligence & Heredity) :—मानसिक दुर्बलता का कारण सामान्य मानसिक योग्यता वाले व्यक्तियों की पित्रद्रव्य (Germ plasm) की कमजोरी माना गया है। Geneticists ने यह बताया है कि कुछ बीमारियाँ वंश परम्परागत होती हैं।

इस बात के प्रमाण भी प्राप्त हुए हैं जिनमें कुछ बीमारियाँ तथा विक्षिप्ति (Insanity) वंश परम्परा से चली आती है।

हाल ही में मानसिक कमजोरी वाले व्यक्तियों के मूत्र में फिनाइल पायरुविक अम्ल प्राप्त होने से मानसिक दुर्बलता के क्षेत्र में जननिक अध्ययन हेतु रुचि उत्पन्न होगई है। सामान्य व्यक्तियों के मूत्र में फिनाइल पायरुविक अम्ल प्राप्त नहीं होता है। जरविस ने यह ज्ञात किया कि इसका कारण recessive genes का पारेषण (transmission) है।

वंश परम्परागत प्रतिकारक जिनका प्रभाव बुद्धि पर पड़ता है उनका अध्ययन करने के हेतु यमजों (twins) के विकास का अध्ययन करना एक मुख्य विधि है। मातृयमज (fraternal twins) और एक सम यमजों (Identical twins) के अन्तर के बारे में हमारे पास प्रमाण हैं। यदि यमजों का पालन पोषण अलग हुआ है याने उनके वातावरण भिन्न भिन्न हैं, तो वातावरण का उनके जीवन पर प्रभाव का सही अध्ययन किया जा सकता है। धात्रेय बच्चों (Foster children) के अध्ययन से भी इस प्रकार की खोज की जा सकती है।

थार्नडाइक (Thorndike) ने १९०५ ई० में यमजों का अध्ययन किया। उसने ५० जोड़े यमजों की परीक्षा करने पर यह निष्कर्ष निकाला कि उनकी योग्यताओं का सहसम्बन्ध गुणक (Coefficient of correlation) ·६ से ·९ तक आता है तथा सोदर (Siblings) का ·३ आता है। अधिक आयु वाले यमजों में कम आयु वाले यमजों की अपेक्षा बहुत कम समानता होती है। इस प्रयोग से यह परिणाम निकलता है कि वातावरण का प्रभाव बुद्धि में उतना महत्वशाली नहीं होता जितना कि वंशपरम्परा का होता है। सैन्डिफोर्ड (Sandiford) ने निम्न तालिका से यह सिद्ध किया है कि भिन्न-भिन्न सम्बन्धों के बच्चों में बुद्धि का सह सम्बन्ध (Correlation) भिन्न-भिन्न होता है जैसा कि निम्न तालिका में अंकित है—

समूह (Group)	सह सम्बन्ध गुणक (Coefficient of Correlation)
एक समय यम	·९०
एक लिंग यमज	·८२
विपरीत लिंग यमज	·५९
सोदर (Siblings)	·५०
सम्भ्राता (Cousins)	·२७
असम्बन्धित बच्चे	·००

उपरोक्त फल से यह निष्कर्ष निकलता है कि बुद्धि वंशपरम्परागत होती है। परन्तु बहुत लोगों का मत है कि बुद्धि की समानना वातावरण की समानता पर निर्भर होती है। इस मत की निम्न कारणों से समालोचना की जा सकती है।

१—यमज भिन्न-भिन्न वातावरण में रहने पर भी आपस में समानता रखते हैं।

२—यमजों की बुद्धि १६ वर्ष की आयु में भी वही होती है जो ५ वर्ष की आयु में थी।

३—बुद्धि में अन्तर उन बच्चों में भी प्राप्त होता है जो कि भिन्न-भिन्न कुटुम्ब के हों तथा जिनकी शिक्षा तथा विकास समान वातावरण में हुआ हो।

४—बुद्धि पर वंश परम्परा का प्रभाव माता पिता तथा बच्चों की बुद्धि के बीच सह सम्बन्ध (correlation) से भी स्पष्ट हो जाता है। (यह सम्बन्ध काफी उच्च ज्ञात हुआ है।)

प्रिस्से (Pressey) वे एक बुद्धि परख ५०० बच्चों को दी और परिणामों की तुलना भी की। उसके परिणामों से यह स्पष्ट होगया है कि वे बच्चे जिनके माता पिता व्यावसायिक तथा निष्पादक (professional and excusitive) कार्य करते हैं उनकी अपेक्षा उच्च बुद्धि होते हैं जिनके माँ बाप शारीरिक कार्य करते हैं।

इसी प्रकार एक खोज भारतवर्ष में हुई है जिसके आधार पर पिता के सामाजिक स्तरों का सम्बन्ध उसके बच्चों की बुद्धि लब्धि से ज्ञात किया गया है। पिताओं के व्यवसायों को छः श्रेणियों में बाँटा गया है। इस पर आधारित निम्नाङ्कित प्राप्त सूचना है।

बुद्धि लब्धियाँ (I. Q.s)

पिता का व्यवसाय	८० से नीचे	८०-८९	९०-९९	१००-१०९	११०-११९	१२० और ऊपर	योग	औसत बुद्धि लब्धि
१. प्रोफेसर, जिलाधीश, उप जिलाधीश, जज, इंजीनियर तथा उप इंजीनियर।	१	३	६	६	९	१७	४२	११४
२. वकील, स्कूल के अध्यापक, डाक्टर, मध्य वर्ग के आफीसर आदि	११	२७	५८	७७	५६	५१	२८०	१०६
३. प्राइमरी स्कूल के अध्यापक, क्लर्क आदि।	३२	३७	५३	६२	४३	३१	२५८	१००·५
४. व्यापारी, जमीदार, निपुण या दक्ष कार्यकर्ता, टाइपिस्ट	२७	४०	५०	४२	२३	२१	२०३	९८
५ साधारण व्यापारी, किसान, पादरी	३१	३३	३१	२३	१३	१०	१४१	९३
६. पोस्टमैन, पुलिस मैन, नाई, निम्न कार्यकर्ता, मांस बेचने वाले आदि	४०	१३	१३	४	५	१	७६	८१
योग	१४२	१५३	२११	२१४	१४९	१३१	१०००	

इस तालिका से Coefficient of contingency ०·४१३ और Coefficient of Correlation ०·३८० प्राप्त होते हैं। यह सम्बन्ध गुणक काफी उच्च आता है। इस बात से स्पष्ट होता है कि पिता के व्यवसाय का सम्बन्ध

उनके बच्चों की बुद्धि से उच्च है। उच्च तथा निम्न बुद्धि लब्धि की औसत का अन्तर ३३ अंक तक है। नीचे वर्ट (Burt) द्वारा बनाई गई एक तालिका दी गई है।

'मानसिक, वैषयिक तथा मौखिक मापन के परखों के बीच का सहसम्बन्ध''[1]

(अ) (A) बर्ट और कौनवे — **(ब) न्यूमैन, फ्रीमैन और हार्लाजिजर**

मापन	सम यमज जो एक साथ विकसित होते हैं।	सम यमज जो अलग अलग विकसित होते हैं।	असम यमज जो एक साथ विकसित होते हैं।	सोदर जो एक साथ विकसित होते हैं।	सोदर जो अलग अलग विकसित होते हैं।	असम्बन्धित बच्चे जो एक साथ विकसित होते हैं।	सम यमज जो एक साथ विकसित होते हैं।	सम यमज जो अलग अलग विकसित होते हैं।	असम यमज जो एक साथ विक-सित होते हैं।
बुद्धि-									
सामूहिक परख	.९४४	.७७१	.५४२	.५१५	.४४१	.२८१	.९२२	.७२७	.६२१
व्यक्तिगत परख	.९२१	.८४३	.५२६	.४९१	.४६३	.२५२	.९१०	.६७०	.६४०
अन्तिम निर्णय	.९५२	.८७६	.५५१	.५३८	.५१७	.२६९	—	—	—
वैयक्तिक									
सामान्य सफलता	.८९८	.६८१	.८३१	.८१४	.५२६	.५३५	.९५५	.५०७	.८२३
वाचन तथा विन्यास	.९४४	.६४७	.९१५	.८५३	.४९०	.५४८	—	—	—
गणित	.८६२	.७२३	.७४८	.७६९	.५६३	.४७६			
शारीरिक									
ऊँचाई	.९५७	.९५१	.४७२	.५०३	.४३६	.०६९	.९८१	.९६९	.९३०
वजन	.९३२	.८९७	.५८६	.२६८	.४२७	.२४३	.९७३	.८८६	.९००
सर की लम्बाई	.९६३	.९५९	.४९५	.४८१	.५३६	.११६	.९१०	.९१७	.६११
सर की चौड़ाई	.९७८	.९६२	.५४१	.५०७	.४७२	.०८२	.९०८	.८८०	.६५४
आंखों का रंग	१.०००	१.०००	.५१६	.५५३	.५०४	.१०४	—	—	—

१. Burt, C. "Evidence for the concept of intelligence", British Journal of Educational Psychology, Nov. 1955.

उपरोक्त तालिका द्वारा मानसिक, स्कूल साफल्य तथा शारीरिक मापन का सहसम्बन्ध ज्ञात होता है। सिरिल बर्ट (Cyril Burt) ने यह सहसम्बन्ध लन्दन के विद्यालयों से प्राप्त किया था जिसकी पूर्ति मिस कौनवे द्वारा हुई है। न्यूमैन, फ्रीमैन तथा हौलजिंजर द्वारा ज्ञात सहसम्बन्ध भी उपरोक्त चित्र में अंकित है। उपरोक्त अंकों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सम यमजों में सहसम्बन्ध उच्चकोटि का होता है गोकि उनका विकास भिन्न-भिन्न वातावरण में हुआ है। यह सहसम्बन्ध उतना ही उच्च आता है जितना कि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के बीच दो भिन्न-भिन्न परखों द्वारा प्राप्त होता है। परन्तु दो असम यमजों के बीच का सम्बन्ध दो साधारण भाई बहिनों के बीच के सम्बन्ध से अधिक नहीं होता है।

प्रारम्भ में दिए गए परिणामों से इस बात का स्पष्ट सबूत मिलता है कि व्यक्तिगत बुद्धि का अन्तर स्वाभाविक है; जिस पर वातावरण का प्रभाव विद्यालय सम्बन्धी प्राप्त योग्यता की अपेक्षा कम ही पड़ता है।

इस प्रकार बहुत से परिणामों से यह स्पष्ट हो जाता है कि बुद्धि वंश परम्परा द्वारा ही निर्धारित होती है, और इस तरह का कोई सबूत नहीं मिलता कि बुद्धि मुख्यतया, वातावरण पर निर्धारित होती है।

बुद्धि तथा वातावरण :—आधुनिक काल में इस तरह की दो विचारधाराएँ हैं कि बुद्धि वंश तथा वातावरण पर निर्भर होती हैं। यदि यमजों या सोदरों की बुद्धि लब्धि एक दूसरे के समीप होती है तो उसका कारण वंशपरम्परागत अनुयायियों द्वारा उनका वंश है और वातावरण के पक्ष के लोगों का कहना है कि इसका प्रभाव उनका समान वातावरण है।

बुद्धि लब्धि की स्थिरता से यह समस्या उत्पन्न हो गई है कि वातावरण के प्रभाव से उसमें परिवर्तन क्यों नहीं आजाता। विलमैन (Wellman) ने कुछ बच्चों की परख भिन्न-भिन्न आयु में ली और स्कूल से पहिले प्राप्त अंकों की तुलना स्कूल तथा कॉलेज में पहुँचने पर उन्हीं बालकों के प्राप्त अंकों से की। ७८ विद्यार्थियों में से जिनको कि कालेज सम्बन्धी परीक्षाएँ दी गई थी उनमें २१ वे थे जिन्होंने कि किसी रूप में स्कूल से पहिले शिक्षा पाई थीं और ५७ ऐसे विद्यार्थी थे जिन्होंने इस तरह की कोई शिक्षा नहीं पाई थी। उपरोक्त परीक्षा से यह ज्ञात हुआ कि वे विद्यार्थी जिनको स्कूल से पहले शिक्षा मिली थी उनके अंक उन विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक उच्चकोटि के थे जिनको स्कूल में आने से पहले कोई शिक्षा नहीं मिली थी। इस परीक्षा से यह परिणाम निकलता है कि स्कूल में आने से प्रथम जो शिक्षा दी जाती है उसका बालक के मानसिक योग्यता पर प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार बहुत से बुद्धि परिवर्तन विद्यार्थियों में

पाये गये थे। एक विद्यार्थी की बुद्धि ६८ से १३५ हो गयी तथा दूसरे की ८६ से १४६ होगई थी। परन्तु विलमैन ने यह निष्कर्ष निकाला कि साधारण रूप में बुद्धि लब्धि में बहुत कम परिवर्तन हो सकता है परन्तु भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रेरणाओं से बहुत काफी मात्रा में परिवर्तन हो जाते हैं।

उपरोक्त कथन की समालोचना गुड इनफ (Good Enough) ने की है। गुड इनफ का कहना है कि विलमैन ने परख विधि में एक बड़ी भारी भूल की थी, जिसके फलस्वरूप उसके परिणाम पर प्रभाव पड़ा। भूल यह थी कि उन्होंने स्कूल से पहले तथा स्कूल या कॉलिज स्तर पर एक ही प्रकार की योग्यताओं का मापन करने की चेष्टा की जो कि गलत है। एन्डरसन (Anderson) ने भी विलमैन की समालोचना की है।

बहुत से अनुसंधाताओं ने शहर तथा ग्रामों में निवास करने वाले विद्यार्थियों की बुद्धि अंकों में अन्तर प्राप्त किए हैं। पहले यह विश्वास था कि यह अन्तर इसलिए होता है कि ग्रामों से अच्छी बुद्धि वाले छंट कर शहरों में चले जाते हैं। पिन्टनर (Pintner) का यह विश्वास था कि गाँव के कुछ उच्च बुद्धि के लोगों के शहर में चले जाने के कारण यह अन्तर पाया जाता है। इस्टाब्रुक (Estabrook) का यह विश्वास था कि एक ऊर्जस्वी व्यक्ति उस स्थान में नहीं रहना चाहता है जहाँ कि उसके विकास के लिए पर्याप्त साधन उपलब्ध न हों। उपरोक्त कथन से यह मतलब निकलता है कि जितना ही कोई व्यक्ति अधिक बुद्धिमान होगा उतना ही ऊर्जस्वी (energetic) भी होगा और अपनी शक्ति का उपयोग करने हेतु वह इस प्रकार के वातावरण को पसन्द करेगा जिसमें कि उसको उपयुक्त मौका उसके विकास के हेतु मिल सके। परन्तु उपरोक्त कथन का प्रयोग द्वारा अध्ययन करने पर यह ज्ञात हो गया कि गाँव के उच्च बुद्धि के व्यक्तियों का शहरों में आना एक सत्य कथन नहीं है। निग्रो लोगों के अध्ययन से यह स्पष्ट होगया कि जो पहिले से शहरों में रहते हैं उनका बुद्धिस्तर उनकी अपेक्षा अधिक होता है जो कुछ समय पहले ग्रामों से शहरों में आये हैं। यदि ग्रामों को छोड़कर शहरों में आना किसी विशेष प्रतिकारक (factor) के कारण होता है तो वह समय जो कि कोई व्यक्ति शहर में व्यतीत करता है उसका बुद्धि अंकों में किसी प्रकार का अन्तर लाना कोई विशेष कारण नहीं हो सकता है। क्लाइन वर्ग ने (Klienberg) ने नीग्रो लोगों के जाति सम्बन्धी समस्याओं का मूल्याङ्कन करने के उपरान्त जिनका प्रभाव उनकी बुद्धि पर पड़ता है इस बात को सिद्ध किया है कि वातावरण की प्रकृति का उनकी बुद्धि पर प्रभाव पड़ता है।

(क्लाइन वर्ग द्वारा निग्रो लोगों पर प्रयोग)

समूह	संख्या जिन पर प्रयोग किया गया	औसत बुद्धि-लब्धि
एक वर्ष से कम अवधि	४२	८१·४
एक और दो वर्ष के बीच	४०	८४·४
दो और तीन वर्ष के बीच	४०	८४·५
तीन और चार वर्ष के बीच	४६	८८·५
४ वर्ष से अधिक	४७	८७·४
न्यूयार्क में पैदा हुए	६६	८७·३

जो निग्रो न्यूयार्क में १ वर्ष से कम अवधि तक रहे उनकी औसत बुद्धि-लब्धि ८१·४ प्राप्त हुई है और जो वहाँ ४ या ४ से अधिक वर्ष तक रहे उनकी औसत बुद्धि-लब्धि ८७·४ प्राप्त हुई है। इससे वातावरण का बुद्धि में प्रभाव स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त माँ या बाप की आर्थिक स्थिति तथा शिक्षा का भी वातावरण में मुख्य स्थान है जिसका प्रभाव बच्चे की प्रगति पर पड़ता है। इसी क्षेत्र में सबसे प्रमुख खोज तथा अध्ययन फ्रीमैन तथा उसके साथियों ने की है। उन्होंने उन बच्चों के मानसिक विकास का अध्ययन किया था जो कि भिन्न-भिन्न सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति या स्तर के पोष्य घरों (foster Homes) में निवास करते थे। उन्होंने बच्चों की परीक्षा उन दोनों भिन्न-भिन्न स्थितियों में की थी। एक पोष्य घर में जाने से पहले और दूसरा उसमें रहने के पश्चात्। वे बच्चे जिनको अच्छे घर प्राप्त हुए थे उनकी बुद्धि लब्धि का विकास ५·३ विन्दु तक हुआ था। इसके विपरीत वे बच्चे जिनको साधारण, गरीब घर प्राप्त हुए उनकी बुद्धि लब्धि औसतन ·१ तक बढ़ी। इसके अतिरिक्त अच्छे घरों का प्रभाव छोटे बच्चों की बुद्धि-लब्धि पर बड़ों की अपेक्षा काफी अधिक मात्रा तक पड़ा था। सोदर बच्चों को जिनको अलग-अलग कर दिया गया था उनकी बुद्धि का सहसम्बन्ध साथ रहने वाले सोदरों (Siblings) की अपेक्षा कम प्राप्त हुआ था। उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सोदर बच्चों में घनिष्ट समानता का कारण उनका समान वातावरण होता है।

वातावरण की समस्या की जटिल प्रकृति का बुद्धि पर प्रभाव पड़ने के विशिष्ट परिणाम प्राप्त नहीं हैं। फिर भी हम इस बात को पूर्णतया नहीं मान सकते हैं कि बुद्धि विकास का केवल वंशपरम्परा ही मुख्य कारण है। उपरोक्त उदाहरण इस बात को स्पष्ट करते हैं कि वातावरण का जिसमें बच्चा रहता

तथा बढ़ता है उसका प्रभाव बच्चों की मानसिक सफलता पर अवश्य पड़ता है।

हम इतना कह सकते हैं कि बालक के विकास में वंशपरम्परा तथा वातावरण दोनों का प्रभाव होता है। गाल्टन के सिद्धान्त को मानने वाले लोग एक बात भूल जाते हैं। उन्होंने सामाजिक वंशपरम्परा (Social Heredity) को मान्यनीयता नहीं दी। सामाजिक वंशपरम्परा के कारण ही व्यक्ति अपनी स्वाभाविक योग्यता (innate abilities) की अभिव्यक्ति कर सकता है। इसके अनेकों उदाहरण दिये जा सकते हैं। कहा जाता है कि Murray द्वीप के निवासी केवल छः तक गिन पाते थे। उसके आगे गिनने के लिये उनके पास अंक नहीं थे। जब स्काटलैंड ने इस द्वीप को अपने कब्जे में कर लिया तो इस द्वीप के बच्चों को अच्छी शिक्षा देने का आयोजन किया। इससे पहले कहा जाता था कि Murray द्वीप के निवासी गणित की योग्यता में बहुत पिछड़े हैं परन्तु जब से स्काटलैंड वालों ने उन्हें गणित का ज्ञान देना प्रारम्भ किया तब से उस द्वीप के निवासियों में कई अच्छे गणितज्ञ सिद्ध हुए हैं। यह सब क्यों हुआ। केवल सामाजिक वंशपरम्परा के कारण। Murray द्वीप के निवासियों में गणित की स्वाभाविक योग्यता थी परन्तु उसको अभिव्यक्त करने के साधन नहीं थे।

दूसरी ओर हैलवीटस के अनुयायी इस बात को न मानने की भूल करते हैं कि हर व्यक्ति की साधारण तथा विशेष शक्ति भिन्न होती है। इस बात के कई प्रमाण ऊपर दिये जा चुके हैं। इतने प्रमाणों के होते हुए इस बात को असत्य समझना ठीक नहीं होगा कि बालक के विकास में उसकी स्वाभाविक निधि (inherited endowment) का बहुत बड़ा हाथ है।

अतः बालक के विकास में वातावरण तथा वंशपरम्परा दोनों ही का अलग अलग महत्व है।

—:०:—

अध्याय ६

अभिरुचि का मनोवैज्ञानिक अर्थ तथा अभिरुचि परीक्षा

(Psychology of Aptitude and Aptitude Tests)

अभिरुचि किसे कहते हैं—

मेरे लिये कौन सा व्यवसाय सबसे अधिक अनुकूल होगा ? मैं किस व्यापार में जाऊँ ? क्या मुझे प्रावैधिक विषय (technical course) में प्रशिक्षण लेना चाहिये ?

इस प्रकार के बार बार हमारे मन में प्रश्न उठा करते हैं। इस प्रकार के प्रश्न नवयुवक लोग अकसर वर्षों तैयारी करने के पहिले पूछा करते हैं। ये स्कूलों में अध्यापकों से हीं नहीं पूछे जाते अपितु सामाजिक कार्यकर्ताओं, रोजगार दफ्तर के संगठन कर्ताओं एवं व्यवस्थापकों से पूछे जाते हैं। इन लोगों तथा व्यवसाय मार्ग प्रदर्शन करने वाले (Professional vocational counselor) तथा मनोवैज्ञानिक सलाह देने वाले (Consulting Psychologists) आदि की सलाह भी वे लोग लिया करते हैं जो अपनी भावी योजनाओं व अपनी अभिरुचि के सम्बन्ध में संदिग्ध रहा करते हैं।

प्रश्न यह है कि अभिरुचि किसे कहते हैं ? मनोवैज्ञानिक के दृष्टिकोण में व्यक्ति की वह क्षमता जो उसे स्कूल साफल्य (school attainment) तथा व्यवसाय में सफलता प्रदान करती है उसकी अभिरुचि है। वारेन महोदय (Warren) ने अपने शब्दकोष में अभिरुचि (Aptitude) की परिभाषा इस प्रकार से दी है।

"Aptitude is a condition or set of characteristics regarded as a symptomatic of an individual's ability to acquire with training some (usually specified) knowledge, skill or set of responses such as the ability to speak a language, to produce music, etc."

अर्थात् अभिरुचि वह दसा या कुछ विशेषताओं का संग्रह है जो किसी व्यक्ति की योग्यता का परिचायक होता है जिसके द्वारा वह कुछ विशिष्ट उपयोगी ज्ञान, दक्षता या कुछ प्रतिक्रियायें सीख लेता है जैसे कि किसी भाषा को बोलने की योग्यता या संगीत उपस्थिति करने की क्षमताआदि। किसी व्यक्ति की गणित, कला, बढ़ईगीरी, कानून आदि के सम्बन्ध में उसकी अभिरुचि की ओर संकेत करते समय हम उसके भविष्य की ओर देखते हैं। लेकिन उसकी वर्तमाम दशा या उसके गुणों का प्रतिरूप (pattern of traits) उसकी क्षमताओं की सूचक हुआ करती हैं और उसी को हम अभिरुचि कहते हैं।

परिभाषा में इस बात के सम्बन्ध में कोई चर्चा नहीं का गई है कि दशा या कुछ विशेषताओं को अर्जित किया जाता है या वे जन्मजात होती हैं। बहुधा अभिरुचि से हमारा अभिप्राय व्यक्ति की केवल जन्मजात निधियों (endowments) से ही होता है। इस गलत विचारधारा के अनुसार अभिरुचि परीक्षायें (Aptitude Tests) व्यक्ति के स्वाभाविक झुकाव (Natural bent), विभिन्न स्वभावों की दृढ़ता, प्रवृत्तियों (Tendencies) और व्यक्ति के जन्मजात स्वभाव में पाई जाने वाली शक्तियों का चित्र हमारे सम्मुख प्रकट करेगीं और अनुभव द्वारा शक्तियों में किये गैए परिवर्तन के सम्बन्ध में ये परीक्षायें बिल्कुल ही चर्चा नहीं करेंगी। परन्तु ऐसा सम्भव नहीं है। कम से कम आज हमारे सहज सुलभ साधनों द्वारा ऐसा सम्भव नहीं है। अगर ऐसे साधन होते भी तो भी प्राप्य सामग्री या सूचना व्यक्ति को सलाह (Counselling) देने के लिए पर्याप्त न होती। हमें वयिक्त की अभिरुचि के लिये वर्तमान काल में उन विद्यमान तथ्यों की आवश्यकता होती है जो उसके भविष्य की क्षमताओं की द्योतक होती हैं। क्या वह इसी प्रकार से पैदा हुआ था ?— या वचपन में उसने स्थाई स्वभाव (disposition) अर्जित किये ? या उन

परिस्थितियों में उसमें परिपक्वता आई जिसने उसकी प्रारंभिक क्षमताओं में परिवर्तन उपस्थित किया ?:—आदि प्रश्न बड़े महत्वपूर्ण हैं। उसके विकास के काल में व्यक्ति की क्षमताऐं निश्चित रूप से उसके वातावरण व जन्मजात दशाओं के पारस्परिक प्रभाव की उपज होती हैं। उसकी हस्तकला सम्बन्धी कार्यों में दक्षता प्राप्त करने की क्षमता, उसकी बुद्धि, उसका संवेगात्मक संगठन, उसका नैतिक चरित्र—संक्षेप में उसके व्यक्तित्व के सभी पहलू विभिन्न मात्राओं में सीमाबद्ध होते हैं। वे सीमायें विकास व अभ्यास के शुभ अवसरों व उसके प्रारम्भिक स्वभाव के द्वारा निर्मित होती हैं। उसका स्वभाव प्रारम्भ में कैसा भी रहा हो, उसका प्रकट होना, उसका मूर्त रूप में आना, कभी प्रोत्साहित व कभी हतोत्साहित होना, आदि क्रियायें अनुकूल व विपरीत उत्तेजनाओं के अन्तर्गत हुआ करती है जो उसके वातावरण में घटित हुआ करती हैं जिनमें उसका विकास हुआ है। इसलिए नेतृत्व, विक्री अनुसन्धान, कलाप्रेम आदि के प्रति उसकी अभिरुचि का मूल्यांकन करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह वर्तमान समय में कैसा है न कि वह भूतकाल में कैसा हो सकेगा।

अभिरुचि से हमारा अभिप्राय केवल किसी कार्य को करने की क्षमतापूर्ण योग्यता ही नहीं हुआ करती बल्कि इसके अन्तर्गत उपयुक्तता (fitness) व सम्बन्धित क्रियायों में उसकी अनुकूलता, आदि चीजें भी आती हैं। किसी स्त्री की परिचर्या (Nursing) में अभिरुचि है या नहीं—इस बात का निर्णय की तब तक नहीं हो सकता जब तक कि उसकी आवश्यक योग्यता को प्राप्त करने सामर्थ्य तथा इन योग्यताओं के उचित अभ्यास करने में उसके सन्तोष की मात्रा ठीक ठीक न मालूम हो। अरुचिपूर्ण कार्य किसी व्यक्ति को उपयुक्त नहीं लगता। बहुत ज्यादा साधारण व सरल कार्य भी जो व्यक्ति की रुचियों को चुनौती न दे वह व्यक्ति के अनुकूल नहीं होता। अतः किसी की अभिरुचि का मूल्यांकन करते समय हमें उसकी किसी चीज को अर्जित करने की योग्यता के लक्षण, कार्य में वास्तविक रूप से व्यस्त रहने तथा कार्य कुशलता के सन्तोषजनक स्तर आदि चिन्हों को ध्यान में रखना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति किसी व्यवसाय में रुचि न रख सके और आवश्यक प्रवीणता प्राप्त न कर सके तो यह कहा जा सकता कि उसकी उस कार्य में अभिरुचि नहीं है क्योंकि उसमें आवश्यक प्रेरणा की कमी है।

अभिरुचि का स्वभाव (Nature of aptitude)—व्यक्ति की सभी क्षमताएँ एक सी बलवान नहीं होतीं। कोई व्यक्ति अन्य चीज़ों की अपेक्षा कुछ चीजें शीघ्र व अच्छी तरह से सीख लेता है। कुछ प्रकार की क्रियाओं में वह

अपनी रुचि व सन्तोष का विकास कर लेता है और अन्य क्रियायों में नहीं। यदि आप मेधावी अध्यापक हैं और अपनी व्यवसाय सम्बन्धी कार्यक्षमता भी आपके अन्दर है तो यह आवश्यक नहीं है कि आप एक अच्छे गवैये या कुशल इंजीनियर भी होंगे। आप प्रत्येक गुण में समान रूप से बढ़े चढ़े नहीं हो सकते।

प्रत्येक व्यक्ति क्षमताओं के अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं। सभी व्यक्ति समान रूप से पैतृक सम्पत्ति के रूप में निधियों को नहीं पाते और न समान रूप से अपना विकास ही कर पाते हैं। सर् फ्रैन्सिस गाल्टन (Sir Francis Galton) ने सर्व प्रथम व्यक्तिगत भिन्नता (Individual Differences) को सिद्ध किया। एक व्यक्ति एक कुशल कारीगर की क्षमता रखता है और दूसरा व्यक्ति यदि इस कार्य को अपनाये तो वह मूर्ख सिद्ध हो सकता है।

अभिरुचि का सिद्धान्त इस बात को प्रमाणित करता है कि व्यक्ति की क्षमताएं अधिकतर स्थाई होती हैं। यदि वह आज बांसुरी बजाने की क्षमता दिखाता है तथा एकाउन्टैन्सी सीखने में अपनी अयोग्यता के प्रमाण देता है तो हमें आश्चर्य होगा यदि कुछ दिन बाद उसकी अभिरुचि बिल्कुल विपरीति हो जावेगी। मानव स्वभाव इतना अस्थाई नहीं होता।

अभिरुचि परीक्षाएँ

विभिन्न क्रिया क्षेत्रों में प्रयोग करने के लिए विभिन्न अभिरुचि परीक्षायें हैं। विभिन्न व्यवसायों, व्यापारों और उद्योगों में, विस्तृत क्षेत्रों में लागू होने वाले और संकीर्ण क्षेत्रों में प्रयोग होने वाले क्रियाओं में जो स्कूलों में की जाती हैं अनेकों किस्म की परीक्षायें होती हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार की अभिरुचि परीक्षाएँ व्यक्ति की विशिष्ट योग्यताओं के रूप में उसकी उन क्षमताओं की जांच करती हैं जो पैतृक सम्पत्ति और सर्वसाधारण अनुभवों से प्राप्त होती हैं। जो योग्यताएं किसी विशिष्ट ट्रेनिङ्ग या शिक्षा से व्यक्ति में आती हैं उनका सम्बन्ध इन परीक्षाओं से नहीं है। इस प्रकार से अभिरुचि परीक्षाएँ बुद्धि परीक्षाओं के समान हैं यद्यपि उनका क्षेत्र अपेक्षाकृत संकीर्ण होता है।

साफल्य परीक्षाओं (Achievement tests) को भी अभिरुचि परीक्षाओं के समान प्रयोग किया जा सकता है। साफल्य परीक्षाओं और अभिरुचि परीक्षाओं में अन्तर केवल उनके उपयोगों में है न कि स्वयं परीक्षाओं में। वास्त विक बात तो यह है कि बहुत सी साफल्य परीक्षाएँ बहुत अच्छी किस्म की अभिरुचि परिक्षाएँ भी हो सकती हैं। भौतिक शास्त्र की साफल्य परीक्षा, औटोमोबाइल वैल्व सैटिंग (Automobile valve

setting) की व्यापार -परीक्षा, और स्लाइड रूल (Slide rule) के प्रयोग में योग्यता की परीक्षा (Proficiency Test) आदि ये सभी परीक्षायें अर्जित योग्यताओं का मापन करती हैं। ये इस बात को प्रकट करती हैं कि कुछ चीजें कितने अच्छे ढङ्ग से सीखी गई हैं परन्तु इन परीक्षाओं में व्यक्ति के प्राप्तांकों (Scores) को उसकी इन चीजों को सीखने की अभिरुचि की जाँच के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है। इसमें कोई आपत्ति नहीं है। यदि कोई नवयुवक इन तीन परीक्षाओं में—भौतिक-शास्त्र (Physics), valve setting, तथा Slide Rule की प्रयोग परीक्षा में उच्च अङ्क प्राप्त कर लेता है तो हम कह सकते हैं कि उसमें इंजीनियर बनने की क्षमता है।

क्लर्क व्यवसाय अभिरुचि परीक्षा

Clerical Aptitude Test

क्लर्कों के व्यवसाय की अभिरुचि के मापन के लिए दो प्रकार की परीक्षायें होती हैं—साधारण और विशिष्ट। साधारण परीक्षाएँ शाब्दिक बुद्धि-परीक्षाओं से मिलती जुलती हैं। विशिष्ट परीक्षाएँ उन योग्यताओं का मापन करती हैं जो व्यक्ति की क्लर्कों के उपयुक्त एक या एक से अधिक कार्यों को करने की क्षमता की परिचायक हुआ करती हैं–क्लर्कों के लिए फाइल का काम, आशुलिपिकला (Stenography), इक्षावाचन (Proof reading) या लेखांकन (accounting) के कार्य होते हैं। कुछ परीक्षाएँ साधारण व विशिष्टि दोनों प्रकार की योग्यताओं का मापन करती हैं।

आजकल क्लर्कों की अभिरुचि सम्बन्धी कई परीक्षाएँ सुलभ हैं। इनमें 'The Scott Company File clerk's Tests' पन्द्रह मिनट की एक परीक्षा है जिसका वर्षों से प्रयोग होता आरहा है। इसे साधारण Clerical Test और उसके प्रारम्भिक उद्देश्यों के रूप में प्रयोग किया गया है। इसके अन्तर्गत छः अन्य उप-परीक्षाएँ (Sub-Tests) आती हैं—

(Number checking—Name checking—Alphabetical filing—Numerical filing—topical filing and Comprehension of paragraph)। 'British National Institute of Industrial Psychology' के Clerical Test को हरबर्ट मूर (Herbert Moure) ने इंगलैंड में लागू करने के लिए थोड़ा बहुत दोहराया है। इस परीक्षा का मुख्य उद्देश्य है व्यक्ति की प्रत्येक कार्य करने की योग्यता का अनुमान लगाना। यह टैस्ट सात भागों में विभक्त है—(Oral Instructions, classification, Arithmetic, copying, checking and Problems)। अन्तिम भाग में बीस समस्यायें ऐसी हैं जो बुद्धि परीक्षाओं में भी रक्खी जाती हैं।

(Minnesota Vocational Test for Clerical Workers[१])

सर्वविदित Clerical Aptitude Tests में Minnesota Vocational Test है जो क्लर्क के काम करने वालों के लिए है और जो व्यक्तिगत व सामूहिक दोनों ही रूपों में प्रयोग किया जा सकता है। यह संख्या-तुलनात्मक (Number Comparison) और नाम-तुलनात्मक (Name Comparison) परीक्षाओं को मिलाकर बना है। यह परीक्षा जिन योग्यताओं की जाँच करती है वह क्लर्क-व्यवसाय के कार्यों के विस्तृत क्षेत्र (wide range) के लिए उपयुक्त व अपेक्षित अभिरुचियों की द्योतक होती है, जैसे —

रोज के कार्डों की छटाई (Routine card Sorting), सीधी टाइप (Straight typing), आशुलिपि कला (Stenography), फाइल का कार्य, रुपये पैसे का हिसाब (Casheering), संगणन (Computing), बुककीपिंग और लेखा जोखा रखने (Accountancy) आदि के लिए अभिरुचियाँ। इस परीक्षा की विश्वशनीयता (reliability) सन्तोषजनक है। इस परीक्षा का प्रयोग माध्यमिक शिक्षा से विश्वविद्याल शिक्षा के किसी स्तर तक किया जा सकता है। पूर्ण परीक्षा जिसे Long form कहा जाता है किसी एक व्यक्ति अथवा किसी समूह को पैंतीस से चालीस मिनट के लिए दिया जा सकता है। परीक्षा के प्रथम आधे भाग, जिसे Short form कहा जाता है, के देने में लगभग पच्चीस मिनट लग जाते हैं। प्रत्येक आधा भाग दो हिस्सों में है— प्रथम भाग में संख्याओं के दो सौ जोड़े हैं और दूसरे में दो सौ नामों के जोड़े हैं। परीक्षा के निर्देश इस प्रकार हैं—

"………If the two names or the two numbers of a pair are exactly the same, make a check mark (✓) on the line between them; if they are different, make no mark on that line." अर्थात् यदि जोड़े के दो नाम या संख्यायें बिल्कुल एक सी हैं तो (✓) चिह्न उन संख्याओं के बीच की रेखा पर लगा दीजिये यदि उन दो में भिन्नता है तो उस रेखा पर कोई चिन्ह न लगाइये।

सही रूप से किये गए संख्याओं के जोड़ों (Pairs) के नमूने निम्नांकित हैं—

79542————79524

✓
5794367————5794367

ऐसे ही सही रूप से किये गए नामों के जोड़ों को नमूने इस प्रकार से हैं—

१. The distributors of this tests are : 'Psychological Corporation, 522 Fifth Avenue, New York.

John C. Linder————John C. Lender

✓

Investors Syndicate————Investors Syndicate

परीक्षा के अभ्यास के लिए संक्षिप्त अभ्यासमाला दी जाती है जिससे निदशों को समझ सकने में कठिनाई न हो।

Short Form परीक्षा के लिए निर्धारित समय की सीमा इस प्रकार है—

1. Number Checking————8 minutes
2. Name Checking————7 minutes

कुल काम करने का समय	१५ मिनट

Long Form की समय सीमा इस प्रकार से है—

1. Number checking............८ मिनट
2. Name checking............७ मिनट
3. Number checking............७ मिनट
4. Name checking............६ मिनट

कुल काम करने का समय	२८ मिनट

जांचने का कार्य (Scoring)—सही पद वे माने जाते हैं जिनमें समान संख्या या नाम वाले जोड़े में (✓) में चिन्ह लगाया गया हो और भिन्नता वाले (differents) को रिक्त छोड़ दिया गया हो। हर एक परीक्षार्थी के प्राप्ताङ्क उसके सही पदों की संख्या में से गलत पदों की संख्या घटा देने से मालूम किये जा सकते हैं।

भिन्न-भिन्न प्रकार के सामान्य स्तर (Norms) इस परीक्षा के लिये दिये गये हैं। इन सामान्य स्तरों (Norms) तथा इनके महत्व का पूर्ण विवेचन प्राप्त करने के लिए Andrew and Paterson[१] की किताब देखिये।

आजकल बहुत से Clerical Aptitude Tests प्राप्त हैं। इन परीक्षाओं का गम्भीर अध्ययन इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य नहीं है। आजकल विभिन्न व्यवसायों के लिए अभिरुचियों (Aptitudes) के लक्षण संग्रह के लिए काफी प्रयत्न किये गए हैं। शिक्षण, कानून, इंजीनियरिंग, परिचर्या (Nursing) और ऐकाउन्टेन्सी आदि व्यवसायों की अभिरुचियों का पता लगाने के लिए गम्भीर

१. Dorothy M. Andrew and Donald G. Paterson : Measured characteristics of clerical workers' Minneapolis : University of Minnesota Press, 1934.

प्रयत्न किये गए हैं। हमारा विवेचन मुख्यतः शिक्षण व्यवसाय तक सीमित रहेगा।

शिक्षण व्यवसाय में अभिरुचि

(Aptitude for Teaching Profession)

शिक्षण व्यवसाय की अभिरुचि सम्बन्धी परीक्षाओं के उल्लेख से पूर्व आदर्श शिक्षक के गुणों तथा विशेषताओं का ज्ञान आवश्यक होगा। George Herbart Palmer[1] ने अपनी पुस्तक, "The teacher" में आदर्श शिक्षक का विशिष्ट वर्णन किया है। उसने चार गुणों की ओर संकेत किया है जिनकी अनुपस्थिति में उसे अपने व्यवसाय में बाधा पड़ेगी। सर्वप्रथम उसने सहानुभूति पूर्ण कल्पना (Synpathetic Imagination) का नाम लिया है जिसके अनुसार मस्तिष्क की वह विशेषता जिससे वह अन्य व्यक्ति की आवश्यकताओं, रुचियों व सीमाओं को समझ सके अर्थात् उसमें Altruistic Vicariousness के प्रति अभिरुचि हो। दूसरा गुण है ज्ञान की विस्तृत भूमिका। तीसरी विशेषता जिसका उल्लेख उसकी पुस्तक में मिलता है वह है बच्चे की रुचि को प्रदीप्त करना व बच्चे की क्रियाओं को और भी प्रबल बना देना। अन्तिम विशेषता उसके मतानुसार निष्पक्ष दृष्टिकोण अर्थात् प्रशंसा व मान के प्रति विराग।

अब प्रश्न उठता है कि एक नवयुवक जो शिक्षण व्यवसाय में आने को इच्छुक है वह किस विधि से जाने कि प्रोफेसर पामर के उल्लेखनीय सुनहले गुण उसमें विद्यमान है या नहीं ?

जहाँ तक बौद्धिक गुणों के मूल्यांकन का प्रश्न है वह सबसे सरल है। पढ़ने के समय व्यक्ति की प्रगति जो उसने अध्ययन में लगाई है इस बात की द्योतक हो सकती है किउसकी पढ़ने में रुचि है या नहीं। जिस व्यक्ति ने जूनियर या माध्यमिक स्कूलों में अपने बहुत से सहपाठियों को आसानी व सरलता से ज्ञान प्राप्त करने में हराया न हो उसे शिक्षण व्यवसाय में अपनी अभिरुचि का पता लगाने का कष्ट नहीं करना चाहिए। जो व्यक्ति शिक्षक होना चाहता है उसकी योग्यता विषय सामग्री को ग्रहण करने की क्षमता तक ही सीमित नही हैं। उसमें शिक्षा के उद्देश्यों व विधियों को ग्रहण करने की भी क्षमता होनी चाहिए। मान लीजिए कि एक विद्यार्थी मेधावी है, वह शीघ्र सीख लेता है और जो अध्ययन करता है उसमें पूरी तरह अधिकार कर

---

१. George Herbart Palmer. : 'The Teacher', Boston : Houghton Mifflin Co., 1908, pp. 3–30.

लेता है। इन गुणों के होते हुये भी प्रश्न यह है कि वह दूसरों को कहाँ तक पढ़ा सकता है ? उसकी अभिरुचि तब प्रकट होती है जब उसके सहपाठी उसके पास सहायता के लिए आते हैं। यदि उसे कठिन स्थलों की व्याख्या करने में आनन्द आता है, यदि उसने कठिन स्थलों की व्याख्या के लिए उचित व प्रभाव शाली विधियाँ निकाल ली हैं जिस कारण अधिक से अधिक विद्यार्थी उसके पास सहायता के लिए आते रहते हैं तो इस बात का प्रमाण मिल जाता है कि उसकी अभिरुचि शिक्षण के लिए है।

वैयक्तिक व सामाजिक योग्यताओं, जिनके अन्तर्गत सहानुभूतिपूर्ण कल्पना, और शिष्यों में तल्लीन रहने की रुचि आती है, के वगैर अध्यापक बच्चों में प्रेरणा, व सलाह देने औरउनको शिक्षित करने में असफल रहेगा। ये गुण कभी-कभी उसके बौद्धिक योग्यताओं से भिन्न श्रेणी में लिए जाते हैं जिन्हें वह अपने सीखने तथा सोचने में प्रकट करता है। शिक्षण की अभिरुचि विद्वता (Scholarship) के प्रति अभिरुचि से सर्वथा भिन्न होती है। यह कहा जाता है कि प्रथम प्रकार की अभिरुचि प्रारम्भिक व माध्यमिक स्कूलों में आवश्यक होती है। परन्तु व्यावसयिक स्कूलों व कालेजों में इसका थोड़ा सा ही महत्व है। इन स्कूलों में महत्व की वस्तु है अपने पढ़ाने के विषय में अधिकार। यह वस्तुतः सत्य ही है कि शिक्षा की सीढ़ियों में ज्यों-ज्यों आप वढ़ते जावेंगे विषय ज्ञान का महत्व आवश्यक रूप से बढ़ता जावेगा।

जिन व्यक्तियों में शिक्षण व्यवसाय के प्रति रुचि व अभिरुचि है उनको शुभ अवसरों को प्रदान कर बढ़ाया जा सकता है। उन्हें यदि शिक्षण व्यवसाय में आने का थोड़ा सा भी अवसर मिले तो इस व्यबसाय के प्रति उनकी अभिरुचि में वृद्धि हो सकेगी। सलाहकार (counsellors) और सिखाने वाले (Instructors), उन विद्यार्थियों को जो शिक्षण व्यवसाय में जाने को सोच रहे हैं, केवल शिक्षकों के कार्य बताकर ही मदद नहीं कर सकते बल्कि उन कार्यों में हाथ बटाने का भी अवसर उन्हें प्रदान करना चाहिये। उदा-हरण के तौर पर कमजोर सहपाठी की सहायता करना, शिक्षक के कमरे से बाहर जाने पर कार्य भार को सम्हालना, अंक प्रदान करना और प्रयोगशाला के लिए प्रदर्शन आदि कार्य में मदद करना आदि जिनमें भावी शिक्षक को आवश्यक ट्रेनिङ्ग दी जासकती है।

निम्नलिखित प्रश्नोंउत्तरों के द्वारा भी शिक्षक की अभिरुचि मालूम की जा सकती है :—

१. क्या आप वस्तुतः नवयुवकों या जिस उम्र के बच्चों को पठायेंगे उनमें दिलचस्पी रखते हैं ?

२. क्या आप दूसरों को अनुशासित कर सकेंगे या अनुशासन सम्बन्धी निर्देशन दे पावेंगे ?

३. क्या आप शिक्षकों के कार्य के प्रति उत्साह रखते हैं ?

४. क्या आप नई परिस्थितियों में अपने को अनुकूल (adjust) बना सकेंगे ? आदि ।

प्रशिक्षण महाविद्यालयों ने भी, जो शिक्षकों को ट्रेनिङ्ग देते हैं, कोई ऐसा तरीका नहीं निकाला है जिससे पहिले से ही वे निश्चित कर लें कि अमुक व्यक्ति ने पूर्वोक्त गुणों को प्राप्त कर लिया हो या वह व्यक्ति उन गुणों को प्राप्त कर सकता है या नहीं । प्रवेश के समय साक्षात्कार (Interview) द्वारा व्यक्ति की परिसीमाओं अथवा कमियों का दिग्दर्शन हो सकता है । उसकी ग्रहण शक्ति और मानसिक सक्रियता का परिचय स्कूल रेकार्ड द्वारा लग सकता हैं । अंगरेजी, हिन्दी और गणित की परीक्षा तथा विशिष्ट बौद्धिक परीक्षाएँ जैसे Coxe-Orleans Prognosis Test of Teaching Ability[1] भी उपयोगी होगी । इस परीक्षा का अनुसंधान W. W. Coxe और J. S. Orleans ने साधारण स्कूलों में पढ़ाई सम्बन्धी विषय सामग्री को समझने की योग्यता को नापने के लिए किया था । यह टेस्ट पाँच भागों में है—व्यक्ति का सामान्य ज्ञान, पढ़ाई के तरीकों तथा अभ्यासों का ज्ञान जिसे उसने एक विद्यार्थी के रूप में स्वयं निरीक्षण किया हो, व्यावसायिक पुस्तकों में संग्रहीत ज्ञान को सीखने की क्षमता जो शिक्षक प्रशिक्षण के पाठ्यक्रमों में होता है, शिक्षण सामग्री को सीखने की योग्यता और शैक्षिक समस्याओं के अध्ययन और उनके हल को समझने की योग्यता आदि । इस परीक्षा का प्रयोग करने का समय लगभग तीन घंटे है । विस्तृत निर्देशन और जाँचने की कुंजी (Scoring Key) मुद्रक से प्राप्त किये जा सकते हैं ।[1]

इङ्गलैंड में मनोवैज्ञानिकों व शिक्षकों के सम्मुख सबसे बड़ी समस्या यह होती है कि प्राइमरी स्कूल के बच्चों की अभिरुचि शैक्षिक, तथा अमूर्त (abstract) अथवा किताबी शिक्षा के प्रति है या व्यावहारिक, रचनात्मक, उत्पादक तथा प्रावैधिक शिक्षा (Technical education) के प्रति है ?

इस बात का पता लगाना कि बच्चे की अभिरुचि किस प्रकार की शिक्षा के लिए है यह समस्या इङ्गलैंड के शिक्षा शास्त्री व मनोवैज्ञानिकों दोनों के सम्मुख है । वहाँ पर बच्चों को उनकी योग्यता व अभिरुचि के अनुसार उपयुक्त शिक्षा दी जाती है । आप प्रश्न पूछ सकते हैं कि ग्रामर (Grammar)

१. Distributors—World Book Co. Yonkers, N. Y.

तथा टैकनिकल स्कूल (Technical School) के वियषों के प्रति अभिरुचि का निर्धारण कैसे किया जाता है ?—हम इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करेंगे। ग्रामर स्कूल के विषयों के प्रति अभिरुचि का पता लगाने में काफी सफलता मिली है—इस सम्बन्ध में काफी प्रमाण मिले हैं।

Peel और Rutter तथा Emmett और Wilmut ने सिद्ध कर दिया कि स्कूल सार्टिफिकेट के विषयों की सफलता (Performance) का अनुमान अंकगणित, अंग्रेजी तथा बुद्धि परीक्षा द्वारा पाँच वर्ष पूर्व कर लिया जा सकता है।

टैकनिकल स्कूल की अभिरुचियों के प्रमाण इतने विस्तृत नहीं है परन्तु उनका सम्बन्ध गुणक प्राप्त हो चुका है जिसकी तुलना ग्रामर स्कूल विषयों की परीक्षाओं से की जा सकती है। Peel और Lambert, Watts और Slater, आदि सभी इस बात की पुष्टि करते हैं कि प्रावैधिक (technical), कला, लकड़ी के कार्य (Wood work), धातु के कार्य (Metal work) आदि की भविष्य वाणी परीक्षाओं द्वारा आसानी से की जा सकती है। बर्मिन्घम युनिवर्सिटी में किये हुए कार्य आधार पर यह भी निश्चित हो चुका है कि इंजीनियरिंग, ड्राइंग, व्यावहारिक ज्यामिति और इमारत आदि के लिए भी अभिरुचियों का पता लगाया जा सकता है।

यदि अभिरुचि परीक्षा के प्राप्तांकों तथा बाद में साफल्य परीक्षाओं के अङ्कों या किसी व्यवसाय में प्राप्ताङ्कों में उच्च सह सम्बन्ध-गुणक प्राप्त होता है तो हम कहते हैं कि अभिरुचि परीक्षा में भविष्यवाणी सम्बन्धी वैधता है। जिस अभिरुचि परीक्षा में भविष्य वाणी सम्बन्धी वैधता नहीं होती वह निरर्थक है।

—:*:—

अध्याय १०

स्कूल के किसी विषय में साफल्य परख का निर्माण, प्रयोग, तथा प्रमामीकरण

साफल्य परख की परिभाषा:—साफल्य परख एक ऐसी परख है जो निश्चित विषय क्षेत्र में विद्यार्थियों की आपेक्ष परिपूर्ति (relative achievement) को माप सके। इस प्रकार की परख में प्राप्त किये हुए अङ्क (Score) किसी विद्यार्थी की किसी एक निश्चित बिषय क्षेत्र में सफलता का अनुभव कराती है।

साफल्य परख की सहायता से विद्यार्थियों को स्कूल विषयों में उनकी सफलता के अनुसार निश्चित श्रेणी (rank) में रखा जाता है। उनकी सफलता का माप कोई प्रकेवल एकक (arbsolute unit) नहीं होता है। इस परख में कोई आनुमानिक प्रमाप (abitrary standard) जैसे पारित श्रेणीकरण (Passing grade) सफलता मापने में प्रयोग में नहीं लाया जाता है।

स्कूल के किसी विषय में सामान्य साफल्य परख तैयार करने के पहले दो बातों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

(१) परख से क्या मापन करना है ?

(२) परख से किस प्रकार मापन करना है ?

१—परख से क्या मापन करना है ?:—इस प्रश्न के अनुसार

किसी निश्चित विषय क्षेत्र से सम्बन्धित मुख्य प्राप्य उद्देश्यों को ध्यान में रखना आवश्यक होता है। किसी भी विषय को पढ़ाने के हेतु शिक्षक कुछ प्राप्य उद्देश्य (Objectives) को ध्यान में रखता है जिससे कि विद्यार्थियों के व्यवहार में कुछ परिवर्तन हो सके। रसायन विज्ञान में शिक्षकों के प्राप्य उद्देश्य विद्यार्थियों में सिद्धान्त और तथ्य का ज्ञान कराना, रासायनिक पुस्तकों तथा प्रकाशनों में जो पारिभाषिक शब्द आते हैं उनका ज्ञान कराना और रासायनिक सिद्धान्तों का दैनिक जीवन में प्रयोग करवाना, आदि हैं। रसायन विज्ञान की वही अच्छी परख समझी जा सकती है जिसके द्वारा उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति हो सके। जो बात रसायन विज्ञान के लिये सत्य है वही स्कूल के अन्य विषयों के लिये भी। वास्तव में हमारा परख देने का मुख्य ध्येय यही होता है कि यह ज्ञात हो सके कि विद्यार्थियों ने किस सीमा तक प्राप्य उद्देश्यों की पूर्ति की है। इसलिये किसी स्कूल के विषय के मापन हेतु निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

(१) किसी निश्चित विषय क्षेत्र (school subject) में अध्यापन के प्राप्य उद्देश्यों को निर्धारित करना।

(२) पाठ्य पुस्तक तथा पाठ्य-क्रम का विश्लेषण करना। पाठ्य-क्रम (Curriculum) तथा पाठ्य-पुस्तक (Text book) का विश्लेषण करना इसलिये अनिवार्य है क्योंकि इससे यह प्रतीत होगा कि परख के प्रश्न उस कक्षा के अनुकूल हैं या नहीं जिसके हेतु उसे तैयार किया गया है।

(३) प्राप्य उद्देश्यों की व्याख्या करना तथा उनका विश्लेषण करना। प्रत्येक प्राप्य उद्देश्यों की व्याख्या इस प्रकार होनी चाहिये जिससे यह स्पष्ट हो जावे कि विद्यार्थी में किस प्रकार का व्यावहारिक परिवर्तन होना चाहिये।

२—**परख से किस प्रकार मापन करना है ?** :—यहाँ प्रश्न आता है कि किस प्रकार परख बनाई जाय तथा उसका प्रयोग किया जाय। इसका संक्षिप्त क्रम नीचे दिया गया है :—

(१) परख निर्माण हेतु पदों (items) का निर्माण किया जाता है। पदों के निर्माण करने में प्राप्य उद्देश्य व पाठ्यक्रम को ध्यान में रखना आवश्यक है ताकि हर एक पद वैध हो। इन पदों को संदिग्ध (ambiguous) नहीं होना चाहिये। परख में पदों को भिन्न-भिन्न रूपों में रखा जा सकता है। जैसे—बहु निर्वचन रूप (Multiple choice type), एकान्तर प्रत्युत्तर (Alternate response), Matching type, वर्गीकरण (classifieation), साधारण प्रत्यास्मरण (Simple recall), और रिक्तस्थान पूर्ति (Completion)। यदि

परख में भिन्न-भिन्न प्रकार के पद हों तो उनको अलग-अलग विभागों में रखना चाहिये।

(२) प्रत्येक विभाग के पदों के ऊपरी भाग में सही और आवश्यक आदेश होने चाहिये। परख के बाह्य पत्र में परख लेने से सम्बन्धित आदेश होने चाहिये। परख में प्रयोग हुए शब्द साफ और स्थूल होने चाहिये। अशुद्धियाँ तथा छपाई की भूल का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

(३) प्रथम परख का प्रयोग एक ऐसे समूह में होना चाहिये जिसमें काफी विचरण-शीलता (variability) हो। इस परख के लिये समय निर्धारित नहीं होना चाहिये। वह समय नोट कर लेना चाहिये जिसमें कि ८०% विद्यार्थी परख के सभी पदों का उत्तर दे सकें।

(४) इसके उपरान्त परख में अङ्क दिये जाते हैं। जहाँ आवश्यक होता है शुद्धि सूत्र (Guess formula) का प्रयोग किया जाता है।

(५) इसके पश्चात् परख की विश्वसनीयता (reliability) तथा वैधता (validity) ज्ञात की जाती है।

(६) प्रत्येक पद (item) का विश्लेषण करने पर उसका विभेदकारी मान (discriminating value) ज्ञात किया जाता है। वे पद जिनका कोई विभेदकारी मान नहीं आता या ऋणात्मक विभेदकारी मान आता है उनको परख में से अलग कर लिया जाता है।

(७) अन्तिम परख (final test) की पूर्ति पद विश्लेषण के बाद होती है। केवल वही पद अन्तिम परख में रखे जाते हैं जिनका धनात्मक(Positive) विभेदकारी मान हो। आदेश (directions) प्रथम परख को ध्यान में रखते हुए शुद्ध किये जा सकते हैं। अन्तिम परख के बाहरी पृष्ठ पर परख हल करने के लिये निश्चित समय लिखा होता है।

(८) अन्तिम परख एक बार फिर एक बड़े नमूने (sample) में प्रयोग की जाती है। कम से कम २००० परीक्षार्थियों की परीक्षा ली जानी चाहिये।

(९) इस अन्तिम परख में फिर अङ्क प्रदान किये जाते हैं। परख की विश्वसनीयता तथा वैधता ज्ञात की जाती है।

(१०) इसके पश्चात् विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का औसत (average) निकाला जाता है। इसको सामान्य-स्तर (norm) कहते हैं। सामान्य स्तरों के आधार पर भिन्न-भिन्न परीक्षार्थी को दिये अंकों की तुलना की जा सकती है। सामान्य स्तर कई प्रकार के होते हैं, जैसे—

श्रेणी सम्बन्धित सामान्य-स्तर (grade norm), लिङ्ग सम्बन्धित सामान्य स्तर (sex norm) और शहर तथा ग्राम सम्बन्धित सामान्य स्तर (urban

and rural norm) । अधिकतर प्रतिशतीय सामान्य स्तर 'Percentile norm' तथा प्रमाप सामान्य स्तर 'standard score norm' का प्रयोग किया जाता है । कोई भी परख प्रमापीकृत परख तब कहलाती है जब कि उसका सामान्य-स्तर ज्ञात हो, क्योंकि सामान्य-स्तर के आधार पर ही हम किसी विद्यार्थी की किसी निश्चित परख में योग्यता का स्तर ज्ञात कर सकते हैं ।

(११) परख के सामान्य-स्तर ज्ञात करने के उपरान्त उसकी व्याख्या (interpretation) की जाती है । इसका उदाहरण इसी अध्याय में आगे दिया है ।

कभी-कभी परीक्षक विद्यार्थियों की शिक्षा-लब्धि (Educational Quotient), साफल्य लब्धि (Achievement or Attainment Quotient) भी ज्ञात करता है ।

शिक्षा लब्धि (Educational Quotient)

$$= \frac{\text{शिक्षा-आयु (Educational Age)}}{\text{वर्षायु (Chronological Age)}} \times १००$$

शिक्षा-आयु ज्ञात करने के हेतु विद्यार्थी की भिन्न-भिन्न विषयों में प्राप्त साफल्य आयु (Achievement age) को जोड़ कर उसमें विषयों की संख्या के योग का भाग दे देते हैं । किसी विद्यार्थी की साफल्य आयु (Achievement age) किसी विषय विशेष में उसकी वर्षायु (Chronological age) के वास्तविक स्तर द्वारा ज्ञात होती है । यदि एक ८ वर्ष का विद्यार्थी १० वर्ष के सामान्य बालक के लिये तैयार की गई अङ्ग्रेजी की परख में उत्तीर्ण हो जाता है तो उनकी साफल्य आयु १० वर्ष होगी ।

साफल्य लब्धि (Achievement Quotient) निम्नलिखित सूत्र द्वारा ज्ञात की जाती हैं :—

साफल्य लब्धि (Achievement Quotient)

$$= \frac{\text{शिक्षा आयु (Educational age)}}{\text{मानसिक आयु (mental age)}} \times १००$$

साफल्य परख के प्रयोग का उदाहरण—लेखक ने एक विज्ञान परख का प्रयोग उत्तरप्रदेश के कुछ स्कूलों में तथा इङ्गलैंड के कुछ स्कूलों में किया । जो परख प्रयोग में लाई गई उसका हिन्दी अनुवाद इस अध्याय के अन्त में दिया गया है । यह परख इङ्गलैंड के Fourth Form के विद्यार्थियों तथा भारतवर्ष के १० वीं, ११ वीं, तथा १२ वीं कक्षा के विद्यार्थियों में प्रयोग की गई । इस परख को प्रयोग करने के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिये ।

परख के प्रयोग करने के लिए साधारण आदेश—

(१) अध्यापकों तथा परीक्षकों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जहाँ यह परख काम में लाई जाय वहाँ सब परीक्षार्थियों के लिये वातावरण व दशायें एक समान हों। बालकों की मानसिक तथा शारीरिक दशा सामान्य (normal) हो। बच्चों को उनके घर के लोगों के सामने परख नहीं देनी चाहिए।

(२) यह अच्छा होगा कि यदि परख को पेंसिल से हल किया जाय। परीक्षक को अपने पास कुछ पेंसिलें रखनी चाहिए ताकि आवश्यकता पड़ने पर वह परीक्षार्थी को दे सके।

(३) परख के लिये निश्चित किये हुए समय को ध्यान में रखना चाहिये। कभी भी कम या अधिक समय नहीं देना चाहिये। इस विज्ञान परख का समय ४० मिनट है।

(४) इस प्रकार की परखों में परीक्षार्थी को नकल करने में सुविधा रहती है इसलिए यह अनिवार्य हो जाता है कि उनकी बैठने की व्यवस्था काफी दूर हो जिससे कि वे नकल न कर सकें।

(५) जब परख शुरू हो जाती है तो उसके बाद विद्यार्थी को किसी प्रकार की बात पूछने की आज्ञा नहीं देनी चाहिए। परीक्षक भी परीक्षार्थी को किसी प्रकार की मदद न दे।

(६) परख को वर्ष के उस निश्चित महीने में प्रयोग करना चाहिए जिसके लिये उसको बनाया गया हो। तभी उस परख के सामान्य स्तर (norms) काम में लाये जा सकते हैं। इस विज्ञान परख को भारतीय स्कूलों में अगस्त या सितम्बर के महीने में प्रयोग करना चाहिये।

परख प्रयोग करने की विधि—

१—जब परीक्षक कक्षा की व्यवस्था ठीक कर लेता है तो परखों को बाँट देता है। परख को खुली अवस्था में नहीं बाँटना चाहिए। परीक्षार्थियों को कह दिया जाता है कि जब तक उनसे कहा न जाय परख को न खोलें।

तब परीक्षक कहता है—

"पेंसिल से अपना नाम लिखो। वर्षों एवं महीनों में अपनी आयु लिखो। अपने स्कूल, स्थान एवं अपनी कक्षा का नाम तथा आज की तारीख लिखो। अब यह लिखो कि तुमने साधारण विज्ञान या विज्ञान कितने वर्ष पढ़ा है। लिखना समाप्त करने पर अपना हाथ उठा दो।"

२—जब सब परीक्षार्थी नाम आदि लिख चुकते हैं तो परीक्षक कहता है—

"ऊपर के पृष्ठ पर लिखे गये आदेशों को देखो। जब मैं पढ़ूँ तब तुम

समझते चलो ।" परीक्षक पृष्ठ के ऊपर लिखे साधारण आदेशों को पढ़ता है और समझाता है ।

साधारण आदेश—

(१) "इस पत्र की बाईं ओर को तुम अपने अभ्यास कार्य के लिये प्रयोग कर सकते हो ।

(२) जब तक परीक्षक न कहे इस पत्र को मत खोलो ।

(३) इस पत्र के तीन भाग हैं और इसको करने का समय ४० मिनट है ।

(४) प्रत्येक भाग के आरम्भ में, उसे करने के लिये आवश्यक आदेश दिये गये हैं उन्हें ध्यान से पढ़ो और तुरन्त ही कार्य आरम्भ करो ।

(५) किसी भी प्रश्न पर अधिक समय न लगाओ । पहले पहल सरल प्रश्नों को कर डालो । यदि समय शेष रहे तो कठिन प्रश्नों को करो ।

(६) प्रत्येक भाग के लिये कोई निश्चित समय नहीं है ।

(७) तुमसे यह आशा है कि प्रत्येक भाग के जितने अधिक से अधिक प्रश्न तुम कर सकते हो करोगे ।

(८) उत्तरों को अन्दाज से मत लिखो क्योंकि अन्दाज से तुम्हारे प्राप्ताङ्क कम हो जावेंगे ।

(९) पेंसिल से ही लिखो । यदि किसी उत्तर को बदलना हो तो उसे रबड़ से मिटा कर साफ साफ लिखो ।"

तब परीक्षक कहता है—

"परीक्षा के लिये केवल ४० मिनट हैं ।"

३—जब परीक्षक यह देख लेता है कि सब परीक्षार्थी परख के लिये तैयार हैं और सब व्यवस्था ठीक है तो वह अपनी घड़ी को कार्यान्वित करता है और कहता है ! "अपनी पुस्तिका का प्रथम पृष्ठ खोलो, प्रारम्भ करो ।"

४—२० मिनट बाद परीक्षक कहता है :—

"केवल २० मिनट शेष हैं ।"

फिर अगले २० मिनट बाद परीक्षक कहता है :—

"रुक जाओ । पेंसिल नीचे रख दो । पुस्तिकायें बन्द कर दो । अपने हाथ में पुस्तिका लेकर खड़े हो जाओ ।"

इसके बाद परीक्षक पुस्तिकाएँ इकट्ठी कर लेता है ।

अङ्क प्रदान करने की विधि—

(१) अंक प्रदान करने के लिये रङ्गीन पैंसिल का प्रयोग करना चाहिये ।

(२) हर परख के साथ उसकी कुंजी (scoring key) दी रहती है ।

अंक प्रदान करने के लिये परीक्षक को इस कुंजी का उपयोग करना चाहिये। इस अध्याय के अन्त में विज्ञान परख की कुंजी दी गई है।

(३) जिन प्रश्नों में अनुमान (guessing) द्वारा उत्तर देने की सम्भावना होती है उनमें अंक प्रदान करते समय शुद्धि सूत्र (correction formula) का प्रयोग करना चाहिये। शुद्धि सूत्र इस प्रकार है :—

$$S = R - \frac{W}{N-1}$$

S = अनुमान के लिये शुद्ध किये हुये अंक (scores corrected for guessing)

R = सही उत्तरों की संख्या

W = गलत उत्तरों की संख्या

N = प्रत्येक प्रश्न के वैकल्पिक उत्तर (alternatives)

(४) विद्यार्थी द्वारा प्राप्त अङ्कों को प्रतिशतीय अङ्कों (percentile scores) में परिवर्तित करने के लिए इस अध्याय के अन्त में दिये हुए सामान्य स्तर टेबुल (table of norms) का प्रयोग करना चाहिये।

परख के परिणामों की व्याख्या (Interpretation)—हर परख को प्रयोग करने के उद्देश्य भिन्न होते हैं और इसलिये व्याख्या भी भिन्न होती है। उदाहरणार्थ इस विज्ञान परख को प्रयोग करने का उद्देश्य इस बात का ज्ञान प्राप्त करना था कि इङ्गलैंड के Fourth Form के विद्यार्थियों (औसत आयु १४ वर्ष ११ महीना) तथा भारतवर्ष के दशवीं कक्षा के विद्यार्थियों (औसत आयु १४ वर्ष १० महीना) में कौन सामान्य विज्ञान में अधिक अच्छे हैं। साथ ही इस बात का भी ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया कि भारतवर्ष के किस कक्षा के विद्यार्थी इङ्गलैंड के Fourth Form के विद्यार्थियों से सामान्य विज्ञान योग्यता में मिलते जुलते हैं।

परख का प्रयोग करने के पश्चात् हर कक्षा के विद्यार्थियों के प्राप्ताङ्कों का मध्यमान आदि निकाला गया। यह पूरा वर्णन यहाँ अनुकूल न होगा। इस परख के प्रयोग से यह ज्ञात हो गया कि इङ्गलैंड के Fourth Form के विद्यार्थी (औसत आयु १४ वर्ष ११ महीना) भारतवर्ष के १२वीं कक्षा के विद्यार्थियों (औसत आयु १७ वर्ष ४ महीना) से सामान्य विज्ञान योग्यता में मिलते जुलते हैं। इस प्रकार इङ्गलैंड तथा भारतवर्ष के विद्यार्थियों की सामान्य विज्ञान योग्यता में २$\frac{१}{२}$ वर्ष का अन्तर है। इस अन्तर के अनेकों कारण हो सकते हैं जिनका वर्णन यहाँ पर उचित न होगा।

इस परख द्वारा इस बात का भी ज्ञान हुआ कि भारतीय विद्यार्थियों को विज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली (Terminology) में कठिनाई होती है। कुछ Terms ऐसे हैं जो कई प्रकार से लिखे जाते हैं, जैसे—कैनाइन (canine) को कैनाइन या कील दांत या छेदन दांत कहते हैं। इसलिये इस बात से कभी-कभी विद्यार्थी भ्रम में पड़ जाते हैं।

इस परख के प्रयोग से यह मालूम हुआ कि विद्यार्थी इकाइयों का बहुत कम ज्ञान रखते हैं। साधारण चीजों की इकाइयों में वे गलतियाँ करते हैं। वही विद्यार्थी विज्ञान में अपने भाव स्पष्ट कर सकता है जिसको इकाइयों का ज्ञान भली भाँति हो।

परख ने इस बात की भी पुष्टि की कि भारतवर्ष तथा इङ्गलैन्ड दोनों देशों में लड़के लड़कियों से विज्ञान की योग्यता में आगे हैं।

इस परख के प्रयोग से भिन्न-भिन्न स्कूलों के विज्ञान के स्तर का भी ज्ञान किया जा सका।

पाठक इस परख का पूरा वर्णन निम्नलिखित पुस्तक में पढ़ सकते हैं।

D. S. Rawat, 'A Comparative study of the standard of general science in certain secondary Schools in England and in U. P. (India) for Pupils of a chosen Age Range." M. A. Education Thesis, Birmingham University, 1956-57.

किसी भी परख को प्रयोग करने के पश्चात् उसकी व्याख्या करना अनिवार्य है अन्यथा परख का कोई महत्व नहीं है। परख प्रयोग करने के पश्चात् सामान्य-स्तर के आधार पर भिन्न-भिन्न विद्यार्थियों की योग्यता की तुलना की जा सकती है। भिन्न-भिन्न स्कूलों के पाठ्यस्तर की भी तुलना की जा सकती है। यह सब कुछ तभी हो सकता है जब कि परख प्रमाप परख (standard test) हो अन्यथा हमारी तुलना के परिणाम सही नहीं होंगे।

आगे के पृष्ठों में लेखक द्वारा निर्माण की हुई विज्ञान परख, उसकी कुंजी तथा विद्यार्थियों के अंकों को प्रतिशतीय अंकों (percentile scores) में बदलने के लिये टेबुल (table) दिये गये हैं।

"साधारण विज्ञान परीक्षा"

by

D. S. Rawat

निम्न स्थान भरिये **समय—४० मिनट**

नाम.................................

(स्पष्ट लिखिये)

विद्यालय का नाम..................

तुम्हारी आयु वर्ष मास तुम्हारा लिंग

(लड़का या लड़की)

साधारण विज्ञान या विज्ञान, तुमने कितने वर्ष पढ़ा है (वर्षों की संख्या)

साधारण आदेश—

१—इस पत्र की बाईं ओर को तुम अपने अभ्यास कार्य के लिए प्रयोग कर सकते हो।

२—जब तक परीक्षक न कहे इस पत्र को मत खोलो।

३—इस पत्र के तीन भाग हैं और इसे भरने का समय ४० मिनट है।

४—प्रत्येक भाग के आरम्भ में, उसे करने के लिये आवश्यक आदेश दे दिये गए हैं। उन्हें ध्यान से पढ़ो और तुरन्त ही कार्य आरम्भ करो।

५—किसी भी प्रश्न पर अधिक समय न लगाओ। पहले पहल सरल प्रश्नों को करो।

१२

६—प्रत्येक भाग के लिए कोई निश्चित समय नहीं है।

७—तुम से यह आशा है कि प्रत्येक भाग के जितने अधिक से अधिक प्रश्न तुम कर सकते हो करोगे।

८—उत्तरों को अन्दाज से मत लिखो क्योंकि अन्दाज से तुम्हारे प्राप्तांक कम हो जावेंगे।

९—पेन्सिल से ही लिखो। यदि किसी उत्तर को बदलना हो तो उसे रबड़ से मिटा कर साफ-साफ लिखो।

भाग १

आदेश—नीचे के अधिकांश विभाग दो स्तम्भों में बँटे हुए हैं। प्रथम स्तम्भ के प्रत्येक प्रश्न का उत्तर दूसरे स्तम्भ में दिया गया है। तुम्हें सही उत्तर ढूँढ़ना है। इस उत्तर के कोष्टक में लिखे हुए अक्षर को प्रथम स्तम्भ के बाईं ओर सामने वाले खाली कोष्टकों में लिखना है। उदाहरण के लिये पहले प्रश्न को हल कर दिया गया है। इसी प्रकार बाकी आठ विभागों के प्रश्नों को जहाँ तक तुम कर सकते हो करो।

प्रथम विभाग—नीचे लिखे पदार्थों के एक अणु के लिये कौन सा रसायनिक सूत्र है?

(अ)	१—नाइट्रिक आक्साइड	(अ) H_2SO_4
( )	२—अमोनियम क्लोराइड	(आ) $KMnO_4$
( )	३—नाइट्रस आक्साइड	(इ) NaCl
	४—शोरे का अम्ल या नाइट्रिक एसिड	(ई) $CaCO_3$
( )	५—पोटास	(उ) $(NH_4)_2SO_4$
( )	६—गन्धक का अम्ल या सलफ्यूरिक एसिड	(ऊ) HNO_3
( )	७—हाइड्रोजन सल्फाइड (सल्फ्यूरेटेड हाईड्रोजन)	(ए) NH_4OH
( )	८—अमोनियम सल्फेट	(ऐ) NH_4Cl
( )	९—सोडियम क्लोराइड	(ओ) H_2S
		(औ) N_2O
		(अं) $Ca(OH)_2$
		(अः) NO

द्वितीय विभाग—निम्नलिखित को किन इकाइयों में नापते हैं?

( )	१—घनत्व	(क) फुट पौन्ड

( ) २—ताल की शक्ति (ख) सेन्टी मीटर, प्रतिसेकिन्ड, प्रति-सेकिन्ड

( ) ३—गुप्त ताप (ग) ऐम्पीयर

( ) ४—कार्य (घ) वोल्ट

( ) ५—ताप की मात्रा (ङ) डाइन

( ) ६—विभव अन्तर (च) फुट पौन्ड प्रति सेकिन्ड

( ) ७—बल (छ) ग्राम प्रति घ०सेन्टीमीटर

( ) ८—शक्ति (ज) कैलोरीज

( ) ९—दबाव (झ) डाइप्टर (Dioptre)

( ) १०—विद्युत धारा (ञ) कैलोरीज प्रति ग्राम

(ट) पौन्ड भार

(ठ) पौन्ड भार प्रति वर्ग इंच ।

तृतीय विभाग—नीचे बाईं ओर नौ विधियाँ दी हुई हैं। दाहिनी ओर उन्हीं के दस वर्णन दिए हुए हैं। ये वर्णन क्रम से नहीं हैं। विधियों के उपयुक्त वर्णन ढूँढ़कर उनके कोष्टकों के अक्षरों को बाईं ओर दिए गए खाली कोष्टकों में भरो।

( ) १—संचालन (अ) एक अनघुल पदार्थ किसी द्रव से अलग करने की विधि।

( ) २—विद्युत विश्लेषण (आ) एक पारदर्शक माध्यम से दूसरे पारदर्शक माध्यम को तिरछी जाने वाली प्रकाश की किरण का झुक जाना।

( ) ३—सम्वहन (इ) ठोसों में एक बिन्दु से दूसरे तक ताप जाने की विधि।

( ) ४—आवर्तन (ई) घुले हुए पदार्थ को द्रव से अलग करने की विधि।

( ) ५—स्रावन (उ) द्रव में ताप का एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु तक जाने की मुख्य विधि।

( ) ६—विकिरण (ऊ) कोष से पानी निकल जाने पर उसके प्रोटोप्लाजम का सिकुड़ना और बैठ जाना।

( ) ७—वाष्पीकरण (ए) घोल में स्थित द्रवों तथा पदार्थों का

शोषक तथा अर्धशोषक झिल्लियों से होकर प्रवेश करने की विधि ।

( ) ८—रसकाच (ऐ) विद्युत धारा द्वारा किसी पदार्थ का रासायनिक विश्लेषण करने की विधि ।

( ) ९—रसाकर्षण (ओ) किसी घोल से शुद्ध जल प्राप्त करने की विधि ।

(औ) बीच के माध्यम को बिना अच्छी तरह गर्म किए हुए ताप की किसी स्थान से हम तक पहुँचने की विधि ।

चतुर्थ विभाग—नीचे दिये हुये प्रथम स्तम्भ की सामान्य संज्ञाओं के रासायनिक नाम बताओ ।

( ) १—खड़िया (क) कॉपर सल्फेट
( ) २—बुझा चूना (ख) सोडियम क्लोराइड
( ) ३—नीला थोथा (ग) जिन्क सल्फेट
( ) ४—धोने का सोडा (घ) कैल्सियम कारबोनेट
( ) ५—शोरा (ङ) पोटैशियम हाइड्रोऑक्साइड
( ) ६—साधारण नमक (च) कैल्शियम सल्फेट
(छ) सोडियम कारबोनेट
(ज) सोडियम हाइड्रो ऑक्साइड
(झ) कैल्सियम हाइड्रो ऑक्साइड
(ञ) सोडियम नाइट्रेट
(ट) जिन्क कारबोनेट
(ठ) पोटैशियम नाईट्रेट ।

पंचम विभाग—आगे दिया गया रेखा चित्र आँख की बनावट दिखलाता है । रेखा चित्र में कौन सा तीर सूचक निशान नीचे लिखे भागों को सूचित करता है ?

( ) १—कार्निया
( ) २—तारा
( ) ३—दृष्टि नाड़ियाँ
( ) ४—मूर्ति-पट
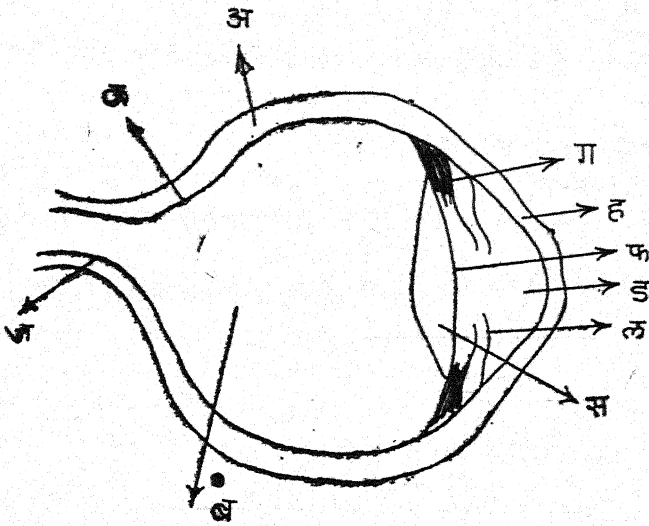
चित्र १६

षष्टम् विभाग—नीचे दिया गया रेखा चित्र, लम्बाई में कटा हुआ फूल का आधा भाग है। निम्नलिखित को कौन सा तीर सूचक निशान बतलाता है? (वस्तुओं के सामने के कोष्टों में तीर सूचकों के अक्षरों को लिखो)।

( ) १—अन्डयों
( ) २—स्तम्भक
( ) ३—पंखुड़ी
( ) ४—पुंकेसर

ड
ब
स
ई
अ

चित्र १७

( ) ५—अंखुड़ी
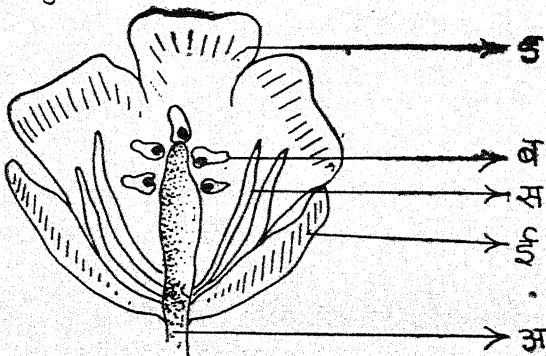
सप्तम् विभाग—नीचे दिये रेखा चित्र में विद्युत् परिपथ दिखाया गया हैं। नीचे लिखी वस्तुओं को कौन सा तीर सूचक बतलाता है ?

( ) १—वोल्ट मापी

( ) २—अम्मापी
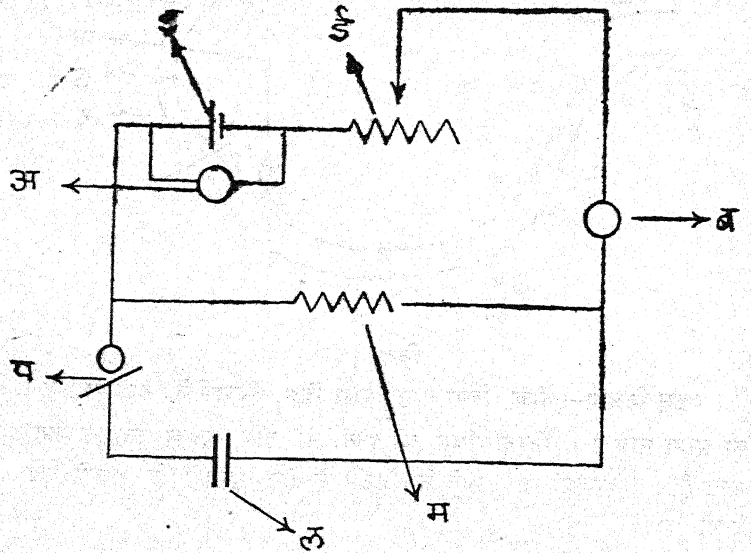
चित्र १८

( ) ३—परिवर्ती प्रतिरोधक

( ) ४—बैटरी

( ) ५—निश्चित प्रतिरोधक

( ) ६—कुन्जी

( ) ७—संधारित्र (Condenser)

भाग २

आदेश—नीचे लिखे हुए प्रत्येक प्रश्न के पांच उत्तर दिये गये हैं। प्रत्येक प्रश्न से सही उत्तर छांटो और उसके सामने लिखे अक्षर को कोष्टक में बाँई ओर लिखो ? प्रथम प्रश्न उदाहरण के रूप में हल किया गया है।

वायुमण्डल का दबाव नापने वाले यन्त्र को कहते हैं :—

१—(ब) (अ) थर्मामीटर (ब) बैरोमीटर (स) पाइरोमीटर (द) लैक्टो-मीटर (य) हाइड्रोमीटर।

२—लोहे के एक टुकड़े का हवा में भार १० पौन्ड है और उसका पानी में भार ८·७ पौन्ड है। उसका आपेक्षिक घनत्व बराबर होगा।

( ) (अ) ·१३ (ब) १·८७ (स) ७.७ (द) ८·७ (य) १०

३—ठन्डी जलवायु में ऊनी कपड़ों का प्रयोग किया जाता है, क्योंकि :—

( ) (अ) वे काफी समय तक चलते हैं। (ब) वे शरीर को गर्मी देते हैं। (स) वे शरीर से कम गर्मी निकलने देते हैं। (द) वे सूती कपड़ों से भारी हैं। (य) वे देखने में सुन्दर लगते हैं।

४—नीचे के चित्र में एक वस्तु अवतल दर्पण के सामने मुख्य संगम (स) तथा दर्पण के बीच रक्खी है। उसका बिम्ब :—

( ) (अ) वस्तु के बराबर, वास्तविक और उलटा होगा। (ब) वस्तु से बड़ा, सीधा और वास्तविक होगा। (स) वस्तु से बड़ा, उलटा और वास्तविक होगा। (द) वस्तु से बड़ा, सीधा और काल्पनिक होगा। (य) वस्तु से छोटा, उलटा और वास्तविक होगा।

चित्र १९
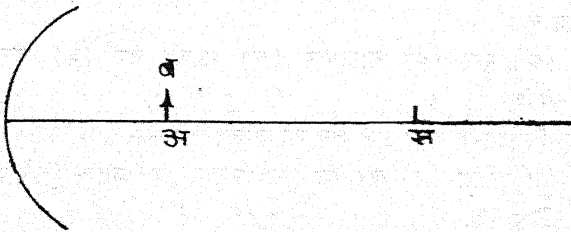
५—यह सत्य **नहीं** है कि उतल दर्पण से बना हुआ बिम्ब सदैव :—

( ) (अ) काल्पनिक होगा (ब) मन्द होगा (स) सीधा होगा (द) दर्पण से उतनी ही दूर पीछे होगा जितनी कि वस्तु दर्पण के सामने दूर है। (य) दर्पण के पीछे उतनी दूरी पर नहीं होगा जितनी कि वस्तु दर्पण के सामने है।

६—इनमें से कौनसा कथन कार्बन डाई-आक्साइड के लिए सत्य **नहीं** है :—

( ) (अ) कार्बन डाई-आक्साइड रङ्गहीन गैस है। (ब) कार्बन डाई-आक्साइड में हल्की गन्द होती है। (स) कार्बन डाई-आक्साइड में हल्का स्वाद होता है। (द) कार्बन डाई-आक्साइड साधारण कमरे के तापक्रम में दबाव द्वारा द्रवीभूत की जा सकती है। (य) कार्बन डाई-आक्साइड हवा से हल्की है।

७—निम्न में से कौन सा ढङ्ग कार्बन डाई-आक्साइड बनाने का **नहीं** है।

(   ) (अ) कार्बन को हवा में जलाने से। (ब) हल्के अम्ल की भिन्न-भिन्न कार्बोनेटों पर क्रिया से। (स) सोडियम कार्वोनेट को गरम करने से। (द) जानवरों के सांस लेने से। (घ) किन्वन (सड़ने की विधि से) (fermentation)

८—नीचे लिखे द्रवों में से कौन सा नीले लिटमर्स को लाल करता है :—

(   ) (अ) नीबू का रस (ब) सोडा वाटर (स) अल्कोहल (द) कास्टिक सोडा का घोल (घ) सोडियम हाइड्रो आक्साइड का घोल।

९—निम्नलिखित में कौन सा सूत्र गन्धक के अम्ल के तीन अणु संबोधित करता है।

(   ) (अ) $3HSO_4$ (ब) $3H_2SO_4$ (स) $3H_3SO_4$ (द) $3H(SO_4)_3$ (घ) H_3SO_4

१०—निम्नलिखित में कौन से बीजों में यांत्रिक विधि के द्वारा विकिरण होता है।

(   ) (अ) मटर (ब) नारियल (स) काली वेर (द) चैरी (घ) पौपी।

११—निम्नलिखित में कौन ठन्डे खून का जानवर है :—

(   ) (अ) तोता (ब) खरगोश (स) मनुष्य (द) बतख (घ) रैप्टाइल (Reptile)

१२—निम्नलिखित में से किसके कोष्टकों से पित रस निकलता है :—

(   ) (अ) ड्यूडेनम (ब) रेक्टम (स) यकृत (द) आमाशय (घ) क्षुद्र आंत (ileum)।

१३—निम्नलिखित में कौन सा विकर (Enzyme) वसा को प्रतिलम्बित करता और गलाता है।

(   ) (अ) रेनिन (ब) डाईस्टेज (स) ट्रिपसिन (द) पेपसिन (घ) लाइपेज

१४—निम्नलिखित में किसकी कमी के कारण जानवरों के खराब दांत तथा कमजोर हड्डियाँ हो जाती हैं :

(   ) (अ) विटामिन 'डी' (ब) विटामिन 'ए' (स) विटामिन 'ई' (द) विटामिन 'बी' (घ) विटामिन 'सी'।

१५—निम्नलित में किस पदार्थ में प्रोटीन की सबसे अधिक मात्रा प्राप्त होती है :—

(   ) (अ) चावल (ब) अन्डे की सफेदी (स) सब्जी (द) फल (ध) दूध

१६—हृदय से रुधिर को ले जाने वाली नालियों को

(   ) (अ) शिरायें (ब) कोशकायें (स) धमनियाँ (द) ट्रैकिया (ध) नाड़ियाँ कहते हैं।

१७—जब वायु नाक से होकर फेफड़ों में पहुँचती है तो नीचे लिखे हुए में से किस भाग से होकर नहीं जाती।

(   ) (अ) ग्रस्वनिका (ब) स्वर यन्त्र (स) टेटुआ (द) वायु प्रणालियाँ (ध) प्रणालि विहीन ग्रन्थियाँ।

१८—मोटर कारों में किस दर्पण का प्रयोग होता है :—

(   ) (अ) समतल दर्पण (ब) अवतल (स) समतल और अवतल मिला हुआ (द) उतल (ध) समतल और उतल मिला हुआ।

१९—निम्नलिखित में से कौन फोटोसिन्थेसिस के लिये आवश्यक नहीं है :—

(   ) (अ) कार्बन डाई-आक्साइड (ब) पानी (स) नाइट्रोजन (द) गर्मी (ध) प्रकाश।

२०—वाष्पीकरण द्वारा जल का पौधे के कोष्टकों से कोष्टकों के बीच के भाग में जाने की विधि तथा स्टोमेटा से भाप निकलने की विधि को कहते हैं।

(   ) (अ) श्वासोच्छ्वास क्रिया (ब) आसमोसिस (रसाकर्षण) (स) अन्तचूषण (द) रसकोच (ध) ट्रांसपाइरेशन।

२१—इनमें कौन सा मिश्रण है यौगिक नहीं :—

(   ) (अ) जल (ब) हवा (स) लोहे का सल्फाइड (द) नमक (ध) गन्धक का अम्ल

२२—इनमें कौनसा तत्व नहीं है :—

(   ) (अ) ताँबा (ब) हाइड्रोजन (स) पीतल (द) सोडियम (ध) कैलसियम।

२३—नाइट्रोजन और हाइड्रोजन के संश्लेषण द्वारा अमोनिया का व्यापारिक विधि से बनाने में फैरिक आक्साइड का प्रयोग किस रूप में किया जाता है :—

(   ) (अ) अवकारक (ब) विरन्जन कारक (स) आक्सीकारक (द) निर्जलीकारक (ध) उत्प्रेरक।

२४—हम साधारण रूप से सामान्य नमक को कह सकते हैं :—

(   ) (अ) प्रक्लेद्य (ब) आद्रताग्राही (स) प्रस्फुटित (द) जलयोजित
(घ) अकेलास

२५—इनमें कौनसा हाइड्रो आक्साइड पानी में घुलन शील है :—
(   ) (अ) अमोनियम हाइड्रो आक्साइड (ब) कैलसीयम हाइड्रो आक्साइड
(स) बेरियम हाइड्रो आक्साइड (द) जस्तें का हाइड्रो आक्साइड (घ)
ताँबे का हाइड्रो आक्साइड।

भाग ३

आदेश—नीचे लिखे प्रश्नों में "अ" और "ब" रिक्त स्थानों की पूर्ति करनी है। तुमको अपने उत्तर कोष्टों के अन्दर लिखने हैं। प्रथम प्रश्न उदाहरणार्थ तुम्हारे लिये हल किया गया है।

१—पौधे रात्रि के समय (अ)......लेते हैं और (ब)......देते हैं।
(आक्सीजन) (अ)। (कार्बन डाइ-आक्साइड) (ब)

२—दांत जिनका कार्य मांस चीरना है उन्हें (अ)...कहते हैं। (   )
(अ)

३—मछलियाँ श्वासोच्छ्वास क्रिया के लिये अपने.......(अ) द्वारा पानी से
(ब).........लेती हैं।
(   ) (अ)। (   ) (ब)

४—जब धातु के कार्बोनेटस का गर्मी के द्वारा विच्छेदन किया जाता है
तो............(अ) निकलता है और धातु का..............(ब) बच
रहता है।
(   ) (अ)। (   ) (ब)

५—१०० सेन्टि ग्रेड तापक्रम को फाइरनहाइट स्केल में बदलने से......(अ)
होता है।
(   ) (अ)

६—रक्त के द्रव वाले भाग को.........(अ) कहते हैं।
(   ) (अ)

७—नीचे एक ठोस कांच का चित्र खिचा है इस पर एक प्रकाश की किरण
पड़ रही है। यह किरण कांच के अन्दर तथा कांच से बाहर आकर किस
तरह चलेगी, चित्र में अंकित करो।
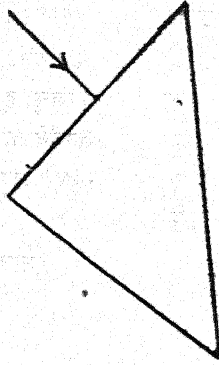
चित्र २०

८—नीचे दिये चित्र में "स" सूर्य, "म" चन्द्रमा, और "ई" पृथ्वी को अंकित करता है—

कौन से चाप पूर्ण ग्रहण के भाग को संबोधित करते हैं ?
( ) ( )

कौन से चाप अर्ध ग्रहण के भाग को संबोधित करते हैं ?
( ) ( )

कौन से चाप बिना ग्रहण वाले भाग को संबोधित करते हैं ?
( ) ( )
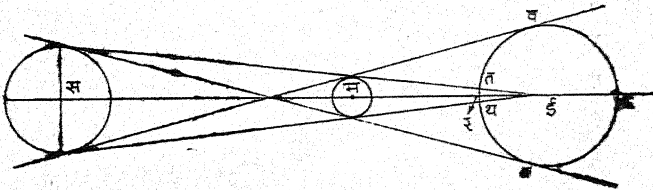
नोटः—कार्य समाप्त करने पर अपने स्थान पर बैठे रहो।

[विज्ञान परख में अंक प्रदान करने की कुंजी]

SCORING KEY FOR THE GENERAL SCIENCE TEST (FINAL TEST)

HINDI VERSION

पृष्ठ १	पृष्ठ २	पृष्ठ ३	पृष्ठ ४	पृष्ठ ५
अ	घ	ब	स	आक्सीजन, कार्बन डाई आक्साइड

पृष्ठ १	पृष्ठ २	पृष्ठ ३	पृष्ठ ४	पृष्ठ ५	
ऐ	झ		घ	कैंनाइन, सूल, कील	
औ	क	स	अ	गिलस्, हवा या आक्सीजन	
अ	छ		ब	कार्बन डाई आक्साईड, आक्साईड	
आ	ठ	स	स	२१२° फा० हा०	
अ	ख		घ		
ओ		दं	द	प्लाजमा	
उ			स		
इ	ह	द	ब		
	फ	य	ब		
	ज	स	स		
छ	क	अ	घ	रत	रथ
झ		ब	ब या अ	पत	थब
ब		ऊ	अ	पफ	फब
क	ब	घ			
ज	अ				
ब	ड				
ड	स				
च	ई				
ठ					
ग	अ				
इ					
ऐ	ब				
उ	ई				
आ	इ				
ओ	म				
औ	प°				
ई, अ, स	ल				
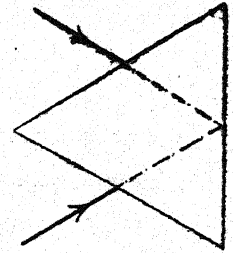
चित्र २२

कक्षा १०, ११ तथा १२ के विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त अङ्कों के प्रतिशतीय अंकों में परिवर्तित करने के लिए तालिका (Table)

(Table for Converting the raw scorse of the X Class, XI Class and XII Class pupils to Percentile Scores)

CLASS X

Raw Scores	Percentile Scores	Raw Scores	Percentile Scores
1	1	31	84
2	2.5	32	86
3	3	33	87
4	4	34	88
5	5	35	90
6	7	36	92
7	8	37	93
8	10	38	94
9	11	39	95
10	13	40	96
11	14	41	96.5
12	16	42	97
13	18	43	97.5
14	22	44	98
15	26	45	98.5
16	29	46	99
17	32	47	99.5
18	36	48	99.5
19	40	49	100
20	44	50	100
21	48	51	100
22	54	52	100
23	58	53	100
24	62	54	100
25	66	55	100
26	70	56	100
27	74	57	100
28	76	59	100
29	78	58	100
30	81	60	100

CLASS XI

Raw Scores	Percentile Scores	Raw Scores	Percentile Scores
10	0	36	73
11	0	37	76
12	1	38	78
13	2	39	80
14	3	40	81
15	4	41	83
16	6	42	85
17	8	43	87
18	10	44	88
19	12	45	90
20	14	46	91
21	16	47	92
22	20	48	93
23	23	49	95
24	27	50	96
25	30	51	97
26	34	52	98
27	37	53	98·2
28	40	54	98·5
29	44	55	99
30	49	56	99·5
31	54	57	100
32	58	58	100
33	63	69	100
34	66	60	100
35	70		

CLASS XII

Raw Scores	Percentile Scores	Raw Scores	Percentile Scores
10	0	41	56
11	0	42	58
12	0	43	62
13	0	44	64
14	0	45	68
15	.2	46	70
16	.5	47	72
17	1	48	76
18	1	49	78
19	1.5	50	80
20	2	51	82
21	2.5	52	83
22	3	53	84
23	4	54	85
24	6	55	88
25	7	56	90
26	9	57	91
27	11	58	93
28	12	59	94
29	14	60	95
30	16	61	96
31	19	62	97
32	22	63	98
33	26	64	98·2
34	29	65	99
35	12	66	99.8
36	36	67	100
37	41	68	100
38	44	69	100
39	48	70	100
40	52		

अध्याय ११

मूल प्रवृत्ति, संवेग तथा स्थायीभाव

(Instinct, Emotion and Sentiment)

मानव और पशुओं के कार्यों की विशेषता है कि वे साद्देश्य होते हैं जब कि जड़ वस्तुओं के कार्य निरर्थक होते हैं। मानव और पशुओं के कार्यों की यही विशेषता उन्हें जड़ वस्तुओं के कार्यों से भिन्न कर देती है। कार्यों की यही साद्देश्यता इतनी व्यापक होती है कि उसे जीवन का आवश्यक चिह्न माना जाता है। कोई भी जानदार वस्तु ऐसी नहीं है जो अपनी जाति के अनुसार वकास न करे।

किसी भी जीव अथवा पौधे के सम्पूर्ण जीवन में, प्राणिशास्त्र के अनुसार, दो चीजें देखने को मिलती हैं—एक तो वह अपने को जीवित रखने का प्रयत्न करता है और दूसरा वह अपनी जाति की रक्षा का भी प्रयत्न करता है। इन दोनों में से दूसरा प्रयत्न अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि बहुत से पौधे फलने फूलने के बाद शीघ्र ही कवलित हो जाते हैं ताकि नए बीजों की उत्पत्ति हो सके। जानवरों में भी यह प्रायः देखने को मिलता है कि माँ बच्चे की जीवन रक्षा में अपना जीवन त्याग करने को उत्सुक रहती है। मनुष्य और जानवरों

में आत्म-रक्षा व अपनी जाति की रक्षा के उद्देश्य कुछ स्वाभाविक प्रवृत्तियों (innate tendencies) द्वारा पूरे किये जाते हैं जिनके अनुसार हम विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार से विचार व कार्य करते हैं। एक दो उदाहरण इस बात को स्पष्ट करदेंगे। यदि आप एकाएक डर जायं तो आपकी मूल प्रवृत्ति आपको दौड़ने के लिये वाध्य करेगी ताकि आपकी रक्षा हो सके। यदि माँ बच्चे के लिए कोई खतरनाक चीज देखती है तो वह अपनी मूल प्रवृत्ति के कारण उसे ऊपर उठा लेती है। कार्य करने व विचारने की ये जन्मजात् प्रवृत्तियाँ ही मूल प्रवृत्तियाँ हैं। ये मूल प्रवृत्तियाँ जन्मजात होती हैं और भुलाई नहीं जाती हैं। इसके अतिरिक्त इनके कार्य करने का निश्चित रूप होता है जिसके कारण जानवरों, पक्षियों व कीड़े-मकोड़ों के घोंसले बनाने, एक जगह से दूसरी जगह को जाने और खाने की तलाश करने आदि व्यवहारों की व्याख्या की जा सकती है। अत्यन्त खतरे व मुश्किलों की परिस्थितियों में मानव क्रियाओं का निर्धारण भय और क्रोध द्वारा मूल प्रवृत्तियों ही से होता है। आगे हम यह कहेंगे कि मूल प्रवृत्ति के कार्यों के रूप में परिवर्तन भी हो सकता है।

मैग्डूगल के शब्दों में "Instinct determines its possessor to perceive and to pay attention to objects of a certain class, to experience emotional excitement of a particular quality upon perceiving such an objcct and to act in regard to it in a particular manner or at least to experience an impulse to action.'[१]' अर्थात् मूल प्रवृति अपने धारक (possessor) को एक वर्ग के पदार्थों को देखने व उन पर ध्यान देने की वाध्य करती है और इस प्रकार की वस्तुओं को देखने से एक विशेष प्रकार की संवेगात्मक उत्तेजना का अनुभव करने तथा उसके अनुसार एक निश्चित ढंग से काम करने या कम से कम कार्य करने के लिए एक भावना का अनुभव करने को विवश करती है।

इस त्रिविभागीय प्रवृत्ति में पहली दशा अर्थात् देखी हुई परिस्थिति अथवा पदार्थ और तीसरी दशा अर्थात् उसके परिणामस्वरूप कार्य आदि में बहुत कुछ परिवर्तन की सम्भावना रहती है जो कि उक्त परिभाषा द्वारा प्रकट नहीं होती। प्रथम दशा के सम्बन्ध में यह बात विशेष रूप से सत्य है। जैसे कि भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में मनुष्य के अन्दर भय की भावना जाग्रति की जा सककी है। अपरिचित अथवा विचित्र जानवर के मिलन से, अंधेरे में अकेले रहने से, मनुष्यों के बड़े समूह से बात करने से या खतरे के उपस्थित होने से—आदि ऐसी परि-

१. McDougall, W. : 'Introduction to Social Psychology'; p. 25 (Methuen).

स्थितियाँ हैं जिनसे मनुष्य भयभीत किया जा सकता है। इनसे उत्पन्न होने वाले कार्यों में भी परिवर्तन होने की सम्भावना रहती है। उपरोक्त परिस्थितियों में डर कर भगने से लेकर छिपकर पीछे हटने, कोई भी क्रिया न करने, और आक्रमणकारी प्रतिक्रिया तक कोई भी क्रिया की जा सकती है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि मूल प्रवृत्तियों के कार्यों के प्रतिरूप (Pattern) में हेर-फेर हो सकता है, उसका कोई निश्चित रूप नहीं रहता। मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार पर बुद्धि का प्रभाव पड़ता है। मैग्डूगल ने कहा है—

"Their dependence upon and overlaying by intelligence reach a point as to obscure the existence of instincts from the eyes of man himself,especially those of sophisticated men.[1]

हमारी मूल प्रवृत्तियाँ इस सीमा तक बुद्धि पर निर्भर रहती हैं तथा बुद्धि से आच्छादित रहती हैं कि साधारण मनुष्य के लिए विशेषतया सभ्य व सुसंस्कृत व्यक्ति की आँखों में उनका अस्तित्व ही नहीं रहता। अपने उद्देश्य के प्रति सजग न रहने के कारण पशु मूल प्रवृत्तियों द्वारा अपनी भलाई के कार्य करने में सफल होते हैं परन्तु मनुष्य विवेकशील प्राणी होने के नाते इधर उधर देख-देखकर अपनी तर्क पूर्ण बुद्धि द्वारा अपने उद्देश्यों तक पहुंचने का प्रयास करते हैं। पशुओं में भी अपने कार्यों को समझने की दूरदर्शिता होती है। मनुष्यों को पशुओं से भिन्न करने वाली कोई निश्चित रेखा नहीं है। यह अन्तर विभिन्न जातियों द्वारा अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बना लेने के द्वारा ही ज्ञात होता है। सभी अपने उद्देश्यों के पीछे अन्धभक्त अथवा दूरदर्शिता से दौड़ते हैं, परन्तु कुछ जन्म से ही एक ही प्रकार के तरीकों को अपनाते हैं जब कि अन्य लोग परिस्थितियों में थोड़ा अन्तर आने पर उसके अनुसार अपने को बदल सकने में सफल होते हैं। स्थाई या न बदलने वाली प्रतिक्रियायों को हम शुद्ध मूल प्रवृत्ति और बदलने वालों को हम बुद्धि नियंत्रित मूल प्रवृत्ति कह सकते हैं।

साधारण से साधारण जीव भी मूल प्रवृत्यात्मक कार्यों में, विशेष परिस्थितियों का सामना करने के लिए, परिवर्तन करने का प्रयत्न करते हैं। मछलियों, पक्षियों, पशुओं और वस्तुतः मनुष्यों के मूल प्रवृत्यात्मक प्रतिरूपों में परिवर्तन इसके स्पष्ट प्रमाण हैं। बहुत कम ऐसे कीड़े मकोड़े हैं जिनमें मूल प्रवृत्तियों के कार्य का ढङ्ग निश्चित रूप से सदा एक सा रहता है और जो विभिन्न परिस्थितियों में बहुत कम परिवर्तन करने का प्रयत्न करते हों। इसका

---

१. McDougall, W. : 'Introduction to Social Psychology'; p. 25 (Methuem)

परिणाम यह है कि साधारण परिस्थितियों में पशुओं की क्रियाएं उद्देश्य के अनुरूप बड़े ही अच्छे ढंग से अनुकूलित होती हैं परन्तु प्रयोगात्मक उद्देश्य के हेतु जब कृत्रिम भिन्नताओं का समावेश किया जाता है तब पशुओं का व्यवहार बड़ा ही हास्यास्पद हो जाता है। ततैया (Wasp) अंडे देने के लिए एक सूराख करती है, इसके पश्चात् वह कैटरपिलर (caterpillar) के शिकार के लिए अन्यत्र चली जाती है; अब वह कैटरपीलर को डंक मारकर बेहोश कर देती है और फिर उसे सूराख तक ले आती है। अपने शिकार को रख कर वह सूराख में आती है और जब यह देख लेती है कि अन्दर सब चीज ठीक है तो कैटरपिलर को भी अन्दर घसीट लाती है और उसके पास अंडे देकर हर एक को मोहरबन्द कर देती है। फैब्रे (Fabre) ने ततैये की परीक्षा के लिए कैटरपिलर को कुछ दूर हटा दिया जब कि वह सूराख के अन्दर ही थी। बाहर आने पर उसने कैटरपिलर को देखा, उसे उठाकर वह एक बार फिर उसे सूराख तक ले गई और अन्दर सूराख में चली गई। फैब्रे ने फिर दुबारा कैटरपिलर को हटाया और ततैये ने उसी क्रिया को फिर दोहराया। जब तक उसे धीरज रहा ततैये ने अपनी प्रारम्भिक सूराख में जाने की क्रिया को नहीं छोड़ा। इसलिए वह कभी भी कैटरपिलर को अन्दर न ले जा सकी क्योंकि जैसे ही वह अन्दर देखने को घुसती थी फैब्रे कैटरपिलर को सूराख से दूर पहुँचा देते थे।

उच्च श्रेणी के पशुओं तथा मनुष्यों में मूल प्रवृत्तियों का कार्य व संगठन भिन्न रहता है। मूलप्रवृतियाँ परिस्थितियों की साधारण श्रेणी में व्यवहार को निश्चित करती हैं। वे एक क्रम में रहती हैं, बड़ी परिवर्तनशील होती हैं और भिन्न-भिन्न प्रकार की विशेष आवश्यकताओं का सामना करने के हेतु उनको उनके अनुकूल बनाया जा सकता है। विशिष्ट परिस्थितियों का सामना करने के लिए अपने व्यवहारों को बदलने की शक्ति को बुद्धि कहते हैं। विशेष जन्मजात प्रवृत्तियों द्वारा भिन्न-भिन्न मात्रा में नियंत्रित व्यवहार अथवा विशेष परिस्थितियों द्वारा प्रेरित व्यवहार को समझाने के लिए एक पैमाना बनाना सम्भव है।

आधुनिक काल के लेखकों में से बर्ट ने मैग्डूगल की विचार-धारा का समर्थन किया और उन्होंने मूलप्रवृत्ति की चर्चा इस प्रकार से की है—It is a complex inherited tendency common to all members of a species impelling each individual—

(1) to perceive and pay attention to certain object or situations;

(2) to become pleasurably or unpleasurably excited about these whenever they are perceived;

(3) there upon to act in a way likely in the long run to preserve the individual, or at any rate the species so acting.'[१]

अर्थात् 'मूल प्रवृत्ति एक पैतृक जटिल प्रवृत्ति है जो जाति (Specis) के प्रत्येक सदस्य में समान रूप से पाई जाती हैं और प्रत्येक व्यक्ति को निम्न-लिखित कार्यों के लिए बाध्य करती है।

(१) निश्चित पदार्थों व परिस्थितियों को देखना और उन पर ध्यान देना।

(२) प्रसन्नतापूर्वक या उदासीन भाव से इन्हें देखकर उत्तेजित होना,

(३) और इन्हें देखकर इस प्रकार से कार्य करना जो आगे चलकर उस व्यक्ति की या उसके जाति (Species) की रक्षा कर सके।' बर्ट (Burt) महोदय इस मत का भी समर्थन करते हैं कि बुद्धि और अनुभव दोनों ही का मूलप्रवृत्यात्मक प्रवृत्ति के परिवर्तन करने में बहुत बड़ा हाथ है। उन्हीं के शब्दों में, 'Human beings like other animals, inherit certain innate tendencies, which influence their everyday behaviour, at any rate during the earlier years of life. For such tendencies or group of tendencies) are almost universally recognised—feeding, fighting, fear and sex, there may be many others less easy to establish.'[२]

अन्य पशुओं की भाँति मनुष्यों को भी पैत्रिक सम्पत्ति के रूप में कुछ जन्मजात प्रवृत्तियाँ मिली हैं जो जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में उसके दिन प्रति दिन के व्यवहार को प्रभावित करती रहती हैं—खाना खिलाने, लड़ने, भय और मैथुन की प्रवृत्तियाँ अथवा इन प्रवृत्तियों के समूह विश्वव्यापी हैं। कुछ ऐसी भी प्रवृत्तियाँ और हो सकती हैं जिन्हें इस प्रकार जानना सरल नहीं है।

"In man the modification and elaboration of these instinctive tendencies produced by personal experience, are more various, more numerons and more far reaching."[१] अर्थात् मनुष्यों में व्यक्तिगत अनुभव द्वारा मूलप्रवृत्यात्मक प्रवृत्तियों में उत्पन्न परिवर्तन और उनकी व्याख्याएँ असंख्य, भिन्न-भिन्न प्रकार की तथा अधिक व्यापक प्रभावशाली होती हैं।

मैग्डूगल तथा अन्य लेखकों ने बड़ी ही सावधानी से आदत व मूलप्रवृत्तियों

१. Burt, C. Symposium,—Is the doctrine of instincts dead'? B. J. Ed. Psych. p. 201.

के अन्तर को ज्ञात किया है। आदतें यन्त्रवत (mechanically) किये गए व्यवहार-प्रतिरूप (Behaviour-patterns) हैं परन्तु मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार साद्देश्य होता है। इस परिभाषा की दृष्टि से आदतें किसी व्यवहार के उद्देश्य की व्याख्या हेतु अपर्याप्त होती हैं।

मैग्डूगल ने चार सामान्य प्रवृत्तियों (general tendencies) के साथ-साथ चौदह मूलप्रवृत्तियों का वर्गीकरण किया है और वे हैं—

(१) पुत्र कामना (Parental instinct) (२) युयुत्सा (Combative instinct)

(३) जिज्ञासा (Instinct of Curiosity) [४] भोजनान्वेषण (Food-Seeking intinct)

(५) निवृत्त (Instinct of repulsion) (६) पलायन (Instinct of escape)

(७) सामूहिकता (Gregarious instinct) (८) आत्म प्रदर्शन (Instirct of Self-assertion)

(९) दैन्य (Instinct of Submission) (१०) काम प्रवृति (Mating instinct)

(११) संग्रह वृत्ति (Acquisitive insitinct) (१२) रचना प्रवृत्ति (Constructive)

(१३) शरणागति (instinct of Appeal)(१४) हास प्रवृत्ति (Instinct of laughter)

इन मूल प्रवृत्तियों के अलावा चार सामान्य प्रवृत्तियाँ (general tendencies) अर्थात् सहानुभूति (sympathy), निर्देश (suggestion), अनुकरण (imitation) और खेल (play) बहुत सी परिस्थितियों में प्रकट होता रहती हैं। खेल के सम्बन्ध में पिछले अध्याय में वर्णन किया गया है। शेष अन्य प्रवृत्तियों के बारे में चर्चा आगामी अध्यायों में की जावेगी। इस अध्याय में भिन्न-भिन्न मूलप्रवृत्तियों का संक्षेप में वर्णन किया जावेगा।

(१) **पुत्र कामना** (Parental instinct):—यह मूल प्रवृत्ति प्रकृति का सबसे सुन्दर व शानदार आविष्कार है। पशुओं के बच्चों को भिन्न-भिन्न मात्रा में माँ बाप की रक्षा प्राप्त होती है। कुछ जानवरों में जैसे बिल्लियों में माँ की ही

१. Burt, C: "Symposium, Is the doctrine of inctinct dead ?" B. J. Ed. Psych., p. 20.

जिम्मेदारी बच्चे की पूरी देखभाल की होती है जबकि कभी-कभी पक्षियों में बाप भी बच्चे की देखभाल में समान रूप से हाथ बंटाते हैं।

मनुष्यों में दीर्घ बचपन व परिवार की एकता बच्चे के स्वावलम्बन होने के पश्चात् भी माँ बाप की देख रेख को और भी महत्वपूर्ण बना देती है। पूर्ण परिपक्वता (maturity) के पूर्व पुत्र कामना की मूलप्रवृत्ति जाग्रति नहीं होती। इस प्रवृत्ति की जाग्रति के लिये बच्चे की उपस्थिति भी अति आवश्यक होती है। परन्तु यह मानना होगा कि बचपन से ही यह मूलप्रवृत्ति हल्के रूप में विद्यमान रहती है। छोटी लड़कियाँ अपनी गुड़ियों को प्यार करती हैं। बहुत सी लड़कियों को छोटी बच्ची को बाहर टहलाने में बड़ा आनन्द आता है। स्त्रियों में, चाहे वे विवाहित हों या अविवाहित, छोटे बच्चों के प्रति बहुत अधिक आकर्षण रहता है यद्यपि इसकी मात्रा व्यक्ति व्यक्ति में भिन्न रहती है। बहुत से व्यक्ति छोटे बच्चों की ओर अधिक आकर्षित होते हैं और अन्य लोग एक निश्चित अवस्था के बाद इन बच्चों को प्यार करने लगते हैं। जिन मनुष्यों में यह प्रवृत्ति अधिक वेगशाली होती है वे दो या दो वर्ष से अधिक वाले बच्चों को ज्यादा पसन्द करते हैं। इस प्रवृत्ति के साथ प्यार (love) व कोमलता (tenderness) की संवेगात्मक विशेषतायें (emotional qualities) जुड़ी रहती हैं।

(२) **युयुत्सा** (Combative Instinct) :—यह मूलप्रवृत्ति आक्रमण, झगड़े आदि की पर्यायवाची है और इसके साथ क्रोध (anger), गुस्सा (rage), पीड़ा आदि संवेगों का समूह जुड़ा रहता है। यह प्रवृत्ति साधारण रूप से सभ्य मनुष्यों में नियंत्रित (controlled) रहती है परन्तु फिर भी इसका संवेग बड़ा ही वेगपूर्ण होता है। क्रोध को भड़काने के लिए वही परिस्थितियाँ पर्याप्त हैं जिनसे हमारी इच्छाओं या कामनाओं में विघ्न पड़ता है। एक छोटा बच्चा रसोईघर के किवाड़ को, जिसे वह लात मारकर खोलना चाहता है, न खोल सकने पर क्रोध के लक्षण प्रकट करने लगता है। पुत्र कामना की मूलप्रवृत्ति में हस्तक्षेप करने वाली परिस्थिति भी इस प्रवृत्ति को जन्म दे सकती है। एक माँ अपने प्रिय बच्चे के थोड़े से अपमान पर क्रोधित हो सकती है क्योंकि वह अपने पुत्र की प्रशंसा सुनना चाहती है।

हमारी प्राणप्रिय इच्छा के मार्ग की विघ्नें क्रोध को भड़का देती हैं क्योंकि उस वस्तु के प्राप्ति के लिये किये गए हमारे प्रयत्न साकार नहीं हो पाते।

(३) **जिज्ञासा** (Instinct of Curiosity) :—जब कोई वस्तु या परिस्थित किसी दूसरी ऐसी वस्तु या परिस्थिति से मिलती जुलती है जो किसी दूसरी मूलप्रवृत्ति की क्रिया को प्रेरित करती है परन्तु जब उसे अच्छी तरह

से समझा नहीं जा पाता तो उसे पूर्ण रूप से समझने के लिए यह जिज्ञासा प्रवृत्ति सुसुप्तावस्था से बाहर प्रकट हो जाती है। इस मूलप्रवृत्ति का मुख्य उद्देश्य वस्तु का पूर्ण ज्ञान व स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण प्राप्त करने का होता है। इसके साथ आश्चर्य (Wonder) का संवेग लगा रहता है। बिल्ली के व्यवहार में इसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है। चूहे के समान किसी वस्तु को हिलते हुए देखकर, जो उसकी भोजनान्वेषण प्रवृत्ति को जाग्रति करती है, बिल्ली उसकी ओर दौड़ती है और उसे पंजे से पकड़कर उसकी विशेषता से अवगत होती है। यह प्रवृत्ति बच्चों में अधिक होती है।

(४) **भोजनान्वेषण** (Food-Seeking instinct)—इसे क्षुधा पीड़ित प्रवृत्ति की संज्ञा भी दी जा सकती है। आत्म-रक्षा की यह सार्वप्रथम आवश्यकता है। खाने को देखने व उसकी सुगन्ध को पाकर यह उभड़ आती है। पाचन क्रिया के किसी अंग द्वारा भी यह प्रकट हो सकती है।

(५) **निवृत्ति** (Repulsion)—यह बड़ी ही साधारण मूल प्रवृत्ति है। यह घृणित वस्तु द्वारा उत्पन्न होती है। इसका संवेग है मचलाहट (nauseau) तथा घृणा।

(६) **पलायन** (Instinct of Escape)—यह मूलप्रवृत्ति आत्म रक्षा की पर्यायवाची है। अचानक शोर सुनकर हम भागते हैं। यह पलायन मूल प्रवृत्ति का उदाहरण है। यह प्रवृत्ति अन्धेरे में रक्खी हुई वस्तु, शारीरिक पीड़ा और बड़ी वस्तु की गति आदि से भी उकसाई जा सकती है। इसके साथ भय, (fear), डर (fright), आतंक (terror) के संवेग रहते हैं।

(७) **सामूहिकता** (Gregarious Instinct)—इस मूल प्रवृत्ति से मानव व्यवहार अत्यन्त प्रभावित होता है। यह सभी पशुओं में नहीं पाई जाती। मनुष्यों में, यद्यपि, किसी सीमा तक यह सभी में पाई जाती है परन्तु इसका वेग भिन्न-भिन्न रहता है।

सामूहिक रूप से जीवन व्यतीत करने वाले पशुओं की ओर यदि हम देखें तो हमें कुछ ऐसी विशेषतायें मिलेगीं जो उनके व्यवहार को एकान्त प्रिय जीवन व्यतीत करने वाले पशुओं के व्यवहार से भिन्न करती हैं। पशुओं की सामूहिकता के प्राप्य उद्देश्यों के अनुसार ये विशेषतायें भिन्न-भिन्न होती हैं। कुछ पशु आत्म रक्षा के उद्देश्य से अपने समूह बनाते हैं—जैसे भेड़ों तथा इसी प्रकार के शान्तिप्रिय घास खाने वाले अन्य जानवरों के समूह इसी उद्देश्य के लिए बनाये जाते हैं। समूह के सदस्य होने के नाते वे आक्रमण होने पर अपने को बचा लेते हैं तथा भय से भी मुक्त रहते हैं। यही समूह की सदस्यता के इनके लिये लाभ हैं।

शिकार करने वाले पशुओं में भिन्न प्रकार की सामूहिक प्रवृत्ति का विकास होता है। चूँकि यह समूह आक्रमणकारी होता है अतः इसमें पूर्ण विकसित संगठन की आवश्यकता होती है। इस प्रकार की सामूहिकता में अन्य लोगों के साहचर्य में अधिक आनन्द नहीं मिलता। गोकि एकान्त में रहने वाला पशु दुखी रहता है फिर भी समूह में आकर वह साथियों के साहचर्य से आनन्द नहीं उठा पाता। समूह में अपना सम्बन्ध जोड़ने का उसका एक ही उद्देश्य होता है और वह है खाने की तलाश और आत्म रक्षा। इन उद्देश्यों के अतिरिक्त अन्य कोई ध्येय नहीं रहता।

तीसरे प्रकार के सम्बन्ध में सामाजिक तत्वों का महत्व रहता है। बन्दर एक दूसरे की दोस्ती में विशेष आनन्दित रहते हैं। आपस में खूब बात चीत करते हैं। शहद की मक्खियाँ व चींटियाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक दूसरे की सहायता करती हैं और इस प्रकार का आश्चर्यजनक श्रम विभाजन विकसित करती हैं कि हमें विश्वास करना होता है कि इनका संगठन पूर्ण जीवन की प्राप्ति करने के लिए है न कि केवल आत्म रक्षा व भोजन प्राप्त करने के निमित्त।

सामूहिक जीवन से अनेक लाभ हैं। साथ रहने से आत्म रक्षा, भोजन प्राप्त करने, और आक्रमण करने और पूर्ण व विविध जीवन को प्राप्त करने में सहायता मिलती है जोकि एकान्त जीवन व्यतीत करने में सम्भव नहीं होती। समूह के सदस्यों को अन्य कार्यों को छोड़ कुछ विशेष कार्यों में विशेषता प्राप्त करने का अवसर मिलता है। मनुष्य की सामूहिकता में उपरोक्त सभी उद्देश्यों की पूर्ति होती है। हमारी सारी सभ्यता श्रम विभाजन के सिद्धान्त पर आधारित होने के कारण एक दूसरे को अपना सहयोग देने को बाध्य करती है। ऐसी दशाओं में सामूहिकता का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है।

(८) **आत्मप्रदर्शन** (self-assertion)—समाज में हीन (inferior) व्यक्तियों की उपस्थिति से इस मूल प्रवृति का जन्म होता है। इसके साथ स्वयं अनुभूति (self-feeling), आत्मोन्नति व उच्चता की भावना लगी रहती है।

(९) **दैन्य** (Submission)—जाति के उच्च व्यक्तियों के रहने के कारण इस मूलप्रवृत्ति का आविवर्भाव होता है। इसके साथ श्रद्धा, दासता, हीनता अथवा नकारात्मक स्वयं अनुभूति के लक्षण लिपटे रहते हैं। ये अन्तिम दो मूलप्रवृत्तियाँ एक दूसरे की पूरक होती हैं जिनके होने के कारण सामाजिक व्यवस्था कम से कम बरबादी व अधिक आरामदायिनी होती है।

(१०) **काम-प्रवृत्ति** (Mating Instinct)— संकीर्णता के अर्थ में इसे

मैथुन-प्रवृत्ति कहा जा सकता है। यह सुन्दर स्त्री की उपस्थिति अथवा प्रजनन के अंगों को देखने के कारण उमड़ पड़ती है।

(११) **संग्रह वृत्ति** (Acquisitive Instinct)—पशुओं में यह प्रवृत्ति असामूहिक रूप में पाई जाती है। मनुष्यों में यह अधिक प्रबल रूप से दृष्टि गोचर होती है। गिलहरियाँ और अन्य पशु दृढ़ फल (Nut) आदि को और शहद की मक्खियाँ अपने भण्डारों में सामग्रियों को एकत्रित कर लेते हैं। यह मूलप्रवृत्ति बच्चों में पाई जाती है जो सिगरेट के पैकटों, पोस्टकार्ड, टिकट और संगमरमर की चीजों का संग्रह करते हैं। संग्रह करने की यह वृत्ति कुछ मनुष्यों में एक वासना (passion) का रूप धारण कर लेती है। विशेष कर यह तब होता है जब हम में प्रतियोगिता की भावना है या हम अपनी शक्ति को और दृढ़ बनाना चाहते हैं। यह प्रवृत्ति भिन्न २ उद्देश्यों के कारण जाग्रत होती है। वैज्ञानिक लोग पक्षियों, कीड़े मकोड़ों आदि का संग्रह ज्ञान की वृद्धि के उद्देश्य से करते हैं; कलाकार छपाई के नमूने या चित्रों को उन कमरों में सजा कर रखते हैं जिनमें वे सुरक्षित रह सकें; धन दौलत का पीछा करने वाले सोने के सिक्कों व नोटों का संग्रह करते हैं। वे लोग इस संग्रह वृत्ति को विवेक युक्त व्याख्याओं से सही सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। अमीर आदमी गरीबी से बचने केलिए धन दौलत एकत्रित करने का कारण बताते हैं परन्तु असुविधा और गरीबी से बचने के लिए आवश्यक सीमा तक धन एकत्रित करने के बाद भीवे अपनी सम्पत्ति को बढ़ाते ही चले जाते हैं। उनका यह तर्क न्याय संगत न होने के कारण इस प्रवृत्ति को मूलप्रवृत्ति ही कहना अनुचित न होगा।

(१२) **रचना प्रवृत्ति** (Constructive instinct)—उपयोगी चीजों के निर्माण करने की यह प्रवृत्ति पशुओं, पक्षियों व मनुष्यों में दिखाई देती है। पक्षीगण अपने अंडों व बच्चों के लिए घोंसले बनाते हैं। मनुष्यों में इस प्रवृत्ति का जन्म प्रारम्भ में जीवन की आवश्कताओं से ही था। आदिवासियों ने मौसम से बचने के हेतु अपने लिए शरणागार बनाये, सर्दियों में गर्मी के लिए खाल के कोट बनाये, युद्ध व शिकार के लिए शस्त्रों व कवच का निर्माण किया, घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बरतन बनाये और स्त्रियों को आकर्षक बनाने के लिए आभूषण निर्मित किये।

आधुनिक काल में मनुष्यों की यह प्रवृत्तिभिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न हुआ करती है। इस भिन्नता का मुख्य कारण स्वाभाविक निधि (natural endowment) अथवा वातावरण का प्रभाव ही हो सकता है। अधिक प्रबल व वेगपूर्ण होने पर यह प्रवृत्ति जीवन के सर्वोत्तम आनन्द का साधन बन जाती है।

(१३) **शरणागति प्रवृत्ति** (The Instinct of Appeal)—विवशता या दरिद्रता की भावना के कारण इस प्रवृत्ति का अभ्युत्थान होता है। युयुत्सा की प्रवृत्ति जब अपने उद्देश्य में असफल हो जाती है तब शरणागति प्रवृत्ति प्रज्ज्वलित हो उठती है। जैसा कि हम जानते हैं कि युयुत्सा प्रवृत्ति का जन्म किसी अन्य प्रवृत्ति के विघ्न के कारण होता है परन्तु जब युयुत्सा किसी उत्पन्न परिस्थिति का सामना नहीं कर पाती तभी व्यक्ति सहायता के लिए अन्य व्यक्तियों की ओर निहारता है विशेषकर अपने माँ-बाप की ओर। तत्पश्चात् सहायता की चीत्कार से भी वह सहायता की मांग करता है।

(१४) **हास प्रवृत्ति** (Instinct of laughter)—**मैग्डूगल** (McDougall) का कहना है कि हमारे न हँसने पर कोई भी परिस्थिति हमें क्रोधित अथवा दुखी कर सकती है। हास्य क्रोध की औषधि है और सहानुभूति जन्मदायिनी। किसी व्यक्ति को दुर्गति में पड़े हुये देखकर या तो हमें हँसी आती है या सहानुभूति की कली हमारे अन्दर प्रस्फुटित हो उठती है। यदि हम सहानुभूतिपूर्ण हैं तो हमेशा अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों के दुखदर्दों में हमें हाथ बटाना होगा। इसीलिए प्रकृति सुन्दरी ने इस दुखद अवस्था या दशा से मुक्त करने के लिए हम लोगों में इन परिस्थितियों में हास्य पुट दे दिया है।

चार सामान्य प्रवृत्तियाँ जो असंख्य परिस्थितियों में प्रकट होती रहती हैं-- वे हैं, अनुकरण, सहानुभूति, निर्देश और खेल। खेल के सम्बन्ध में हम पिछले अध्याय में पढ़ चुके हैं। अन्य प्रवृत्तियों का विषद विवरण आगामी अध्यायों में दिया जावेगा।

संवेग (Emotion)

मूलप्रवृत्तियों की चर्चा करते हुये हमने उनके तीन मुख्य पहलुओं पर विचार किया था और वे थे—ज्ञानात्मक (cognitive), संवेग (emotion) अथवा प्रभाव (effect), और चेष्टा या प्रयास (conation)। हमने इस बात का भी उल्लेख किया था कि संवेग परिस्थिति को समझने तथा कार्य करने के बीच में आता है। संवेग किसी होने वाली क्रिया का तात्कालिक पूर्वगामी (precursor) है। इस बात की भी चर्चा की गई थी कि संवेग मूलप्रवृत्तियों के स्थाई अंश हैं। मूलप्रवृत्तियों के ज्ञानात्मक व चेष्टा के पहलुओं में भले ही परिवर्तन हों पर संवेग के पहलू में कोई भी परिवर्तन नहीं होता वह सर्वथा स्थिर ही रहता है। आप कई चीजों से डर सकते हैं और अपना भय विभिन्न रूपों द्वारा प्रकट कर सकते हैं पर आपकी भय की भावना सदा संवेग के रूप में स्थिर रहेगी।

भविष्य की क्रिया का पूर्वगामी होने और विभिन्न परिस्थितियों में एक ही

स्थिर तरह के होने के कारण संवेग का व्यक्ति के व्यवहार व समाज में अपना बड़ा महत्व है। यदि कोई व्यक्ति किसीके संवेगों को प्रभावित कर सकता है तो वह उससे उन कार्यों को भी करवा सकता है जो वह चाहता है। व्यक्ति की भावनाओं को चोट पहुँचाने के मुहावरे से सभी लोग परिचित हैं और उसका बहुधा प्रयोग किया जाता है। इसके प्रयोग से स्कूलों में, परिवारों में, चुनावों में और अन्यत्र स्थानों में लाभ उठाया जाता है। वास्तविकता तो यह है कि सभी अवसरों पर जहाँ लोग व्यक्ति के कार्यों पर आधिपत्य करना चाहते हैं, वहाँ पर सर्वप्रथम उसके उपयुक्त संवेगों को उभाड़ने का प्रयत्न करते हैं।

संवेगात्मक अनुभव के बिना मूलप्रवृत्ति की परिभाषा अधूरी ही रह जाती है। मैग्डूगल (McDougall) ने सभी मूलप्रवृत्तियों के पीछे एक निश्चित संवेग को जोड़ दिया है। मूलप्रवृत्ति के कार्य के साथ होने वाले संवेग को प्राथमिक संवेग (Primary emotion) कहते हैं। अन्य संवेग गौण (secondary) होते हैं। उन्हें एक या दो प्राथमिक संवेगों का मिश्रण कहा जा सकता है। मैग्डूगल (McDougall) ने निम्नलिखित मूलप्रवृत्तियों व उनके संवेगों की सूची दी है :—

मूलप्रवृत्तियाँ	सम्बद्ध संवेग
१. पलायन (Escape)	——→ भय (Fear)
२. युयुत्सा (Combat)	——→ क्रोध (Anger)
३. निवृत्ति (Repulsion)	——→ घृणा (Disgust)
४. पुत्र कामना (Parental)	——→ वात्सल्य (Tender emotion)
५. शरणागति (Appeal)	——→ करुणा (Distress)
६. कामप्रवृत्ति (Mating)	——→ कामुकता (Lust)
७. जिज्ञासा (Curiosity)	——→ आश्चर्य (Wonder)
८. दैन्य (Submsision)	——→ आत्महीनता (Negative self-feeling)
९. आत्म प्रदर्शन (Self-assertion)	——→ आत्माभिमान (Positive self-feeling)
१० सामूहिकता (Gregariousness)	——→ एकाकीपन (feeling of loneliness)
११. भोजनान्वेषण (Food seeking)	——→ भूख (Gusto)
१२. संग्रह वृत्ति(Acquisition)	——→ अधिकार भावना (Feeling of owner-ship)

१३. रचना प्रवृत्ति (Construction) —→ रचना जात आनन्द (Feeling of creativeness)

१४. हास (Laughter) —→ आमोद (Amusement)

संवेग हमारे कार्यों को कई तरीकों से प्रभावित करते हैं। बहुत सी अवस्थाओं में जितना ही अधिक संवेग का वेग होगा उतनी ही ज्यादा उससे उत्पन्न क्रिया होगी। क्रिया के दृष्टिकोण से विचार करने से हमें स्पष्ट हो जावेगा कि कार्य संवेगों के अनुयायी होते हैं। कुछ व्यक्तियों में उपयुक्त कार्य में विलयन से संवेग और भी घनीभूत हो उठते हैं। हम स्वयं बहुधा इस प्रकार के अनुभव करते हैं। मान लीजिये हम एक किताब पढ़ने के उत्सुक हैं और लाइब्रेरी से वह पुस्तक गायब हो जाती है; हमारी उसे पढ़ने की इच्छा और भी तीव्र हो उठती है। हम स्थानीय पुस्तक विक्रेता से पूछते हैं। वह उस पुस्तक को प्रकाशन से बाहर बतलाता है। हम विलायत को उस पुस्तक के सम्बन्ध में लिखते हैं पर हमें कोई भी उत्तर नहीं मिलता। माना अन्त में आक्सफ़ोर्ड का एक व्यापारी उस पुस्तक को भेजने के लिए राजी हो जाता है और वह हमारी आशा से कहीं अधिक उस पुस्तक का मूल्य बतलाता है। फिर भी हम उसे सहर्ष लेने के लिए तैयार हो जाते हैं। आशातीत ऊँचे मूल्यों में खरीदकर हम उसे सबसे बड़ी सम्पत्ति के रूप में संग्रहीत कर लेते हैं चाहे फिर हम उस पुस्तक को पढ़ें भले ही न।

यही बच्चों में भी घटित होता है। मान लीजिए, एक बच्चा पड़ोसी के बाग से एक सेव खाना चाहता है। माना बाग़ की ऊँची दीवाल उसके लिए विघ्न है, माँ बाप उसे उस कार्य के करने पर सज़ा की बारम्बार-चेतावनी देते हैं, पड़ोसी के कुत्ते की निगरानी उसको सेव चुराने में बाधक है। यह सब बातें उसकी इस इच्छा को इतना तीव्र व पैनी कर देंगी कि वह सेव पाने के लिए अपना सर्वस्व लुटा देने को तैय्यार हो जावेगा चाहे उस बच्चे के खाने के लिए बहुत से सेब घर में पड़े ही क्यों न हों।

अब संवेग के क़िस्मों में अन्तर जानना आवश्यक होगा। कुछ संवेग स्वभावतः क्रियाशील होते हैं और किसी क्रिया को प्रोत्साहित करते हैं। कुछ परिस्थितियों से जन्म पाते हैं जहाँ उनसे कोई भी कार्य सम्भव नहीं होता। ऐसे संवेग उत्तेजक न होकर अनुत्तेजक होते हैं। अफसोस या दुख अनुत्तेजक संवेगों का उदाहरण हैं। हम दुख से आक्रान्त हो जाते हैं। उसमें हमसे कुछ करते नहीं बनता और इसीलिए हम निष्क्रिय हो उठते हैं। अगर हम कुछ करने का प्रयत्न भी करते हैं तो हमारा प्रयत्न पिंजड़े से बाहर निकलने के लिए बेचैन चिड़िया के पंख फड़फड़ाने जैसा होता है।

उपरोक्त संवेगों के समूहों की उत्पत्ति एक दूसरे से मूलतः भिन्न है। प्रथम प्रकार के संवेग मूलप्रवृत्तियों के साधारणतयः कार्य करने पर उमड़ते हैं। अनुत्तेजक संवेगों की धारा तभी प्रवाहित होती है जब मूलप्रवृत्ति के सभी मार्ग बन्द होने से वह व्यक्त नहीं हो पाती। उदाहरणार्थ जब तक बच्चा जीवित रहता है तब तक माँ प्यार, दुलार और वात्सल्यप्रेम की वर्षा करती रहेगी। बच्चे के मरने पर मातृत्व की मूल प्रवृत्ति का मार्ग पूर्णतयः अवरुद्ध हो जाता है और माँ दुख के भार से दब कर निष्क्रिय हो जावेगी। जीवित प्राणी की क्रियाओं के अन्तः मूल में कारण छिपा रहता है। यह सोचना कि जीवों के सम्पूर्ण जीवन में संवेगों का कुछ महत्व होगा स्वाभाविक ही होगा। हमारे दिन प्रतिदिन के अनुभव इस विचार की पुष्टि करते हैं। संवेगों के मानसिक व शारीरिक दो पहलू होते हैं। शारीरिक पहलू में संवेगों की उपयोगिता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। कोई भी प्रबल संवेग निश्चित रूप से किसी शारीरिक परिवर्तन को जन्म देता है। भय अथवा क्रोध के समय हमारे हृदय की धड़कन बढ़ जाती है और श्वास क्रिया में भी परिवर्तन हो जाता है।

तीव्र संवेगों के समय शारीरिक परिवर्तन इतनी गहराई से अनुभव किये जाते हैं कि विलियम जेम्स (William James) अन्य लोगों के साथ इस बात पर बल देते हैं कि केवल शारीरिक परिवर्तनों से ही संवेग बनते हैं जिन्हें हम साधारण रूप से संवेगों के साथी कहते हैं।

ये परिवर्तन प्रत्येक संवेग की विशेषतायें हैं। प्राचीन काल की अपेक्षा अब इस बात की खोज हुई है कि ये बड़े ही जटिल व अधिक व्यापक होते हैं। पहिले तो इस बात की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। हमारा शरीर संवेगों की अवस्थाओं को किस आश्चर्यजनक रीति से सम्हालता है उसका एक उदाहरण देना यहाँ पर अनुचित न होगा। दैहिकीविज्ञों (Physiologists) ने खोज की है कि भय अथवा क्रोध की दशा में हमारी उपवृक्क-ग्रन्थि (Adrenal glands) उपवृक्कि (adernalin) नामक एक रस को रक्त में भेज देती है। अन्य प्रभावों के साथ इस रस से रक्त की जमने की शक्ति और भी अधिक बढ़ जाती है। फलस्वरूप घावों से निरन्तर रक्त बहने से हमारी मृत्यु की सम्भावना कम हो गई है। इस अन्वेषण के बहुत पहिले जेम्स (James) महोदय ने संवेग के समय शारीरिक क्रियाओं पर विशेष महत्व दिया है। लेन्ज (Lange) के साथ मिलकर उन्होंने प्रसिद्ध जेम्स लेन्ज सिद्धान्त (James Lange theory) का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त के अनुसार उत्तेजना पाकर उत्पन्न अंगीय परिवर्तन (organic change) के

अनुभव को ही संवेगात्मक अनुभव कहते हैं । संवेदना (sensations) और संवेग की प्रकृति एक सी है । हमारे शरीर में हो रहे परिवर्तन के बोध ही को संवेग कहते हैं । जेम्स (James) के शब्दों में—

"Common sense says we loose our fortune, are sorry and weep; we meat a bear, are frightened and run; we are insulted by a rival, are angry and strike.........The more rational statement is that we feel sorry because we cry, angry because we strike, afraid because we tremble and not that we cry, stribe or tremkle, because we are sorry, angry and fearful, as the case may be."[1]

"साधारण अनुभव की बात है कि धन दौलत लुट जाने पर हम दुखी होते हैं, रोते हैं ; हमें भालू मिलता है तो हम डरकर भाग जाते हैं; अपने प्रति-द्वन्द्वी द्वारा अपमानित होकर हमें उस पर क्रोध आता है और हम उसे मारते हैं । इनके स्थान पर अधिक तर्कयुक्त या विवेकयुक्त कथन यह होगा कि हम चिल्लाने से दुखी होते हैं, मारने के कारण हम गुस्सा होते हैं और काँपने से डरते हैं न कि हम चिल्लाते हैं, मारते हैं, या काँपते हैं इसलिये कि हम दुखी हैं या गुस्से में हैं या हमें भय है ।"

आज दैहिकी (Physiology) शारीरिक दृष्टिकोण से संवेग की विस्तृत व्याख्या कर सकती है । संवेग के समय जटिल शारीरिक प्रतिक्रियायों के सम्बन्ध में हुई आश्चर्यजनक खोज यह है कि संवेग के समय श्वास-क्रिया, रक्त संचार, और अप्रणाल ग्रन्थि (ductless glands) की क्रियाओं में भारी परिवर्तन होता है ।

मनुष्य अपने संवेगों को संकेत या चीत्कार द्वारा दूसरों का ध्यान आकर्षित करने के लिए प्रकट करता है । वह अपने करने वाले कार्यों को प्रकट करने के लिए भी इन उपायों को अपनाता है । एक छोटा सा बच्चा अपने भय व आवश्यकताओं को चिल्लाकर बतलाता है, प्रौढ़ लोग मुस्कराहट या अन्य संकेतों द्वारा अपने आनन्द व उदासीनता को प्रकट करते हैं । अपने संवेगों को व्यक्त करने के ये उपाय विश्वव्यापी हैं और इनका प्रचलन भिन्न-भिन्न जातियों व सभ्यताओं के अनुयाइयों के मध्य में है । ऐसा प्रतीत होता है कि मानव विकास काल में व्यक्त करने के कुछ उपाय मानव जाति के लिए स्वाभाविक हो गए हैं । यदि प्रत्येक मनुष्य के अपने क्रोध व भय के संवेगों

---

१. 'The Principles of Psychology', vol. II, Page 449—450.

को व्यक्त करने के लिए भिन्न-भिन्न उपाय होते, तो अपने भावों को व्यक्त करने की उपयोगिता ही नष्ट हो जाती क्योंकि उन्हें कोई समझ न पाता। व्यक्त करने की विश्व व्यापकता (university) ही उसे समझने व समझाने का उपयोगी साधन है।

क्या अभिव्यक्ति(expression)को नियंत्रित कर आप संवेगों को नियंत्रण में कर सकते हैं ?—यह विषय विवादास्पद है। प्रौढ़ों की अपेक्षा बच्चों में संवेगों और उनकी अभिव्यक्ति में घनिष्ट सम्बन्ध है। अतः यदि कोई बच्चे के संवेगों की अभिव्यक्ति पर नियंत्रण कर सकता है तो वह संवेगों पर भी नियंत्रण लगा सकता है। बच्चों में प्रौढ़ों की अपेक्षा कम आत्म नियंत्रण होता है अतः हल्के संवेग के लक्षण भी उसकी अभिव्यक्ति पर प्रकट हो जाते हैं। बच्चों के ध्यान को विकेन्द्रित कर हम उनके संवेगों व उनकी अभिव्यक्ति पर नियंत्रण कर सकने में समर्थ हो सकते हैं। यदि उसकी अभिव्यक्ति काफी समय तक बनी रही तो बच्चे का भी ध्यान उस ओर आकर्षित रहेगा और संवेग भी काफी समय तक बना रहेगा। यदि बच्चा गिरता है तो वह रोने लगता है पर यदि उसे शाबाशी दी जाय अथवा वीर बालक कह दिया जाय तो वह चुप हो जाता है। उससे कहा जाता है कि उसे चोट नहीं लगी और उसका ध्यान दूर रक्खे हुये खिलोने की ओर कर दिया जाता है। इससे उसका रोना बन्द हो जाता है और साथ ही साथ संवेग भी दूर हो जाता है।

प्रौढ़ों में भी संवेगों की अभिव्यक्ति को नियन्त्रित कर उनको काबू में लाया जा सकता है। जो लोग रात में डर कर जाग जाते हैं वे भली भाँति समझते हैं कि भय के कारण कोई भी व्यक्ति किस प्रकार चुपचाप खड़ा हो जाता है। यदि वह किसी क्रिया को करने का प्रयत्न करे तो उसका भय कुछ सीमा तक दूर हो सकता है। यदि वह चलने फिरने लगता है, बिजली की रोशनी को जला देता है, विस्तर के कपड़ों को इधर उधर करने लगता है और गहरी साँसें लेने लगता है तो उसके भय का संवेग कुछ कम हो जाता है। यहाँ हमने देखा कि संवेग की अभिव्यक्ति को नियंत्रित कर उसको भी जीत लिया जा सकता है।

दूसरी ओर कुछ ऐसे संवेग हैं जिनकी अभिव्यक्ति न होने के कारण वे और भी तीव्र हो उठते हैं। यदि उन संवेगों से होने वाली स्वाभाविक क्रिया को रोक दिया गया तो उनका रूप और भी उग्र हो जाता है। यदि हमारा किसी ने अपमान किया और हम उसके प्रति अपनी घृणा के संवेग को व्यक्त न कर पाये तो वह संवेग महीनों चलता रहेगा और अन्त में तीव्रता से उसका विस्फोट हो जावेगा।

हमने अभी तक प्राथमिक संवेगों की चर्चा की जो बच्चे के संवेगात्मक जीवन की भली भाँति व्याख्या करते हैं। परन्तु प्रौढ़ों के संवेगात्मक जीवन की जटिलता प्राथमिक संवेगों के मिलाने से और सीखने के द्वारा तथा परिस्थितियों के द्वारा व्यक्तियों, वस्तुओं और संस्थाओं से उन सवेगों का सम्बन्ध स्थापित करने में अनुभव के बढ़ने से समझाई जा सकती है।

जैसा कि हमने देखा कि मैग्डूगल (McDougall) के सिद्धान्त के अनुसार संवेगात्मक जीवन के नियम कुछ मूल प्रवृत्तियों के कार्यों द्वारा संचालित होते हैं और प्रौढ़ों के संवेगों की जटिलता की व्याख्या इन एक या दो संवेगों के सम्मिलित क्रियायों के समिश्रण द्वारा की जा सकती है। इस प्रकार से तिरस्कार का संवेग क्रोध व नैराश्य से, भय (awe) का संवेग डर (fear), आश्चर्य (wonder) व अनुवर्तन (submission) से मिलकर बनता है। मैग्डूगल (McDougall) ने आत्मविश्वास, आशा, चिन्ता, निराशा आदि संवेगों के ओर भी संकेत किया है। उनके अनुसार ये व्युत्पादित संवेग (Derived emotion) हैं। ये संवेग किसी एक भावना या प्रवृत्ति से बद्ध नहीं होते पर किसी भी प्रबल भावना या प्रवृत्ति की क्रियायों के समय उठ खड़े हो सकते हैं। इनमें स्थाई संवेगात्मक विशेषतायें नहीं होती पर हमारे उद्देश्यों से सम्बन्धित किन्हीं भी परिस्थितियों में ये उमड़ सकते हैं।

स्थायी भाव (Sentiment)

किसी व्यक्ति के संवेग उस व्यक्ति द्वारा अनुभव किये हुए वस्तुओं या प्रयत्नों के लिये संगठित हो जाते हैं। संवेगों के किसी वस्तु या प्रत्यय के लिये संगठित होने को ही स्थाई भाव कहते हैं।

शैन्ड (Shand) का कहना है कि हमारे संवेग अथवा संवेगात्मक स्वभाव (emotional disposition) एक क्रम में विभिन्न वस्तुओं के लिये, जो उन्हें उत्तेजित करती हैं, संगठित हो जाते हैं। शैन्ड (shand) ने किसी वस्तु के चारों ओर केन्द्रित संवेगात्मक प्रवृत्तियों के सुसंगठित क्रम को स्थायीभाव की संज्ञा दी है।

मैग्डुगल (McDougall) के अनुसार —"Sentiment is an enduring Conative attitude towards some object induced by epxerience of that object."[1]

अर्थात् किसी वस्तु के अनुभव द्वारा प्रेरित उसके प्रति स्थाई चेष्टापूर्ण

---

१. McDougall. W. : 'Outline of Psychology', Methuen, p. 429.

अभिवृत्ति को स्थायीभाव कहते हैं। स्थायीभाव सीखे जाते हैं तथा रचनाबद्ध किये जाते हैं। इस सम्बन्ध में वे संवेगों से सर्वथा भिन्न होते हैं क्योंकि संवेग सीखे नहीं जा सकते।

स्थायीभाव केवल व्यक्ति अथवा वस्तुओं के ही प्रति नहीं होते वरन्, किसी आदर्श, अथवा विचार के प्रति भी हो सकते हैं। ऐसे स्थायीभावों का नैतिक जीवन में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। हमें सद्गुणों का ज्ञान हो सकता है परन्तु हमारे कार्य तब तक पुण्य नहीं हो सकते जब तक हमारे संवेग उन कार्यों को करने की प्रेरणा हमें न दें। बहुत कम ऐसे पाप होते हैं जो उनकी अच्छाई या बुराई की अज्ञानता से किये जाते हैं परन्तु इस तथ्य की उदासीनता द्वारा वे पाप किये जाते हैं। पर यदि किसी चीज़ को गहराई से अनुभव करने की हमारी प्रवृत्ति है, यदि हम किन्हीं आदर्शों की अधिक परवाह करते हैं तो हम उनके अनुसार कार्य करेंगे न कि उनके बारे में ज्ञान मात्र से।

चूँकि व्यक्ति अपने स्थायीभाव की वस्तु को विभिन्न परिस्थितियों में देखता है इसलिए उसके चारों ओर अधिक शक्तिशाली संवेगों का प्रतिरूप स्थापित हो जाता है। परिवार के प्रति आदर के स्थायीभाव बच्चे और माँ के आपसी सम्बन्धों से प्रारम्भ होते हैं। मैग्डूगल (McDougall) के अनुसार माता में पुत्र कामना व सुरक्षा की मूल प्रवृत्ति तथा बच्चे में अनुवर्तन (Submission) तथा शरणागति (Appeal) की मूलप्रवृत्तियाँ माँ तथा बच्चों में सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक होती हैं। ज्यों-ज्यों बच्चा बड़ा होता जाता है वह शरणागति व सुरक्षा की मूलप्रवृत्तियों द्वारा अपने पिता, बड़े भाई व बहिनों से भी सम्बन्धित होना सीख लेता है। परिवार मूलप्रवृत्यात्मक लगनों को सन्तुष्ट करता है और उन्हीं से बद्ध हो जाता है। यह सम्बन्ध धीरे २ इतना दृढ़ हो जाता है कि यदि बच्चा माँ बाप के मामूली बातों पर के झगड़े को सुनता है तो डर जाता है। यदि बाहर का कोई आदमी उसके बड़े भाई को चोट पहुँचाने का प्रयत्न करता है तो उसे क्रोध आ जाता है। उसके बड़े होने पर अपने माँ बाप की मृत्यु के पश्चात् उसकी रचना वृत्ति और संग्रह वृत्ति कार्य करने लगती है क्योंकि तब उसे अपने बच्चों के लिए धन जुटाने की आवश्यकता होती है।

शिक्षा के दृष्टिकोण से स्थायीभावों का बड़ा महत्व है। यदि हम व्यक्ति के संवेगात्मक प्रतिक्रियायों को वश में कर सकें तो उसके कार्यों को भी हम वशीभूत कर निश्चित कर सकते हैं। यदि हम अनुभव किये गए संवेगों को अपनी इच्छा के अनुकूल बना सकें तो हम उपयुक्त कार्यों को वश में करने की सम्भावना में आशातीत वृद्धि कर सकते हैं। अतएव शिक्षा का लक्ष्य यह होना

चाहिये कि बच्चे द्वारा निर्मित स्थायी भाव समाज की आवश्यकतानुसार होने चाहिए। शैन्ड (Shand) के अनुसार प्रेम (love) तथा घृणा (hate) मुख्य स्थायी भाव हैं। उन्होंने कहा है "The central duty of school teaching is to encourage loves and that it should use hates only as the gardener uses his purning knife to remove the rank growth the sap of the tree, and spoils its beauty."[१] अर्थात् पाठशाला की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य प्रेम को प्रोत्साहित करने का होना चाहिए। घृणा का प्रयोग केवल अवांछनीय वस्तुओं अथवा दुर्गणों को दूर करने के लिए इस प्रकार करना चाहिए जिस प्रकार कि माली अपनी कैंची का प्रयोग वृक्ष के उन अनावश्यकीय वृद्धि वाले भागों को काटने के लिए करता है जो वृक्ष के जीवन रस को व्यर्थ चूसते हैं और उनकी सुन्दरता को नष्ट कर देते हैं।

अमूर्त (abstract) वस्तुओं के प्रति स्थायी भाव प्रशिक्षण और पढ़ाई द्वारा जाग्रति किये जाते हैं।

स्थायी भावों के निर्माण में दो बातें अत्यन्त आवश्यक हैं—स्थायीभाव की वस्तु का बौद्धिक बोध (intellectual comprehension) और उसके प्रति संवेगों का संगठन। मूर्त (concrete) वस्तुओं के प्रति जो स्थायीभाव निर्मित होता है उसमें पहिली आवश्यकता (बौद्धिक बोध) अत्यन्त सरल है और बिना कष्ट के ही संभव है। उदाहरणार्थ, यदि हम अपने माँ, बाप व घर को प्यार करना सीख गये हैं तो हमें अपने प्यार की वस्तु को समझने में कोई कठिनाई न होगी परन्तु यदि हमें 'न्याय' से प्रीति करनी हो तो हमें पहले यह जानना होगा कि न्याय क्या है तथा अन्याय क्या है। और यह चीज सरल नहीं है। इसलिए नैतिक आदर्शों के प्रति स्थायीभाव निर्माण कराने वाली शिक्षा का अधिकाँश भाग अच्छे, बुरे, गंदे, साफ, इमानदारी, बेइमानी में भेद कराने व उन्हें स्पष्ट रूप से समझाने में लग जाता है। इस बौद्धिक शिक्षा के साथ-साथ शिक्षक को आदर्श से उपजे हुए वांच्छित कार्यों के साथ आनन्ददायक संवेगों को लगाने का प्रयत्न करना होता है और दुखदायी संवेगों के अवांछनीय कार्यों के लिये क्रूर कार्यों की भर्तसना व दयालु कार्यों की सराहना करनी होती है। झूठ बोलने पर सजा दी जा सकती है, गंदे कार्य की निन्दा की जा सकती है या अच्छे कार्य की चित्रण सामान्य प्रशंसा के लिए दीवार पर टांगा जा सकती है। कहानियों में अच्छे मनुष्य की सद्गति व दुर्जन की दुर्गति का चित्रण किया जा सकता है। इस

---

१. Nunn, T. P. :'Education : Its Data and First Principle', p. 185.

प्रकार से शिक्षक दयालु बच्चे, साफ सुथरे बच्चे व वीर बच्चे के प्रति स्थायी-भाव को स्थापित करने की आशा लेकर प्रयास करता है। इसी तरह वह बालकों में दया, स्वच्छन्दता और वीरता आदि गुणों के प्रति भी स्थायी भाव निर्मित करता है।

मनुष्य का नैतिक चरित्र उसके निर्मित स्थायीभावों पर अवलम्बित रहता है क्योंकि इन्हीं के अनुसार साधारण परिस्थितियों में उसकी सामान्य प्रतिक्रिया होती है। संवेगों का वेग भी जो व्यक्ति को आदर्शों के प्रति कार्य करने को बाध्य करता है इन्हीं स्थायीभावों से प्राप्त होता है। चरित्र का पूरा बिवरण आगे अलग अध्याय में किया जावेगा।

आत्मगौरव का स्थायीभाव (Self-Regarding Sentiment) :—बच्चा शीघ्र ही अपने आस पास की बस्तुओं में तथा अपने आप में अन्तर समझ लेता है। वह अनुभव करना तथा कार्य करना भी सीख लेता है। धीरे-धरे वह अन्य व्यक्तियों से अपने को भिन्न समझना भी सीख लेता है। जानदार व्यक्तियों व बेजान वस्तुओं के भेद को भी वह समझ लेता है। अब उसके विकास में एक ऐसी अवस्था आती है जब वह अपने को जीवित प्राणी के रूप में तो समझने लगता है परन्तु अपने को अपने विचारों की वस्तु के रूप में नहीं समझ पाता। यह अन्तिम अवस्था अन्य प्राणियों के कार्यों के अनुभव से ही आती है। बिना किसी अनुभव के बच्चा यह नहीं कह पायेगा 'मैं अपनी बहिन की गुड़िया चाहता हूँ पर ऐसा करना मेरे लिए उचित न होगा'—

"I want to take my sister's doll, but I should do wrong if I did that."

स्व-आलोचना की शक्ति सामाजिक मिथ: क्रिया (social interation) की उपज है। एक बच्चा जो अपने को शक्ति का श्रोत समझता है दूसरे लोग उसे प्रशंसा, निन्दा व निर्णय का पात्र समझते हैं। वह धीरे-धीरे अपने बारे में सोचना सीखता है। पहिले वह अपने को विचारशील प्राणी के रूप में तत्पश्चात् अपने को विचार की वस्तु मानने लगता है। इसी कारण से आगे चलकर अहं (ego) को लेकर उसे दर्शन सम्बन्धी कठिनाइयाँ आती हैं, और दिन प्रति दिन की घटनाओं के पीछे अहं भाव की वे समस्यायें भी प्रस्तुत हो उठती हैं जो उसके नित्य दिन के कार्यो के पीछे छिपी रहती है और जो उसके कार्यों का निर्णय भी करती हैं। इसे अंग्रेजी में इस तरह कहा जा सकता है।

"He learns by degrees to think of himself under two aspects—as a thinking being, and also as an object of thought. Hence asrises, at a later stage, all the philosophical difficulties of the 'ego', and the problems of the identity of that self which

lies behind the particular events or everyday life and which passes judgment on its own acts."

आत्मगौरव के स्थायीभाव के विकास का एक उदाहरण लीजिए। हम पहिले पढ़ चुके हैं कि माँ और बच्चे के आपसी सम्बन्ध से परिवार के प्रति स्थायीभाव का जन्म होना शुरू हो जाता है। बच्चे के बढ़ने पर यदि माँ बाप में से किसी एक की मृत्यु हो जाती है तो उसकी संग्रह वृत्ति और रचना वृत्ति काम करने लगती है।

व्यक्ति के जीवन में केवल परिवार के प्रति ही स्थाईभाव नहीं होता। किशोरावस्था में अन्य प्रीतियों के प्रति भी स्थाईभाव हो सकते हैं और ऐसे भी अवसर आ सकते हैं जबकि परिवार के प्रति उसके क्रोध की भावना भड़कउठे। अन्त में वहएक प्रौढ़ के रूप में हमारे सामने आकर अपना परिवार बसाता है और अन्य मूलप्रवृत्तियाँ उसमें प्रकट होने लगती हैं जैसे—पुत्र-कामना, भोजनान्वेषण, आत्मप्रदर्शन, कामभावना, संग्रह वृत्ति और रचना प्रवृत्ति आदि। इसका अपने परिवार के भरण पोषण में प्रकाशन होने लगता है। आगे चलकर उसके परिवार का स्थायीभाव देश, मन्दिर, कक्षा, व्यवसाय, ज्ञान व आदर्श आदि के स्थाईभावों से बद्ध हो सकता है और अन्त में इन सभी को मिलाकर वह जैसा आदमी अपने को मानने लगता है वैसा ही बन जाता है। इससे उसके आत्मगौरव का स्थायीभाव प्रकट होता है।

प्रारम्भिक जीवन में हमारे स्थायीभाव पशुओं के समान किसी वस्तु की प्राप्ति के उद्देश्य से होते हैं। एक बच्चा उसी प्रकार चाकलेट का ज्यादा से ज्यादा हिस्सा अपने लिए चाहता है जैसा कि एक लोभी कुत्ता हड्डियों के बड़े भाग की कामना करता है। एक प्रौढ़ अपने कार्य की किसी वस्तु में, जिससे उसे लाभ हो, निमग्न हो सकता है और क्षण भर के लिए वह अन्य सभी वस्तुओं को भूल सकता है।

आगे चलकर जीवन में आत्मगौरव का स्थायीभाव निर्मित हो जाता है। इसका कार्य है इन उक्त प्रकार के स्थायीभावों पर पूर्ण नियंत्रण रखना जो अहं के लिए भूमिका तैयार करते हैं। नन् (Nunn) ने इसी की व्याख्या करने के लिए एक उपयुक्त उदाहरण प्रस्तुत किया है—

"Supose a money-loving man to have the opportunity of making great gain by safe but questionable means. A habit of honesty, acquired like a dogs may keep him straight, but if this is not strong enough, there may still be, in the self-regarding sentiment, a reserve force sufficient to restrain the impulses

that belong to the sentiments for gain. The man turns his mental gare back from the immediate object of the sentiment and views himself as the agent in this dirty business. His self contemplation is coloured by the shame and remorse he had suffered through backsliding in the past and by anticipation of possible shame and remorse to come; and the thoughts of himself as the doer of this act is, we may suppose, rejected in a moment of aversion that wells up out of the self-regarding sentiments."[1]

'मान लीजिए एक धन दौलत का इच्छुक व्यक्ति बुरे साधनों द्वारा लाभ उठाने का अवसर पाता है। कुत्ते की ईमानदारी जैसी उसकी अर्जित ईमानदारी की आदत उसे इस दुष्कर्म से बचा सकती है परन्तु इस आदत के अधिक दृढ़ न होने पर भी हो सकता है कि आत्मगौरव के स्थायीभाव की एक ऐसी सुरक्षित शक्ति इस धन दौलत के लाभ के स्थाईभाव की भावनाओं पर प्रतिबन्ध लगा सके। ऐसा होने पर व्यक्ति अपनी दृष्टि को स्थायीभाव की तत्कालिक लाभ की वस्तु की ओर से फेर लेता है और अपने को इस घृणित व्यापार का एक अंग मानने लगता है। उसका आत्म-चिन्तन भूतकाल में किये हुए स्वधर्म त्याग की लज्जा व घृणा से परिप्लावित हो जाता है और वह आगामी लज्जा तथा घृणा का पहिले ही से अनुमान लगा लेता है। आत्म गौरव के स्थायीभाव से उत्पन्न विचार उसको इस निन्दित कार्य का कर्त्ता बनने से बचा लेता है।"

आत्म गौरव का स्थाईभाव और शिक्षा
(Self-regarding Sentiment and Education)

बहुत से व्यक्ति, वे चाहे जिस प्रकार के हों, अपने चरित्र व गुणों व क्षमताओं एवं सामर्थ्यों के सम्बन्ध में एक निश्चित धारणा बना लेते हैं। यह कल्पना अपने स्वयं के विचारों द्वारा तथा अन्य लोगों के हमारे प्रति किये गए व्यवहार से होती है। एक सुन्दर बच्चा अपनी सुन्दरता का अनुभव अन्य व्यक्तियों के अपने प्रति व्यवहारों के द्वारा करता है। यदि एक चतुर बच्चे की सभी लोग सराहना करते हैं तो वह अपने को चतुरता की चोटी पर पहुँचा हुआ मानने लगता है। आकर्षक व्यक्तियों का मुस्कानभरा स्वागत होता है और बद-सूरत व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों के साथ निभने में कठिनाई होती है। इसके

१. Nunn T. P. : 'Education : Its Data & First Principle'; Edward Arnold & Co. London. 1949, p. 200-201.

अतिरिक्त हम अपने चरित्र व व्यवहार के लिए कुछ आदर्शों का निर्माण करते हैं।

सभी उपदेशकों व शिक्षकों के अधिकांश उपदेश बालक के अहंभाव के प्रति होते हैं। उन्हें हम यह कहते हुए सुनते हैं "यह कार्य तुम्हारे योग्य नहीं है; इसे कर तुम अपने को गिरा रहे हो आदि।" "That is unworthy of you; you lower yourself in doing that etc." हम स्वयं अपने से कहते हैं कि "मेरे लिए यह निम्न स्तर का कार्य है मैं इस तक अपने को नीचे नहीं गिरा सकता"—"That is beneath me, I cannot sink to that."। इसके माने हैं कि हम अपने आचरण को अपने प्रति एक विचार के रूप में प्रकट करते हैं जो हमारे लिए एक निश्चित स्तर को प्रस्तुत करता है।

बच्चों के प्रशिक्षण में इस बात का विशेष महत्व है। जैसा वे अपने सम्बन्ध में सोचेंगे किसी सीमा तक वे उसके तदनुरूप ही बनेंगे। जो बच्चा अपने विचारों में अपने को ईमानदार, परिश्रमी तथा सच्चा समझता है यदि कोई उससे कह दे कि तुमने झूठ बोला है या तुम अपना कार्य पूर्णरूपेण नहीं कर रहे हो तो वह लज्जित हो जावेगा। एक लड़का जिसने अपने को बुरा मान लिया है वह अपने दुष्कर्मों पर भी गर्व प्रकट करता है। हम कभी-कभी व्यक्तियों को कहते सुनते हैं कि 'मैं तो उसकाभी गुरू हूँ, एक ही बार में ठीक कर दूंगा।' ऐसे ही व्यक्ति अपने दुष्कर्मों में गौरव का अनुभव करते हैं जब कि दूसरी ओर— 'यह काम अच्छे लोग नहीं करते'—यह कहावत इस बात को प्रकट करती है कि कोई व्यक्ति विशेष अपने को 'भलेमानुष' के रूप में मानता है और इस कारण से वह अपने को दुष्कर्मों में हाथ डालने से बचा लेता है।

हमारी अपने स्वयं के विषय में धारणा विभिन्न उपायों से बनती है। एक तो यह हमारी प्रकृति प्रदत्त निधियों एवं चरित्र द्वारा बन सकती है और दूसरा अन्य लोग हमारे प्रति किस प्रकार का व्यवहार करते हैं यह तथ्य भी हमारी अपने स्वयं के विषय में धारणा को निश्चित करने में सहायक होता है।

जिस बच्चे को शुरू से ही इस बात में विश्वास कराया गया है कि वह अच्छा लड़का है, उसके अच्छे लड़के होने की सम्भावना अधिक होगी अपेक्षाकृत उस बच्चे से जिसे सदा नालायक, शरारती व दुष्ट कहा गया है और जिसे यह भी विश्वास कराया गया कि वह अन्त में बुरा लड़का ही रहेगा। अतः हमें स्कूलों में यह नहीं कहना चाहिए कि अमुक बालक गन्दा है, अमुक नटखट है, और अमुक दुष्ट है क्योंकि ये बच्चे इन्हीं के अनुसार अपने को मान लेते हैं और उसी प्रकार के बन जाते हैं।

सुस्थायी आत्म को निर्मित कर सन्तुलित व्यक्तित्व का विकास करना कोई सरल कार्य नहीं है। हमें इसके लिए परिश्रम अवश्य करना होगा। नन (Nunn) ने जेम्स (James) के प्रसिद्ध अध्याय (Principles of Psychology, Chapter X) का उद्धरण दिया है।

"A man gifted by nature and smiled on by fortune, may approximate to the Greek ideal, and build up a self into which love of the body, of family and friends, of riches, of intellectual and spiritual things makes a unified and nicely balanced whole; but even a manof strong charater generally has to make drastic sacrifices among his possibilities, while a man of weak character wobbles and drifts and reaches no stable self at all." अर्थात् प्रकृति के वरदानों से विभूषित व तेज भाग्य वाला व्यक्ति ऐसा आत्म निर्माण कर सकता है जिसमें शारीरिक प्रेम, पारिवारिक प्रेम, मित्रों के प्रेम, दौलत, बौद्धिक व आध्यात्मिक वस्तुओं के प्रेम सेमिलाकर एक सुन्दर व सन्तुलित पूर्ण बना हो। दृढ़ चरित्र वाले व्यक्ति को भी अपने सुस्थायी आत्मनिर्माण में त्याग करने पड़ते हैं। कमजोर चरित्र वाला तो इधर उधर ढुलकता रहता है, बहता रहता है और किसी भी किनारे पर नहीं पहुँच पाता। फलस्वरूप सुस्थायी आत्म उसके लिए स्वप्न मात्र रहता है।

बच्चे के चरित्र में सुधार लाने के लिए उसके आत्म गौरव के स्थायभावी को जाग्रत कर उसमें आत्म सम्मान की भावना को उदय करना होगा और यही बच्चे की पूर्ण शिक्षा का मूल है।

प्रतिस्थापित क्रिया (Substitute activities)

मनुष्य की असीम आवश्यकतायें होती हैं जिनमें आत्म गौरव (self esteem) की लगन सबसे अधिक शक्तिशाली होती है। मूलप्रवृत्तियों के सिद्धान्त का एक परिणाम यह है कि जो मूलप्रवृत्त्यात्मक प्रतिक्रियाएँ अथवा आवश्यकताएँ व्यक्ति के आत्मगौरव के स्थायीभाव और सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्रियाओं व रीति रिवाजों से संघर्ष में आती हैं उनका मार्ग अवरुद्ध हो जाता है और उनसे सम्बन्धित शक्ति का प्रवाह अन्य मार्गों में होकर फूट पड़ता है या वह शक्ति अपने प्रकट होने के लिए अन्य मार्गों को निकाल लेती है। संवेगात्मक विकास के लिए यह महत्वपूर्ण है। इसके द्वारा आदिकालीन मूल-

प्रवृत्तियों के सन्तोष से सम्बन्धित संवेग अन्य क्रियाओं के रूपों से बद्ध हो जा हैं जिनमें कुछ तो समाज द्वारा स्वीकृत तथा कुछ अस्वीकृत होते हैं। इसी क्रिया को स्थानापन्न क्रिया (Substitute activity) कहते हैं। इस विचार की सम्भावना का श्रेय मैग्डुगल और फ्रायड (Freud) को जाता है।

अब हम कुछ स्थानापन्न क्रियाओं का वर्णन करेंगे जो बच्चों व प्रौढों में पाई जाती हैं। वे निम्नलिखित हैं :—

१. शोधन (Sublimation)
२. अवदमन (Repression)
३. समतोलन (Compensation)
४. कल्पना द्वारा समाधान (Solution by fantasy)
५. न्याय संगत सिद्ध करना (Rationalisation)
६. प्रक्षेप (Projection)
७. अभिज्ञान (Identification)
८. रोग द्वारा समाधान (Solution through ailment)
९. प्रत्यागमन (Regression)

१. **शोधन** (Sublimation)—इसके अनुसार जो प्रेरणा (drive) अथवा मूलप्रवृत्यात्मक प्रतिक्रियाएँ हमारे आत्मगौरव की भावना पर ठेस पहुँचाती है उन्हें हम कुछ न कुछ मात्रा में पहचान लेते हैं। मूल प्रेरणा (original drive) के स्थान पर जो व्यवहार स्थानापन्न क्रिया के रूप में होता है वह प्रथम तिरस्कृत व्यवहार से मिलता है अथवा उसके समान होता है ।

कल्पना करिए एक बड़ा ही आत्म गौरव की भावना से युक्त मनुष्य है। वह एक विवाहित स्त्री से प्रेम करने लगता है। यह मनुष्य अपने मन से अपनी वास्तविक भावनाओं को पृथक नहीं कर सकता है और ऐसी भावनाओं को दूसरे व्यक्तियों के सम्मुख व्यक्त भी नहीं कर सकता। ऐसी हालत में वह अपनी इच्छाओं की अधूरी अभिव्यक्ति उस स्वी के सम्पूर्ण परिवार की ओर सहानुभूति पूर्ण कार्यों को करके करेगा। वह यह दिखलायेगा कि वह पूरे परिवार का हितकारी है जब कि वास्तव में वह उसी स्त्री के प्रति सहानुभूति रखता है।

२. **अवदमन** (Reqressso n)—यह एक दूसरी स्थानापन्न क्रिया है। इसके अनुसार वह प्रेरणा जो हमारी आत्म प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाती है उसे चेतना से अचेतना में ढकेल दिया जाता है। यही अवांछनीय और दमन की हुई इच्छायें एक काल्पनिक भेष बदल कर

सुन्दर और अच्छे कूटवेष (guise) में चेतना के जगत में प्रवेश करने का प्रयास करती है।

मान लीजिए अपने पिता के वसीयतनामे में उसके पुत्र का नाम लिखा हुआ है। एकाएक पिता बीमार पड़ जाता है। उस क्षण पुत्र मन ही मन प्रसन्न होता है कि पिता मर जाय जिससे सारी सम्पत्ति उसे मिले। उसी क्षण उसके मनमें दूसरा विचार आता है कि अपने पिता के सम्बन्ध में उसे ऐसी बातें नहीं सोचनी चाहिए। लोग उसके बारे में क्या सोचेंगे? परन्तु इसके बाद वह फिर सम्पत्ति को पाने के स्वप्न देखने लगता है और मन ही मन आनन्द से भर जाता है। पिता के मर जाने की इच्छा व्यक्ति के चेतना जगत से बाहर फेंक दी जाती है पर वस्तुतः वह हमेशा के लिए समाप्त नहीं हो जाती। चेतना जगत में पुनः प्रवेश पाने के लिये वह नया रूप धारण कर लेती है। सबसे सीधा उपाय भेष बदलने का है जो अचेतना जगत में सम्भव है क्योंकि वहाँ न तो कोई निरीक्षण करने वाला है और न कोई तर्क। अर्द्ध चेतन में कोई भी विचार विरोधी विचार से जुड़ सकता है और विरोधी विचार अपराधी इच्छा (guilty wish) की जगह भेष बदलकर कार्य कर सकता है। पिता के मरने की इच्छा उसके खुशहाल होने की कामना का रूप धारण कर उससे बद्ध हो सकती है और यह विरोधी विचार पिता के मर जाने के अपराधी विचार की जगह भेष बदलकर काम कर सकता है। इस प्रकार से चोला बदल कर पिता के मरने की इच्छा सुन्दर रूप धारण कर चेतना जगत में पुनः प्रवेश पा जाती है। इन अवसरों पर पुत्र अपने पिता की सेवा सुश्रूसा में रोज हाजिर रहता है, डाक्टरी सलाह व तरीके की सावधानी असाधारण रूप से रखता है और इस प्रकार दयापूर्ण रुचि के साथ कार्य करता रहता है। इन सब प्रकार के बनावटी कार्यों द्वारा पुत्र अपने पिता के मरने की इच्छा को जो अचेतना जगत में ढकेली हुई है, कुछ सीमा तक अभिव्यक्त कर पाता है।

अवदमन व्यक्ति के लिए बहुत लाभदायक है। कुछ समय के लिए यह दुख दर्द को विस्मृत करने का अमोघ साधन है। तत्कालिक दुख दर्दों के निवारण करने के लिए रामवाण औषधि होते हुये भी यह अन्य समस्याओं को जन्म देता है। सबसे दुर्भाग्य की बात तो यह है कि चेतना जगत से बहिष्कृत की गई इच्छा हमेशा के लिए समाप्त नहीं हो जाती वह किसी न किसी घुमाव फेर से पुनः प्रकट होती है। इस घूम फिर कर प्रकट होने से इन दमन की हुई इच्छाओं को विभिन्न प्रकार से अभिव्यक्त किया जा सकता है और इस तरह से अपने आत्मसम्मान की रक्षा की जासकती है। बहिष्कृत इच्छा भेष बदलकर नाना प्रकार के विचित्र व्यवहारों की सृष्टि करली है। इसी से मनुष्य

आत्म प्रशंसा करने लगता है या डींग मारने लगता है या उसका व्यवहार असहनशील (overbearing) हो जाता है। अतः अवदमन एक खतरनाक क्रिया है।

(३) **समतोलन** (Compensation) :—इस क्रिया से यह मतलब है कि किसी गुण की कमी को दूसरे गुण या विशेषता अथवा कार्य द्वारा पूर्ति करना। एक लड़का जो पढ़ने में अच्छा नहीं होता वह इस कमी को खेल कूद में प्रवीण होकर पूर्ण कर लेता है। इसमें व्यक्ति अपनी कमजोरी या क्षति को पूरी तरह से समझता है और उसे पूर्ण करने के लिए उद्यत होता है। व्यक्ति उसी क्षेत्र में प्रविष्ट होकर सफलता की कामना करता है जिसमें सफलता मिलने व उससे प्राप्त सन्तोष की सम्भावना अधिक रहती है। समतोलन उस समय खतरनाक सिद्ध हो सकता है जब व्यक्ति अपनी कमजोरी व कमी को स्वीकार नहीं करता। हीनभावना को नष्ट करने के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है। किसी व्यक्ति को उसकी चिन्ता के वास्तविक कारण से दूर रखने के लिए भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार के लाभ के होते हुए भी इसमें कुछ दोष हैं। हीन भावना से पीड़ित होकर कोई व्यक्ति आत्म प्रशंसा, धोका देना या औरों को नीचा दिखाने के अन्य उपायों की शरण लेता है। पर इनसे वह अपने को ही धोका देता है नकि औरों को।

(४) **कल्पना द्वारा समाधान** (Solution by Fantacy) :—यह एक चौथे प्रकार की स्थानापत्र क्रिया है। अनेकों बार हम अपने कार्यों द्वारा विश्व को प्रभावित करने या अन्य व्यक्ति के जीवन की रक्षा के स्वप्न देखा करते हैं। यह कल्पना इच्छा पूर्ति के लिए की जाती है। कभी-कभी हम विचारों में ही कल्पना नहीं करते वरन् हमारे कार्य भी कल्पनापूर्ण होते हैं।

इस क्रिया द्वारा स्नेह तथा मैथुन की आवश्यकता पूर्ण हो जाती है। इससे स्नेह, प्यार, आदर की विस्तृत कामना पूर्ण रूपेण सन्तोष की सीमा को छू लेती है।

यह अवश्यवभावी है। हमारे बहुत से असहनीय कष्ट व दुख दर्द इससे हल्के हो जाते हैं और फिर उन्हें हम आसानी से सह सकते हैं। इसकी अनुपस्थिति में यथार्थता के अनुभव का सामना करना एक दुष्कर कार्य हो जाता है। यह भी उस अवस्था में खतरनाक सिद्ध हो सकती है जबकि हम काल्पनिक जगत और यथार्थ जगत के भेद को ही न समझ सकें।

(५) **न्याय संगत सिद्ध करना** (Rationalisation) :— इसके द्वारा हम अपनी की गई क्रिया अथवा कार्य को न्याय संगत बतलाने का प्रयत्न करते हैं। मान लीजिए हमारे पास रुपये नहीं हैं और मकान खरीदने के लिए हमने

दस हज़ार रुपये कर्ज ले लिए। हम अच्छी तरह से जानते हैं कि हमसे भारी गलती हो गई है और हम यह भारी कर्ज अदा न कर पावेंगे। हम यह भी जानते हैं कि अन्य लोग हमारी समालोचना करेंगे। परन्तु न्याय संगत सिद्ध करने की युक्ति से हम घर खरीदने के कार्य को न्यायसंगत सिद्ध कर देंगे। हम अपने निर्णय की पुष्टि के लिए कारण खोज निकालेंगे चाहे निर्णय से उनका कोई सम्बन्ध न हो। यह तथ्य हमको छोड़कर सभी को विदित है कि हमारा निर्णय इन कारणों द्वारा नहीं किया गया था। परन्तु ये झूठे कारण हमारे आत्माभिमान की रक्षा करते हैं क्योंकि इन कारणों से हम अपने को गैर जिम्मेदार नहीं समझते जो अपना पैसा पानी की तरह से बहाते फिरते हैं।

किसी सीमा तक यह युक्ति अवश्यभावी हैं। परन्तु बालकों में आत्म-सम्मान की रक्षा के इस साधन को हतोत्साहित किया जाना चाहिए।

(६) **प्रक्षेप** (Projection) :—यह युक्ति बच्चों में अधिक रूप से पायी जाती है। अक्सर हम उनको यह कहते सुनते हैं कि "कलम ने यह किया" या "यह हमारे दोस्त की गल्ती है न कि हमारी।" जब हमारे आत्मसम्मान पर किसी अस्वीकृत प्रेरणा (Drive) द्वारा धब्बा लगने को होता है तो हम उस प्रेरणा (Drive) का प्रक्षेपण अन्य किसी व्यक्ति में कर देते हैं। इससे दो प्रकार से हमारे आत्मसम्मान की रक्षा हो सकती है। एक यह कि हम पूरे अपराध का दूसरे व्यक्ति पर प्रक्षेपण कर दें और हम इस बात पर पूर्णरूप से विश्वास कर लेवें कि सारी शत्रुता हमारे सहयोगियों के कारण हुई है और इस प्रकार से हम अपने को अपराध की भावना से मुक्त कर सकते हैं। दूसरा यह हो सकता है कि पूरी तरह से हम दोष को दूसरों पर न डालें। अस्पष्ट रूप से हम अपनी शत्रुतापूर्ण भावना के प्रति सचेत हों पर दूसरों की शत्रुता में हमारा पूर्ण विश्वास होने के कारण हम अपनी थोड़ी सी शत्रुता की भावना को औरों की अपेक्षा अच्छा समझेंगे। अपने अपराध की भावना को भी हम श्रेयस्कर समझेंगे। प्रक्षेप (Projection) से हमें सन्तोषजनक निराकरण नहीं मिलता बल्कि इससे अधिक हानि ही हो सकती है।

(७) **अभिज्ञान** (Identification) :—कभी-कभी हम इस सर्वविदित स्थानापन्न क्रिया का भी सहारा लेते हैं। सिनेमा देखने वाले सिनेमा की अभि-नेत्रियों से अपना अभिज्ञान करते हैं और उपन्यास पाठक उपन्यास के नायक से अपना अभिज्ञान करते हैं। इस प्रकार से अभिनेत्री व नायक की प्रतिष्ठा को वे अपने में ले लेते हैं। अभिनेत्री या नायक की सफलता में वे अपने को ऊँचा उठा हुआ देखते हैं। वह इस तरह से गौरवान्वित हो उठते हैं कि मानो उन्होंने

ही उस सफलता को वरण किया हो। अभिज्ञान (Identification) कुछ मात्रा में हानि रहित होता है परन्तु अधिक मात्रा में यह भी हानिकारक सिद्ध होता है।

(८) **रोग द्वारा समाधान** (Solution through Ailments) :—आत्म-गौरव की आवश्यकता और कार्य से पीछे हटने की आवश्यकता के मध्य संघर्ष को दूर करने के लिये बीमारियाँ सुविधाजनक उपाय हैं। रोगों या बीमारियों का यह प्रयोग अक्सर देखने में आता है। जब बालकों को कुछ कष्टदायक कार्यों को करने को कहा जाता है तो वे कुछ रोग ग्रहण कर लेने की चेष्टा करते हैं ताकि ऐसे कार्यों से छुटकारा मिल सके। सामान्य कमजोरी, सिर दर्द, दिल की बीमारी या हाथ का लकवा ये इन रोगों के विभिन्न रूप हैं। ये रोग हमको कार्य से छुटकारा दिलाने के साथ-साथ और लोगों का ध्यान भी हमारी ओर आकर्षित करने के सुन्दर उपाय हैं। बीमार बच्चे की माँ उसकी अधिक देखभाल करती है। इसी प्रकार बीमार आदमी की भी अधिक देखभाल की जाती है और उसे आराम करने का मौका मिल जाता है।

(९) **प्रत्यागमन** (Regression) :—कभी-कभी बच्चे को सीखना कठिन लगता है। वह फेल हो सकता है और उसके फेल होने से संवेगात्मक प्रति-क्रियाओं में भारी परिवर्तन देखने को मिलते हैं। ऐसी हालत में वह या तो किसी स्थानापन्न क्रिया का सहारा लेता है या परिस्थिति से भगने का प्रयत्न करता है। हम सभी ने जनता के सम्मुख अपने प्रथम भाषण में, आदर्श पाठ के प्रदर्शन में या मंच पर अभिनय आदि के अवसरों पर इन परिस्थितियों का अनुभव किया होगा। कभी-कभी ऐसे अवसरों का परिणाम यह होता है कि व्यक्ति हमेशा के लिए स्थाई रूप से इन परिस्थितियों से दूर हो जाता है। अपने विकास की इस अवस्था के बाद वह अपना विकास भी बन्द कर देता है। अब वह पुनः बच्चा जैसा बन जाता है। जो बच्चा परीक्षा में असफल हो जाता है वह या तो आँखों से आँसू बहाता है या छोटे बच्चों जैसी आदतें फिर विकसित करने लगता है। उदाहरण के रूप में नाखून काटना और बातचीत में बच्चों की रीति का प्रयोग करना आदि।

प्रत्यागमन बच्चों में ही नहीं होता बल्कि प्रौढ़ों में यह अक्सर देखने को मिलता है। परन्तु इसके विभिन्न स्वरूप कम स्पष्ट होते हैं। किसी मनुष्य का दूसरों के विश्वास का भूखा रहना पर स्वयं किसी का विश्वास नहीं करना, मजदूरों का धीरे धीरे काम करने का तरीका, अनौपचारिक (Nonofficial) हड़तालें, केवल अधिकारों की ही चिन्ता करना, आदि प्रौढ़ों में प्रत्यागमन के उदाहरण हैं। प्रत्यागमन के बहुत से रूप अनुपयुक्त होते हैं जो बच्चों के

संवेगात्मक विकास में बाधा उत्पन्न करते हैं, उनके शिक्षा में विकास में रोड़ा अटकाते हैं और बालापराधों (Dilinquency) को उकसाते हैं।

संवेगात्मक विकास (Emotional Development)

कुछ संवेग भिन्न भिन्न अवस्थाओं (ages) में एक से होते हैं परन्तु कुछ का रूप भिन्न भिन्न अवस्थाओं में भिन्न भिन्न होता है। निराश बच्चे का क्रोध बहुत कुछ निराश प्रौढ़ से मिलता जुलता है परन्तु लिंग सम्बन्धी संवेगों में प्रौढ़ों के अनुभव बच्चों के अनुभवों से भिन्न होते हैं।

हो सकता है कि हम लोग बच्चों व बुढ्ढों के आन्तरिक संवेगात्मक अनुभवों की भिन्नता को न समझ पावें परन्तु इतना तो अक्षरशः सत्य है कि उनकी संवेगात्मक अनुभवों की अभिव्यक्ति के ढङ्ग में विशेष भिन्नता होती है। छोटे बच्चे के संवेगों में कोई विशेष भेद नहीं दिखाई देता। उसको देखकर हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि वह उत्तेजित है परन्तु छोटे बच्चे में यह बतलाना कठिन होगा कि अमुक उत्तेजना प्रसन्नता की सूचक है अथवा अप्रसन्नता की। आगे चलकर हम प्रसन्नता (Pleasant) व अप्रसन्नता के संवेगों में भेद कर सकते हैं परन्तु क्रोध और भय के संवेगों में आसानी से भेद नहीं कर सकते। इस अवस्था में स्नेह व आनन्द के संवेगों का वर्गीकरण भी इतना सरल नहीं है जितना सरल प्रतीत होता है। ज्यों-ज्यों बच्चा बड़ा होता जाता है त्यों त्यों वह अपने संवेगों में सूक्ष्म परिवर्तन अभिव्यक्त करता रहता है। ये संवेग भय, घृणा, क्रोध, ईर्ष्या, या इन सभी के मिश्रण हो सकते हैं। प्रसन्नता की उत्तेजना का भी वर्गीकरण किया जा सकता है— ये संवेग उल्लास, गर्व, स्नेह आदि में विभाजित किये जा सकते हैं। स्नेह के संवेग को और आगे भी विभाजित किया जा सकता है। जैसे माँ के प्रति व्यक्त किया गया स्नेह बड़े भाई के प्रति के स्नेह से भिन्न हो सकता है। अन्त में जब बच्चा परिपक्वता (maturation) की अवस्था पर पहुँच जाता है तब वह नाना प्रकार के संवेगों का अनुभव तथा उनका प्रदर्शन करने लग जाता है।

संवेगों के सूक्ष्म से सूक्ष्म वर्गीकरण के साथ साथ हमको यह भी ज्ञात होता है कि इनकी अभिव्यक्ति में असंख्य प्रतिबन्ध लगते जाते हैं। अपने उल्लास को हम ठहाका मारकर हंसने से व्यक्त करने की अपेक्षा हल्की मंद

व दबी हुई मुस्कान से व्यक्त करते हैं क्रोध को ठोकर मारकर अथवा काट कर व्यक्त करने की अपेक्षा हम भौं सिकोड़कर अथवा कठिन स्वभाव के लक्षण चेहरे पर लाकर व्यक्त करते हैं।

आइए, हम इस बात की विवेचना करें कि संवेगात्मक विकास के सिद्धान्त किस प्रकार से बचपन या बाल्यावस्था, किशोरावस्था और प्रौढ़ावस्था में लागू होते हैं। स्पष्ट रूप से विभेद करने योग्य संवेग हैं—क्रोध, भय और स्नेह। अब हम इस बात की जाँच करेंगे कि भिन्न भिन्न अवस्थाओं में क्रोध, भय और स्नेह के संवेगों की अभिव्यक्ति के क्या तरीके हैं।

बाल्यावस्था या बचपन (Childhood)

क्रोध (Anger) :—शिशु (infant) की स्वतंत्रत शारीरिक गति (physical movement) में बाधा उपस्थित कर देने से उसके अन्दर क्रोध की ज्वाला भड़क उठती है। शारीरिक गति में बाधक क्रियाएँ इस प्रकार की हो सकती हैं जैसे उसे स्नान कराना, उसे कपड़ा पहिनाना अथवा उसके बाल सुव्यवस्थित करना। वह अपने क्रोध को रोकर, चिल्ला कर, शरीर को सिकोड़कर, लाल चेहरा बनाकर, हाथ पैरों को इधर-उधर फेंक कर अभिव्यक्त करता है। क्रोध की ये विभिन्न मुद्रायें तत्काल ही शान्त हो जाती हैं।

दो वर्ष से छोटे बच्चे क्षणिक शारीरिक प्रतिबन्ध के प्रति सहिष्णु होते हैं परन्तु उनके बड़े कार्यों में बाधा उत्पन्न होने से उनके क्रोध की सीमा नहीं रहती। उनकी क्रियाओं में बाधक वस्तुएं इस प्रकार हैं—जैसे उनका मुँह धोया जाना या उन्हे शौचादि कराने को ले जाना आदि। ऐसा बच्चा अपने क्रोध का प्रदर्शन बड़े तीव्र विरोध, बाधा डालने वाले प्रौढ़ को धक्का देकर तथा रो पीटकर करता है। दो वर्ष की अवस्था में उसके विरोध के चिन्ह अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाते हैं। इस अवस्था पर उसका क्रोध सामाजिक रूप धारण कर लेता है और बच्चे खिलौने या अपनी चीजों पर झगड़ने लगते हैं। तीन या चार वर्ष की अवस्था में झगड़ने की यह प्रवृत्ति उग्र रूप धारण कर लेती है। ये झगड़े ठोकर मारने, मार पीट करने तथा थूकने द्वारा प्रकट होते हैं। वस्तुतः वह झगड़े क्षणिक और अस्थायी होते हैं। प्रौढ़ों के विशेष ध्यान देने से ये स्थिर हो सकते हैं। बचपन के मध्यकाल में हम बच्चों को कठिन पहेली या कठिन यांत्रिक व्यवस्थाओं पर क्रोधित हुआ देखते हैं। इस अवस्था में उनका क्रोध शाब्दिक रूप धारण कर लेता है तथा सामाजिक गालियाँ ली

व दी जाती हैं। विरोध होने पर गालीगलौज की विशेषता प्रायः देखने को मिलती है।

(२) भय (Fear)—शिशु अकस्मात आवाज गति या रोशनी की चमक से डर सकता है। आगे चलकर वह अन्य प्रकार के भयों का अनुभव करता है। वह ऊँची जगहों, अन्धकार व अपरिचित व्यक्तियों से भयभीत होता है। बहुत सी भय की प्रतिक्रियाएं बच्चा अन्य लोगों से सीखता है। बच्चों के बीमारी से डरने के प्रमाण बहुत कम हैं परन्तु इसके प्रमाण सबसे अधिक प्राप्य हैं कि माँ बाप पर अति आश्रित बच्चा उनके बिछोह से काफी भयभीत होता है।

(३) स्नेह (Affection)—स्नेह की अभिव्यक्ति सर्वप्रथम बड़ी ही अस्थाई व विशिष्ट होती है। विशेषकर यह उन व्यक्तियों तक सीमित रहती है जो बच्चे की खाने पीने, आराम व सुख जैसी तात्कालिक भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते है। सबसे पहिले बच्चा माँ से फिर बाप से और अन्त में परिवार से स्नेह करता है।

ज्यों-ज्यों बच्चे का सम्पर्क लोगों से बढ़ता है उनके प्रति उसके स्नेह का क्षेत्र व्यापक होता जाता है। यह भी निश्चित है कि समय समय पर उसका स्नेह किसी व्यक्ति के लिये समाप्त होता रहता है और किसी के लिये उत्पन्न होता रहता है। ऐसा बहुत कम होता है कि पुराने मित्र से स्नेह का नाता टूट जाय। इतना अवश्य है कि नये लोगों से स्नेह का नाता जुड़ता जाता है। खेल के साथियों व अन्य प्रौढ़ों के प्रति अनुराग बढ़ जाने पर भी माँ बाप के प्रति उनका स्नेह बना ही रहता है। घच्चे के स्नेह की अभिव्यक्ति प्रदर्शन, शाब्दिक घोषणा, चुम्बन आदि के माध्यम से होती है।

अब हम मानव आवश्यकताओं के दृष्टिकोण से बचपन का निरीक्षण करेंगे। जीवन के प्रारंभिक वर्षों में अर्थात् शैशवास्था में सुरक्षा की आवश्यकता प्रबल होती है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण इस बात से मिलता है कि बच्चा माँ पर आश्रित होता है और वह अपनी मांगों की पूर्ति के लिए परिवार की ओर देखता है। व्यक्तिगत सम्पत्ति, व खिलौनों पर आधिपत्य तथा खाने के समय अपनी जगह निश्चित करने के लक्षणों से यह ज्ञात होता है कि बच्चे के अन्दर उत्तरदायित्व व मान्यता (Recognition) की मांगें भी प्रकट होने लगती हैं। बच्चा अपने सीमित संसार में साहसी कार्यों तथा अन्य नए अनुभवों की माँग के आश्चर्यजनक प्रमाण भी उपस्थित करता है।

किशोरावस्था (Adolescence)

(१) क्रोध :—इस अवस्था में भी गोकि शारीरिक गति सम्बन्धी बाधाओं

से क्रोध उत्पन्न होता है परन्तु उसकी अभिव्यक्ति स्पष्ट व विध्वंशकारक नहीं होती। इस अवस्था में यांत्रिक असफलता भी क्रोध का गम्भीर श्रोत है जैसे जूते के फीते के टूट जाने पर, या मोटर के चालू न होने पर किशोरावस्था में क्रोध प्रकट हो सकता है। किशोरावस्था में अपने सामाजिक अपमान के प्रति बालक अधिक संवेदनशील होता है। अपने व्यक्तिगत सम्मान के प्रति भी वह अत्यन्त संवेदनशील होता है। वह अपने आत्मसम्मान पर किये गए आघात को सहन नहीं कर सकता। उसके क्रोध की चरम सीमा तब स्पष्ट दीखती है जब उसे किसी भोज में निमंत्रित नहीं किया जाता अथवा उसे नगण्य गिना जाता है। इस परिस्थिति में लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ अधिक उत्तेजित हो जाती हैं। यह बिल्कुल सत्य है कि लड़कियाँ अपने झगड़ों को परोक्ष व प्रत्यक्ष रीति से नहीं करतीं परन्तु लड़के अपनी क्रोध की भावनाओं को प्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट कर देते हैं। लड़कियाँ स्वयं स्पष्ट रूप से अपनी क्रोध की भावनाओं को व्यक्त न कर किसी तीसरे व्यक्ति से उसकी सहानुभूति तथा सहारा पाने के हेतु अपनी उन बातों को उसे बतलाती हैं जिनसे वे क्रोधित हुई हों। इस अवस्था में दोनों लिंग के लोगों में क्रोध शाब्दिक रूप धारण कर लेता है। क्रोध का भौतिक प्रदर्शन भी हो सकता है यद्यपि वह बचपन की अपेक्षाकृत कम वेगशील होता है। किशोर अपने क्रोध को नियन्त्रित करने का इच्छुक भी रहता है और इसी कारण क्रोधित होने पर वह बच्चे की अपेक्षा अधिक उदासीन रहता है और वह आत्म नियन्त्रण (self-control) का प्रयत्न करता है। अपने अनुभवों के आधार पर वह अपने क्रोध को स्थानापन्न करने का प्रयत्न करता है। इस अवस्था में कल्पना (fantancy) द्वारा भी क्रोध का समाधान किया जाता है जैसा कि हमने पहले कहा है। इसीलिये इस अवस्था में दिवा स्वप्न (day dreaming) होता है। कल्पना में किशोर उस चीज का बदला लेता है जिससे वह क्रोधित हुआ हो।

(२) भय (Fear) :—किशोरों के भय बहुधा शारीरिक विकास से सम्बन्धित होते हैं। वह अपने में हुये शारीरिक परिवर्तन के प्रति अधिक सजग रहता है और शारीरिक ब्याधियों व बदसूरती से अधिक भयभीत रहता है। किशोर के शारीरिक कुरूपता का भय पाठशाला व क्लबों के साथियों का प्रतिक्रियाओं द्वारा दृढ़ हो जाता है। इसीलिए मोटा बच्चा कक्षा में भय का अनुभव करता है। यही बातें आगामी जीवन में उसमें हीनता की भावना की उत्पत्ति करती हैं जो उसे हर समय भयभीत किया करती हैं। किशोर परीक्षा में असफल होने से भी भयभीत होता है। सामाजिक प्रतिष्ठा पर धब्बा लगना

जैसे स्कूल की टीम अथवा क्लबों के पदों के लिए नहीं चुना जाना आदि भी किशोर के भय का कारण है।

किशोरावस्था के भयों का वर्गीकरण धर्म व दर्शन के क्षेत्रों में भी किया जा सकता है। किशोर को नैतिक अयोग्यता का सदा भय रहता है। आर्थिक कठिनाइयाँ भी उसके भय का कारण बन सकती हैं। काम-भावना के जागृत होने से भी वह विरोधी लिंग के सदस्यों के सम्मुख बेचैनी तथा भय का अनुभव करने लगता है।

(३) **स्नेह** (Affection) :—किशोर की स्नेहपूर्ण प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप वह अपने समूह के प्रति अधिक निष्ठावान बनता है। इस अवस्था में बालक विरोधी अथवा अपने ही लिंग के सदस्यों के प्रति अधिक स्नेह प्रकट करता है। किशोरावस्था सामूहिक जीवन काल है। इस अवस्था में बालक अपने समूह या मण्डल जिसका वह सदस्य होता हैउसके प्रति अपना स्नेह सम्बन्ध जोड़ता है।

हम पहिले ही देख चुके हैं कि बचपन के प्रारंभिक विकास काल में सुरक्षा की आवश्यकता का बड़ा महत्व है। किशोरावस्था में भी यह आवश्यकता विद्यमान रहती है परन्तु अब उत्तरदायित्व तथा मान्यता (Recognition) की आवश्यकताएँ और भी तीव्र होती हैं। किशोरावस्था अस्थाई काल है इसे अस्थिर काल कहना और भी उचित होगा। किशोर कुछ तो बिना उत्तरदायित्व या अधिकारों वाला बालक समझा जा सकता है और कुछ अनेक क्षमताओं युक्त प्रौढ़ जो अपने क्रियाकलापों के लिए स्वयं के प्रति उत्तरदायी होता है। इस कारण से उसमें अपनी सामाजिक प्रशंसा या मान्यता (Recognition) की आवश्यकता और भी बढ़ जाती है। उसकी माँग यह होती है कि समाज उसकी प्रतिष्ठा को स्वीकार करे। इसका रूप और भी उग्र इसलिये हो जाता है क्योंकि किशोर अपनी बौद्धिक शक्तियों तथा ज्ञान भंडार को समझने लगता है।

प्रौढ़ावस्था (Adulthood)

प्रौढ़ जीवन में दो प्रकार के संवेगात्मक विकास की विधियाँ चलती रहती है। यों तो संवेग वाह्य रूप के कम प्रकट होते हैं परन्तु ये उन कई घटनाओं के विस्तृत क्षेत्र द्वारा उत्पन्न हो सकते हैं जिनका प्रौढ़ के व्यक्तिगत् जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं रहता।

(१) **क्रोध** (Anger) :—अपरिचित व्यक्तियों के प्रति किये गए दुर्व्य-

वहार से भी प्रौढ़ क्रोधित हो सकते हैं भले ही उन व्यक्तियों से उसको कोई सम्बन्ध न हो। संसार के दूसरे छोर में बसने वाली परतन्त्र जातियों के सम्बन्ध में सुनकर वह ऐसे ही क्रोधित हो उठता है मानो उसका कोई सम्बन्धी उस दशा में फँसा हुआ हो। अपनी आत्मनिष्ठा पर किये गए आघात के प्रति वह अधिक प्रतिक्रियावादी होता है पर उसका क्रोध बच्चों व किशोरों की अपेक्षा अधिक संयत होता है। इन आक्रमणों के प्रतिरोध के लिए वह अपनी समस्त क्रियायों को संगठित करने में समर्थ होता है।

(२) भय (Fear) :—बुरा स्वास्थ्य, सुरक्षा की भावना की कमी तथा अपने परिवार की चिन्ता से वह भयभीत रहता है। नैतिक अयोग्यता के प्रति भी वह चिन्तित व भयभीत रहता है। उसका यह भय धर्म तथा जीवन के प्रति सन्तोषजनक दृष्टिकोण न होने के कारण भी सहज स्पष्ट हो जाता है।

(३) स्नेह (Affection) :—प्रौढ़ का स्नेह स्थानीय समूहों, क्लबों, संस्थाओं, सामाजिक वर्गों और देश के प्रति प्रकट होता जाता है जिससे वह इन व्यापक इकाइयों के लिए सर्वस्व बलिदान तथा आत्मत्याग भी कर सकता है। यही देश भक्ति के रूप में भी विकसित हो जाता है। किसी भी दशा में प्रौढ़ अपने परिवार से स्नेह रखता है। चाहे वह कभी क्रोधित ही क्यों न हो या उसे कोई निराशा ही क्यों न हो परन्तु वह अपने परिवार के प्रति स्नेह का त्याग नहीं करेगा।

—:o:—
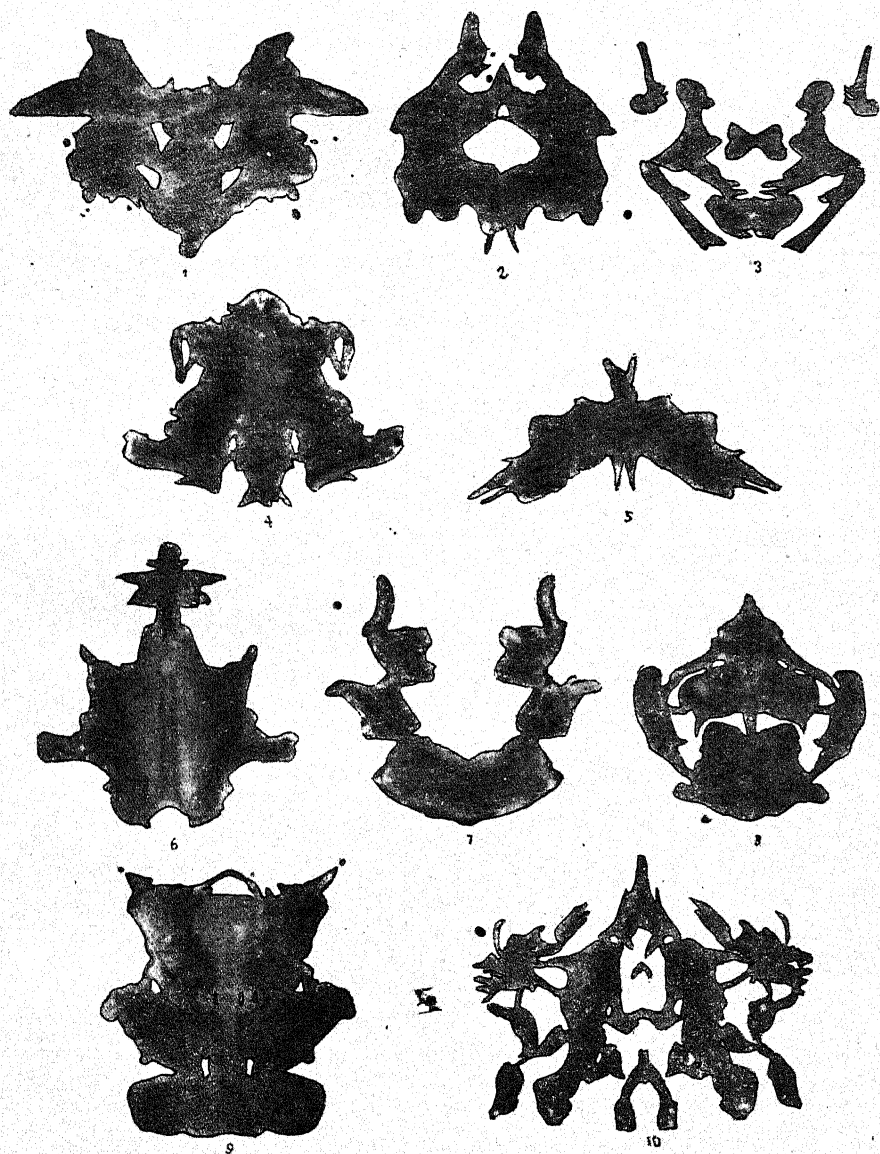
चित्र—रौशा इन्क ब्लाट टैस्ट

अध्याय १२

अनुकरण, सहानुभूति और निर्देश

(Imitation, Sympathy and Suggestion)

जैसा हम पिछले अध्याय में पढ़ चुके हैं कि अनुकरण, सहानुभूति और निर्देश आदि सामान्य प्रवृत्तियाँ मिमिसिस (Mimesis) शीर्षक के अन्तर्गत आती हैं। 'Mimesis' व्यक्ति की वह सामान्य प्रवृत्ति है जिसके द्वारा वह दूसरे के कार्य करने के तरीकों, भावनाओं व विचारों को अपने में ग्रहण कर लेता है। हम इन प्रवृत्तियों का एक एक करके विचार करेंगे।

अनुकरण (Imitation) :—अनुकरण वह विधि है जिसके आधार पर समूह के सभी सदस्य एक साथ कार्य करने लग जाते हैं। यह क्रिया दो व्यक्तियों में भी सम्भव है परन्तु एक बड़ी भीड़ या जनसमूह में इसके प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं जहाँ कि एक नेता का लोग अनुकरण करते हैं। यद्यपि अनुकरण की प्रवृत्ति हम सभी लोगों में होती है फिर भी हम इसे मूलप्रवृत्ति नहीं कह सकते क्योंकि इसका जन्म न तो किसी विशिष्ट उत्तेजना द्वारा होता है और न इसकी प्रतिक्रिया ही किसी विशिष्ट रूप में होती है।

अनुकरण के प्रकार (Kinds of imitation) :—अनुकरण दो प्रकार का होता है। एक तो अनुकरण किसी उद्देश्य के लिए किया जाता है। इस

प्रकार के अनुकरण में लोग किसी उद्देश्य को सामने रखकर अनुकरण करते हैं जैसे जापान ने पाश्चात्य ढंग का अनुकरण कर अपने देश के पुनर्निर्माण का बीड़ा उठाया। इसे उद्देश्य सम्बन्धी अनुकरण (purposive imitation) कहते हैं। दूसरे प्रकार के अनुकरण को हम प्राथमिक अनुकरण (Primary imitation) कहते हैं जिसका आभास हमें बच्चे के विकास से ही होने लगता है। मानव व्यवहार में ये दोनों प्रकार के अनुकरण समय-समय पर विदित होते रहते हैं। प्रो० नन (Prof. Nunn) की पुस्तक का एक उदाहरण हमारी बात को स्पष्ट कर देगा—

"A little girl released with her comrades from lessons, run if they run, and join in chasing and being chased just as a young dog would do in comparable circumstances. This may be called 'a primary imitation' involving no trace or only a minimum of deliberations.........Now suppose the child, a year or two older, to see her elders skipping with a rope. If she, too, is to skip as she certainly will, she must give more attention than in the last case to the pattern or idea of the movement; for it is at once more artificial and complicated. This is still more necessary when, at a latter age, she takes part, say, in a figure dance in which an elaborate scheme of movement is to be carried out by a group of performers. To apprehend the pattern of the dance, to retain it in the mind and to translate into continuous and nicely adjusted action the past assgined to her will demand the intelligent exercise of intellectual powers as well as mastery of the constituent movement" [१]

एक लड़की को उसके साथियों के साथ कक्षा की पढ़ाई से छुट्टी होने पर वह अपने साथियों को दौड़ता हुआ देखने पर दौड़ती है, किसी चीज का पीछा करने में वह भी अपने साथियों के साथ शामिल होती है और पीछा किये जाने पर वह एक कुत्ते के समान तद्नुकूल परिस्थितियों में कार्य करती है। इसे हम प्राथमिक अनुकरण कह सकते हैं क्योंकि इसमें सविचार (deliberations) की जरा भी झलक नहीं मिलती।.........अब मान लीजिये एक या दो साल का बच्चा अपने बड़ों को रस्सा कूद (skipping) करते हुये देखता है। यह स्वाभाविक ही है कि वह भी बड़ों के कार्यों का अनुसरण करता है। पिछले कार्य की अपेक्षा इस कार्य को करने के लिये बच्चे को इसके प्रतिरूपों पर

१. Nunn, N. P. : 'Education, Its Data and First Princi-plest'; Edward Arnold and Co., London 1959.

विशेष ध्यान देना होगा क्योंकि यह कार्य पिछले की अपेक्षा अधिक कृत्रिम व कठिन है। आगे चलकर Figure dance (एक प्रकार का नृत्य) में भाग लेने पर बच्चे को इस नृत्य की विषद् एवं विस्तृत कार्य विधियों को जिन्हें समूह के कर्ताओं को करना पड़ता है, अच्छी तरह से समझना पड़ेगा। नृत्य के प्रतिरूप को समझने, उसे मस्तिष्क में धारण करने, और उसे सुन्दर व्यवस्थित व क्रमिक कार्य में अभ्यास करने तथा सिपुर्द किये गए कार्य को भलीभाँति पूरा करने के लिए उसे अपनी बौद्धिक शक्तियों को विद्वतापूर्वक उपयोग करना होगा तथा मौलिक कार्यों को सिद्धहस्त करना होगा। इस उदाहरण में प्राथमिक अनुकरण ही आगे चलकर सविचार (deliberate) या उद्देश्य सम्बन्धी अनुकरण में परिवर्तित हो गया।

प्राथमिक अनुकरण में यह आवश्यक नहीं है कि बच्चा किसी भी चीज़ का या अपनी देखी हुई प्रत्येक चीज़ का अनुकरण करे। परन्तु बच्चे में भी इसकी दशाओं का अध्ययन किया जा सकता है और इसकी किस्मों की सूची बनाई जा सकती है। वैलैन्टाइन (Valentine) ने निम्नलिखित ढंग से अनुकरण की किस्मों की व्याख्या की है :—

(१) सबसे पहिले बच्चा उन कार्यों का (विशेषकर बोलने का) अनुकरण करता है जिसके कार्य करने की जन्म जात प्रवृत्ति उसमें पाई जाती है।

(२) कुछ रोचक कार्यों का अनुकरण जिन्हें बच्चा बड़े ही ध्यान से देखता रहता है करता है। उदाहरण के तौर पर जैसे बच्चा अपने पिता के सिगरेट पीने का अनुकरण करता है।

(३) बच्चा किसी चित्र या कहानी में देखे हुए या सुने हुए कार्यों का अनुकरण करता है।

(शिक्षा में अनुकरण का स्थान)

(The place of Imitation in Education.)

कुछ अध्यापक सविचार या विचार जन्य अनुकरण की आलोचना करते हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि इससे आत्म प्रदर्शन में बाधा उत्पन्न होती है। प्रोफेसर नन् (Professor Nunn) ने अध्यापकों द्वारा विचारजन्य अनुकरण की आलोचना की निन्दा की है। उन्हीं के शब्दों में :—

"The most original mind, find them- selves only in playing the sedulous ape to others who have gone before them along the same path of self-assertion. In his earlier works we cannot distinguish even the voice of Shakes peare from the voices of his contemporaries. Imitation at

first biological, then reflective, is in fact, but the stage in the creation of individuality and the richer the scope for imitation the richer the developed individuality will be."[1]

अर्थात् बड़े से बड़े उत्पत्ति कारक (original) मस्तिष्क वाले व्यक्तियों ने भी दूसरे अन्य व्यक्तियों का अनुकरण किया है जिन्होंने आत्म प्रदर्शन के लिए उन जैसा ही मार्ग अपनाया था। शेक्सपियर के ग्रन्थों में भी अनुकरण की झलक स्पष्ट दीखती है। व्यक्तित्व (Individuality) के निर्माण में अनुकरण प्रथम सीढ़ी है। जितना ही अधिक अनुकरण का क्षेत्र बच्चे को मिलेगा उतना ही अधिक मात्रा में उसके व्यक्तित्व का विकास होगा।

यहाँ एक और बात ध्यान देने योग्य है। आजकल शिक्षकों का मत है कि स्कूलों में व्यक्तिगत अध्यापन होना चाहिए और बच्चों को छोटे समूहों में पढ़ाया जाना चाहिए। इस योजना की एक परिसीमा है। जितना ज्यादा अवसर हम बच्चों को बड़े समूह में कार्य करने को देंगे उतना ही उनके लिए अनुकरण करने का क्षेत्र अधिक मिल पावेगा। मन्द बुद्धि वाले बच्चों को यदि मेधावी लड़कों के साथ बिठाया जाय तो वे मेधावी लड़कों के अनुकरण से बहुत कुछ सीख जावेंगे। चतुर व साहसी बच्चे मन्द बुद्धि वालों तथा डरपोक विद्यार्थियों को अपने कार्यों को दिखा दिखा कर उन बच्चों को अपनी शक्तियों से परिचित करावेंगे। कौन-कौन से कार्य उनके लिए सम्भव हैं इसका ज्ञान मेधावी बच्चे मन्द बुद्धि वाले लड़कों को देंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि समूह जितना ही सम्भव हो बड़ा होना चाहिए परंतु शिक्षक को बच्चों की आवश्यकताओं व उनकी प्रगति में व्यक्तिगत ध्यान देने में योग्य होना चाहिए। अध्यापकों को चाहिए कि बच्चों को अनुकरण करने के लिए बाध्य न करें अन्यथा इसका उद्देश्य ही समाप्त हो जावेगा। प्रत्येक अध्यापक या अध्यापिका को अपने को अनुकरणीय बनाना चाहिए ताकि बच्चे उसके कार्यों व व्यवहार का अनुकरण करने का स्वयं प्रयत्न करें।

सहानुभूति (Sympathy) :—इस अध्याय के प्रारम्भ में ही हम कह आये हैं कि मिमिसिस (Memmesis) कार्य, भावना व विचार में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। चेतनामय जीवन में ये तीन खंड एक दूसरे से इतने मिले जुले हैं कि यदि मिमिसिस एक में प्रारम्भ हुआ तो वह शीघ्र ही अन्य क्षेत्रों में प्रकट हो जाता है। यदि हम किसी वक्ता की प्रशंसा करते हैं तो हम झट उसके बोलने के ढंग व मंच पर की क्रियायों का अनुकरण करने लग

Nunn, T.P. : 'Education' Its Duta and First Principales', London, 1949, P, 147.

जाते हैं। आगे चलकर हम उसके मतों व स्थायीभावों को भी अपनाने लग जाते हैं। अतः सबसे पहिले हमने वक्ता के कार्य के ढंगों को अपनाया। मिमिसिस के भावनाओं पर प्रभाव पड़ने पर हम अन्य व्यक्ति के साथ भाई चारे की भावना करने लग जाते हैं और यही सहानुभूति है। फ्रांसीसी लेखकों ने जन-समूह या भीड़ के मनोविज्ञान् (The Psychology of crowd) शीर्षक के अन्तर्गत इस विषय में अधिक कार्य किया है। सहानुभूति की भावना ही अपरिचित व्यक्तियों के समूह को एक ऐसे समूह में परिवर्तित कर देती है जो एक ही प्रकार की इच्छा से प्रेरित होकर वीरता की उस चोटी को चूम सकता है अथवा दुष्टता की उस गहराई को भी नाप सकता है जो उस समूह के व्यक्तियों द्वारा अलग-अलग रहने पर सम्भव नहीं है। यदि समूह के व्यक्तियों ने अलग-अलग कार्य किया होता तो शायद ही वे इतना ऊँचा उठ सकते या इतना नीचे गिर सकते।

सहानुभूति को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकताहै—सक्रिय (active) सहानुभूति और निष्क्रिय (passive) सहानुभूति।

निष्क्रिय सहानुभूति (Passive Sympathy) :—व्यक्ति की अपने संवेग अथवा तीव्र भावना की अभिव्यक्ति की सामान्य प्रवृत्ति को जो वह इसलिए व्यक्त करता है जिससे उसी प्रकार की भावना अथवा संवेग का संचार दूसरे व्यक्ति में हो सके, निष्क्रिय सहानुभूति कहते हैं। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि ऐसी सहानुभूति की प्रवृत्ति सहायता करने की भावना से युक्त हो। इस प्रकार की सहानुभूति के असंख्य उदाहरण हैं। यदि हम किसी व्यक्ति को आनन्द के कारण हंसता हुआ देखते हैं तो हम भी हँसने लग जाते है और थोड़ा बहुत आनन्द का भी अनुभव कर लेते हैं यद्यपि हम उसके आनन्द के कारण को नहीं जानते हैं। छोटा बच्चा अपनी माँ को दुःखी देखकर अपने चेहरे पर दुख के लक्षण प्रकट करता है यद्यपि माँ के दुःख के कारण से वह अनभिज्ञ है और उस दुख को दूर करने में भी वह असमर्थ होता है। इस तरह की सहानुभूति बच्चों में उस समय से पूर्व जागृत हो जाती है जब कि उनमें सहायता करने की भावना पैदा होती है। मैग्डूगल के अनुसार—

Ther are persons who are exquisitely symathetic in this series of feeling with another experiencing distress at the sight of pain and grief, pleasure at the sight of joy , who yet are utterly selfish and are not moved in the least degree to relieve the distress they observe in others or to promate the pleasure that is reflected in themselves. Their sympathetic sensibility merely leads them to avoid all contacts with distressful persons,

books, or scenes and to seek the company of the careless and the gay. And a too great sensibility of this kind is even adverse to the higher kind of conduct that seeks to relieve pain and to promote happiness, for the sufferers experession of pain may induce so lively a distress in the onlooker as to incapicitate him for giving help. Thus, in any case of personal accident or where surgical procedure is necessary, many a woman is rendered quite useless by her sympathetic distress"[१] संसार में ऐसे बहुत से मनुष्य मिलते हैं जो अपने साथियों की भावनाओं का स्वयं अनुभव करते हैं—उनके दुख दर्द को देखकर स्वयं दुखी होते हैं और दूसरों की प्रसन्नता को देखकर आनन्दित होते हैं परन्तु इसके साथ ही साथ इतने स्वार्थी होते हैं कि दूसरों के दुखों को दूर करने का जरा भी प्रयत्न नहीं करते और न अपने अन्दर की प्रसन्नता को और तीव्र करने का प्रयास करते हैं। उनकी सहानुभूति से भरी पूरी भावुकता उन्हें दुखी मनुष्यों, पुस्तकों एवं दृश्यों से सदा के लिए अलग करने के लिए बाध्य करती है और वे लापरवाह और प्रसन्न लोगों के साथ रहने के इच्छुक बन जाते हैं। परन्तु कभी-कभी भावुकता उन व्यक्तियों के व्यवहार में एक बड़ा परिवर्तन कर देती है जो अन्य लोगों के दुखों को दूर करने व उनकी प्रसन्नता को और भी बढ़ाने का अदम्य प्रयत्न करना चाहते हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि पीड़ित व्यक्ति के दुख दर्द से देखने वाले में ऐसे दुख का पारावार उमड़ पड़ता है कि वह पीड़ित व्यक्ति की सहायता करने को सर्वथा असमर्थ हो जाता है। किसी व्यक्तिगत दुर्घटना या चीरफाड़ को देखने पर बहुत सी स्त्रियाँ उस सहानुभूति भरे दुख से अति दुखित होकर सहायता करने के लिए असमर्थ हो जाती हैं।

निष्क्रिय सहानुभूति के भेद

(Types of Passive Sympathy)

इस सहानुभूति के दो भेद हैं :—

(१) दुःख, दर्द व भय से ओतप्रोत सहानुभूति
(२) आनन्द व उल्लास जन्य सहानुभूति

सहानुभूति के उपरोक्त प्रकार विभिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न मात्रा में उपलब्ध होते हैं। एक व्यक्ति हमारे आनन्द व सुख में हँस सकता है पर यह आवश्यक नहीं है कि हमारे दुखों में वह आँसू भी बहा सके। इसका विश्लेषण और आगे भी हो सकता है। दुख से भरी पूरी सहानुभूति बहुत कुछ दुख की किस्म पर निर्भर होती है। एक व्यक्ति उस व्यक्ति के प्रति अधिक सहानुभूति

१. McDougall W. : 'Social Psychology' 9th Edit. p. 95; 23rd Edit., p, 82.

प्रकट कर सकता है जिसके मित्र की मृत्यु हो गई हो और दूसरा व्यक्ति उस व्यक्ति के लिए जिसकी धन क्षति हो गई हो। इस प्रकार के असंख्य उदाहरण हो सकते हैं।

शिक्षा में निष्क्रिय सहानुभूति का महत्त्व
(Passive Sympathy and Education)

निष्क्रिय सहानुभूति का शिक्षा में व्यापक महत्व है। यदि कविता पाठ में शिक्षक कविता में व्यक्त संवेग का रसास्वादन कर सकता है तो यह निश्चित है कि उस भावना का कुछ न कुछ अंश बच्चे भी अनुभव करेंगे यदि बच्चे उस शिक्षक से प्रेम करते हैं। ललित कला की शिक्षा में शिक्षक की साहित्य कला, संगीत आदि के सौन्दर्य के प्रति रुचि बड़ी महत्वपूर्ण स्थान रखती है। निष्क्रिय सहानुभूति के आधार पर ही हमारी नैतिक शिक्षा टिकी हुई है। अपने बड़े भाई की खाने के प्रति अरुचि देखकर बच्चा भी खाने से घृणा करने लगता है और इस प्रकार से वह बुरी आदत सीख लेता है। यह स्पष्ट सहज अनुमान है कि किसी भी स्कूल के बच्चों में तब तक नैतिक शिक्षा का प्रसार न होगा जब तक बच्चों और शिक्षकों में सामूहिक भावना का अभाव रहेगा। उसकी प्राप्ति के लिए शिक्षकों को अपने कार्य में उत्साह व रुचि रखनी होगी।

भीड़ व समूह में निष्क्रिय सहानुभूति
(Passive Sympathy in crowds and groups)

एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में संवेगों के सहानुभूति पूर्ण उपपादकत्व (induction) से ही इस बात की व्याख्या हो जाती है कि एक संवेग पूरी भीड़ में किस प्रकार से शीघ्रतापूर्वक फैल जाता है; चाहे वह संवेग भय का हो अथवा क्रोध या आनन्द का। मैग्डुगल (McDougall) ने अपने समूह-मनोविज्ञान को संवेग के प्रत्यक्ष उपपादकत्व (Direct induction of emotion) के नियम पर आधारित किया है जिसको हमने मिमिसिस (Memi-sis) द्वारा भावनाओं पर प्रभाव पड़ने के अन्तर्गत व्यक्त किया है। जब कभी बहुत से मनुष्य एकत्र हो जाते हैं तो उपपादकत्व (induction) द्वारा व्यक्तियों में उत्पन्न भय या उल्लास के संवेगों की पूरे भीड़ में फैलने की सम्भावना रहती है। ऐसा होने पर वह भीड़ (crowd) फिर भीड़ मात्र न रह कर एक समूह (Group) की स्पष्ट विशेषताओं से युक्त हो जाती है।

संवेगों के इस उपपादकत्व के नियम से फ्रायड (Freud) महोदय सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि यदि व्यक्ति का समूह का बन्धों (Bonds) से पहिले से सम्बद्ध नहीं है तो वह उस समूह में से किसी एक व्यक्ति द्वारा विशेष

संवेग के प्रदर्शन को स्वीकार नहीं करेगा बल्कि उसे ठुकरा देगा। फ्रायड ने समूह को एक बड़े परिवार की संज्ञा दी है जिसके सदस्य उसी प्रकार के बंधों से एक दूसरे से जुड़े रहते हैं जिस प्रकार के सम्बन्धों से बच्चे अन्य लोगों से और अपने माता पिता से बद्ध रहते हैं। ये बन्ध बाल्यावस्था में ही दृष्टिगोचर होते हैं जिनकी उत्पत्ति से बच्चा आत्म केन्द्रित (self centerd) दशा से अपने को मुक्त कर पाता है। बच्चे के इस आत्म केन्द्रित होने की प्रवृत्ति को फ्रायड महोदय ने Narcissim कहा है। यह शब्द यूनानी शब्द (Narcissius) से बना है। यह एक युवक का नाम है जो अपनी फौब्बारे में प्रतिविम्बित प्रतिमा से प्यार कर उसको पकड़ने के लिए फौब्बारे में कूद पड़ा और मर गया।

बच्चा अपने माँ बाप में प्यार करने की वस्तु देखता है और इसी से उसका प्यार बाह्य वस्तुओं की ओर आकृष्ट होने लगता है। उसके प्रेम के बाह्य प्रदर्शन के साथ-साथ पिता बच्चे के लिए आत्मविकास के अचेत आदर्श का भी काम करता है।

इस स्थल पर समूह मनोविज्ञान की विषद विवेचना की जा सकती है। हम पहिले ही वर्णन कर चुके हैं कि भीड़ पर प्रभाव डालने वाले मुख्य प्रतिकारक को मिमिसिम कहते हैं। मिमिसिस के अतिरिक्त भीड़ पैदा करने के अन्य प्रतिकारक भी हैं। हम पिछले एक अध्याय में चर्चा कर चुके हैं कि मानव-व्यवहार सामूहिक मूल प्रवृत्ति (Gregarious instinct) द्वारा अत्यधिक प्रभावित होता है। हो सकता है कि पशुओं से अपनी रक्षा करने के हेतु अपनी शक्ति को बढ़ाने के लिए उसने अपनी इस मूल प्रवृत्ति को विकसित कर लिया हो और आगे चल कर वह इसे शिकार में सहायता के रूप में प्रयोग करता हो। परन्तु आजकल हमारी सभ्यता का ढांचा पूर्ण रूप से श्रम विभाजन पर आधारित है। इसमें आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य दूसरे को सहायता दे अतः आधुनिक काल में समाजिकता की भावना अत्यन्त महत्व-पूर्ण है।

भीड़ एकत्रित होने में सामूहिकता की भावना ही मनुष्यों में प्रेरणा का संचार करती है। बहुत से शहरों में लोग रविवार की शाम को किसी एक निश्चित सड़क पर घूमते हैं। हम देखते हैं कि मनुष्यों के समूह एक जगह किनारे पर बैठकर गपशप करते हैं और स्त्रियों के समूह दूकानों के प्रवेश द्वार पर खड़ी रहती हैं। किसी दर्शक के लिए, हो सकता है, कि यह बहुत ही साधारण मनोविनोद हो। परन्तु अपने मानव साथियों की अपार भीड़ को देखने में टहलने वालों को जो आनन्द व सन्तोष मिलता है वह शोरगुल, धूल और भीड़ की अन्य असुविधाओं को भुलाने के लिए पर्याप्त है। मनुष्यों को

अपने साथियों को उल्लास करते देखकर प्रसन्नता होती है। बिजली की रोशनी, सवारियों का आना जाना, मानव कोलाहल, दुकानें, सिनेमा घर आदि एक बड़े शहर को संसार का सबसे अधिक आकर्षण केन्द्र बना देते हैं और लोग उन्हें देखने के लिए भी एकत्रित होते हैं। कुछ लोग आपस में विचार विनिमय करने हेतु तथा एक दूसरे के अनुभवों से परिचित होने के हेतु कड़ी सर्दी में फुटबाल मैच देखने के लिये एकत्रित हो जाते हैं। परन्तु मनुष्यों के केवल एकत्रित होने मात्र को हम मनोवैज्ञानिक समूह नहीं कह सकते। मनोवैज्ञानिक समूह से तो हमारा अभिप्राय यह है कि जब किसी एक सामान्य उद्देश्य के लिए मनुष्यों का समूह संगठित होकर एकत्रित हो। इसी बात को हम मैग्डुगल (McDougall) द्वारा दिये गए उदाहरण से और भी अच्छी तरह से समझ सकते हैं—

"There is a dense gathering of several hundred individuas at the Mansion House crossing at noon of every week-day; but ordinarily each of them is bent upon his own task, pursues his own ends, paying little or no regard to those about him. But let a fire engine come galloping through the throng of traffic, or the Lord Mayers state coach arrive, and instantly the concourse assumes in some degree the character of a psychological crowd. All eyes are turned upon the fire engine or coach; the attention of all is directed to the same object; all experiences in some degree the same emotion, and the state of mind of each person is in some degree affected by the mental processes of all those about him."[1]

मैनशन हाउस (Mansion House) से सहस्र व्यक्ति सप्ताह के प्रत्येक दिन गुजरते हैं। पर साधारणतयः उनमें से प्रत्येक अपने कार्य में व्यस्त रहता है और अपने स्वयं के उद्देश्य की पूर्ति में व्यस्त रहता है। एक दूसरे के कार्यों की ओर देखने के लिए कोई चेष्टा नहीं करता। वे अपने कार्य को छोड़कर दूसरों की ओर ध्यान नहीं देते। परन्तु यदि फ़ायर इन्जिन उस भीड़ में से गुजरता हुआ निकले या लार्ड मेंयर की राज सवारी (Lord Mayer state Coach) उस भीड़ में से होकर निकले तो वह सारी भीड़ मनोवैज्ञानिक भीड़ में परिवर्तित हो जाती है। दूसरे शब्दों में मनुष्यों के सारे समूह में थोड़ी सी मात्रा में मनोवैज्ञानिक भीड़ की विशेषतायें आ जाती हैं। सभी आँखें राजसवारी या इन्जिन की ओर आर्कषित हो जाती हैं। सभी का ध्यान एक वस्तु की ओर खिच जाता है। थोड़ी सी मात्रा में सभी लोग एक प्रकार

१. McDougall : 'The Group Mind' pp. 22, 23.

के संवेग का अनुभव करते हैं। सभी लोगों की मानसिक दशा एक ही प्रकार की मानसिक प्रक्रिया द्वारा प्रभावित होती है।

सामूहिक मानसिक जीवन के लिए आधारभूत शर्त यह है कि समूह के सभी सदस्य साथ साथ कार्य करें, विचार करें और अनुभव करें। हां, एक बात है कि पूरे समूह की विचारधारा, अनुभूति तथा कार्य उसके व्यक्तिगत सदस्यों की सामान्य विचारधारा, अनुभूति तथा कार्य से सर्वथा भिन्न होती है। यह सोचना कि समूह के विचार, अनुभव तथा कार्य उसके व्यक्तिगत सदस्यों के बिचार, अनुभव तथा कार्यों का योग तथा औसत होता है नितान्त भ्रम है और सर्वदा असत्य है।

किसी भी समूह में कार्य करने के लिए एक नेता होना चाहिए। नेता की अनुपस्थिति में विशाल एवं शक्तिशाली समूह भी अपेक्षित कार्य करने में असमर्थ होगा भले ही अपने उद्देश्यों की पूर्ति करने की शक्ति उसमें कूट कूट कर भरी हुई हो। परन्तु उस समूह में यदि उपयुक्त नेता हुआ तो अपने व्यक्तिगत् सदस्यों की अपेक्षा वह अच्छे या बुरे कर्म करने में सर्वथा सफल होगा। बहुत से लेखकों ने समूह की चर्चा करते समय उसके दुर्गुणों को ही विशेष रूप से प्रकट किया है। दर्शकों के समारोह तथा समूह को देखकर यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाता है कि उसमें उपस्थित व्यक्तियों की व्यक्तिगत सामर्थ्य की अपेक्षा उस समूह की सामर्थ्य कितनी कम होती है।

अब हम समूह के व्यवहार की मुख्य मुख्य विशेषताओं का वर्णन करेंगे—

(१) सम्पूर्ण समूह में खतरे की संभावना होते ही उसकी एकता दृढ़ हो जाती है। दूसरे समूह से संघर्ष होने पर समूह अपनी एकता की ओर सक्रिय रूप से सचेत हो जाता है। परिणाम स्वरूप समूह के सदस्य एक दूसरे के प्रति अधिक विनम्र हो जाते हैं।

(२) समूह की विशेषता यह भी है कि उसके सदस्य एक दूसरे की मान्यता स्वीकार करने तथा उससे पहिचान करने की आवश्यकता का अनुभव करते हैं। आपस की यह मान्यता तथा पहिचान समूह की एकता को दृढ़ करती है तथा उसमें आनन्द की वृद्धि करती है। भिन्न भिन्न समूह अपनी पहिचान के लिए भिन्न २ प्रकार के साधन अपनाते हैं। राष्ट्रीय समूह अपने बोलचाल से अपने को अलग रखते हैं; दूसरे शब्दों में राष्ट्रीय समूहों की पहिचान उनकी बोलचाल की भाषा है। एक देश में ही प्रत्येक जिले की अपनी अलग बोली होती है और उनकी स्थानीय भाषा ही उन्हें दूसरों से अलग करती है।

(३) तीसरी महत्वपूर्ण विशेषता है कि समूह की वाणी के प्रति संवे-

दनशीलता। पशुओं में यह वह प्रक्रिया होती है जिसके अनुसार सम्पूर्ण समूह मिलकर भय, शिकार, इच्छायें आदि प्रकट करता है।

मनुष्य में तीन दर्शनीय प्रवृत्तियाँ होती हैं जिनके द्वारा वह समूह की वाणी के प्रति संवेदनशील तथा प्रतिक्रियावाला होता है। और वे हैं—सहानुभूति, अनुकरण और निर्देश।

शिक्षकों की विशेष रुचि कक्षा, स्कूल सोसाइटी, टीम और परिवार जैसे समूहों में होती है। उदाहरण के तौर पर नीचे फुटबाल टीम का उल्लेख किया जा रहा है।

स्कूल की फुटबाल टीम

(१) खिलाड़ी तथा टीम—

(अ) अपनी टीम की विजय अथवा पराजय के समय खिलाड़ी की प्रतिक्रिया।

(ब) टीम के अन्य खिलाड़ियों के साथ उसका सहयोग।

(स) नैतिकता के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए उसके प्रयत्न।

(द) कैप्टेन, साथियों तथा खिलाड़ियों द्वारा की गई आलोचना के प्रति उसकी प्रतिक्रिया।

(२) टीम के कार्य तथा उसकी भावना—

(अ) पराजय होने पर टीम का उल्लास।

(ब) अधिकारियों का टीम में स्थान।

(स) अग्रणीय तथा पिछड़े हुये साथियों के बीच सम्बन्ध।

(द) टीम की नैतिकता।

शिक्षक का कर्तव्य है कि सामूहिक जीवन को इस प्रकार सम्हाले रहे कि उसका नैतिक स्तर गिरने न पावे। शिक्षक तथा विद्यार्थियों में अच्छे सम्बन्ध होने चाहिए क्योंकि कक्षा के सम्बन्धों की आधारशिला यही है।

सक्रिय सहानुभूति (Active Sympathy)

जैसा कि पहले ही क्या गया है कि निष्क्रिय सहानुभूति में एक व्यक्ति में किसी संवेग के लक्षणों के प्रगट होने पर दूसरे व्यक्ति को भी उसी संवेग का अनुभव होने लगता है। पर यह आवश्यक नहीं कि निष्क्रिय सहानुभूति के साथ-साथ सहायता करने की भावना भी विद्यमान हो। सक्रिय सहानुभूति में सहायता अथवा रक्षा करने की भावना का समावेश होता है। इसके कई उदाहरण देखने को मिलते हैं। बच्चे को सङ्कट में देखकर उसके माता पिता उसकी रक्षा व सहायता करते हैं। उच्च

श्रेणी के प्राणियों में रक्षा व सहायता करने की यह प्रवृत्ति अधिकतर माँ में होती है। पिता में भी सहायता करने की भावना दृष्टिगोचर होती है। पिता अन्य लोगों के प्रति क्रूर व कठोर हो सकता है पर वह अपने बच्चे की रक्षा व सहायता करता है। उदाहरणार्थ विश्वविख्यात हत्यारा चार्ल्स (Charles) एक स्नेही पिता था।

एक पिता या प्रेमी रक्षा एवं सहायता करने की प्रवृत्ति के साथ एक विशिष्ट संवेग का अनुभव करता है जिसे वात्सल्य संवेग (tender emotion) का नाम दिया गया है। पिता या प्रेमी इसे बड़ी तीव्रता से अनुभव करते हैं। मान लीजिए 'अ' व्यक्ति ने 'ब' व्यक्ति के प्रति इस संवेग का अनुभव किया तो संवेग उपपादकत्व द्वारा उसी प्रकार की भावना 'ब' व्यक्ति में भी किसी सीमा तक संचरित हो उठेगी।

किसी प्रार्थना द्वारा ही सहायता व रक्षा की भावना जाग्रति होती है। बच्चे के रोने पर माँ सहायता के लिए दौड़ती है। आँखों में आँसू भरी औरत को देखकर हम उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं और उसकी सहायता का प्रयत्न करते हैं। सहायता व रक्षा करने की भावना रोने व चिल्लाने से ही नहीं उदय होती है पर अन्य प्रकार के चेहरे पर के लक्षण इसके लिए पर्याप्त होते हैं।

निर्देश (Suggestion)

हमारे जीवन में ऐसे अवसर आते हैं जब कि हम वक्ता की प्रशंसा करते हैं और उसके विश्वासों, आदर्शों और विचारों को अपना लेते हैं। वक्ता हमारे ऊपर पूर्ण रूप से प्रभुत्व जमा लेता है। इसी कारण से हम उसके विचार, आदर्श और दृष्टिकोण को ज्यों का त्यों बिना विचार किये ग्रहण कर लेते हैं और बिता सत्य की कसौटी पर कस कर अपना लेते हैं। ऐसा निर्देश के प्रभाव के कारण ही होता है। इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि जब हम दूसरे के विचारों को अनैच्छा से ग्रहण करते हैं तो वहाँ पर निर्देश मुख्य रूप से कार्य करते हैं और उन्हीं के कारण हम अनैच्छिक कार्य को भी अपना लेते हैं।

सर्व प्रथम संमोहकों (hypnotists) ने निर्देशों का अध्ययन किया। संमोहन क्रिया (hypnotism) की अवस्था की मुख्य विशेषता यह है कि पात्र को ऐसी अवस्था में जो विचार प्रदान किये जाते हैं उसे वह सहसा स्वीकार कर लेता है। संमोहन के लिए रोगी से यह कह दिया जाता है कि वह सो जाय और वह केवल मनोवैज्ञानिक की आवाज को ही सुने। संमोहन उस कमरे में भी हो सकता है जहाँ नाना प्रकार की आवाजें आ रही हों। यहाँ पर यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि सोने को तैयार होना भी संमोहन के पूर्व का निर्देश है।

सोने की गहन अवस्था में अन्य प्रकार के निर्देश प्रदान किये जा सकते हैं। मान लीजिए एक स्त्री व्यस्त अथवा भीड़ पूर्ण बाजार में जाने से बुरी तरह से डरती है। उसे इस प्रकार के निर्देश दिये जा सकते हैं—कि वहाँ पर जाना सर्वथा हानि रहित है, वहाँ जाने पर उसे किसी प्रकार की दिक्कत न होगी। वह साहस पूर्वक वहाँ जा सकती है आदि। मनोवैज्ञानिक के आदेशानुसार जब वह सोकर उठेगी तो बहुत सम्भव है कि वह बाजार जाने के लिए एकदम तैयार हो जावे।

बच्चों में निर्देश का प्रभाव

(Suggestibility in Children)

हम प्राय: अपने जीवन में निर्देशों के उदाहरण देखा करते हैं। प्रयोगों के आधार पर यह निश्चित हो चुका है कि बच्चे निर्देश से अधिक प्रभावित होते हैं। प्रो० नन् का प्रयोग इस बात को सिद्ध करने का सबसे उपयुक्त उदाहरण है—

"I once interviewed, one by one, a number of boys and girls of ten, and, in the course of a friendly conversation, showed each one a post card-photograph of yatch sailing alone on Lake Geneva. After a child had examined the card for thirty seconds, a number of questions about it were addressed to him, among them the question : 'was the steamer going in the same direction as the yatch or in the opposite direction ?" Only one or two children out of about twenty wholly rejected the suggestion contained in these words and declared bluntly that they had seen no steamer; some showed signs of disturbance; as if ashamed at their carelessness in perception on their lack of memory; some gave a hesitating answers : but quite a number specified with apparent confidence the direction in which the suppositious steamer was moving."[1] अर्थात् "मैंने एक बार एक-एक करके दस बारह साल के अनेकों लड़कों और लड़कियों का साक्षात्कार किया। मित्रवत् बात चीत के सिलसिले में मैंने हर एक को पोस्टकार्ड साइज का एक फोटो दिखलाया जिसमें जिनेवा की झील में एक अकेला जहाज जा रहा था। तीस सेकेंड दिखलाने के पश्चात् हर एक बच्चे से निम्नलिखित प्रश्न पूछे गये—क्या जहाज की दिशा की ओर ही बाष्पनॉक (स्टीमर) भी जा रहा था या उसके विपरीत दिशा में? बीस लड़कों में से

१. Nunn, T. P. : 'Education, Its Data and first Principles', London, 1949.

केवल एक दो लड़कों ने पूरी तरह व स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया कि उन्होंने स्टीमर को बिल्कुल देखा ही नहीं और इस तरह से इन शब्दों में निहित निर्देशों को उन्होंने पूरी तरह से अस्वीकृत कर दिया। कुछ लड़कों ने परेशानी के लक्षण प्रदर्शित किये जैसे कि मानो अपनी प्रतिबोधन की लापरवाही और अपनी स्मरण शक्ति की कमी पर लज्जित हुये हों। कुछ ने हिचकिचाहट के साथ उत्तर दिये। परन्तु बहुतों ने पूरे आत्मविश्वास से इस काल्पनिक स्टीमर की दिशा की ओर संकेत किया। इससे ज्ञात होता है कि बच्चे कितनी तीव्रता से निर्देशों को सही मान कर अपना लेते हैं।

निम्नलिखित कारणों से बच्चे निर्देश से अधिक प्रभावित होते हैं—

(१) उनके पास विचारों की आलोचना को आधारित करने की सामग्री नहीं होती।

(२) हो सकता है माँ और बाप ने बच्चे को बिना प्रमाण के कई ऐसी बातें बताई हों जिसे आगे चलकर बच्चे ने पूर्णतयः सत्य पाया हो। इस तरह से बिना तर्क किये हुये ही वह यह समझ लेता है कि बड़ों की बताई बातें सदा सत्य होती हैं। बाद में वह आलोचक बन जाता है और कुछ कथनों को वह गलत पाता है। ज्यों-ज्यों उसका अनुभव बढ़ता जाता है उसकी विश्वास करने की इस सहजता पर अंकुश लगता जाता है, परन्तु राजनीति और धर्म की क्षेत्रों में जिनमें उसका व्यापक अनुभव नहीं होता, वद निर्देशों से अधिक प्रभावित होता है।

प्रचार और निर्देश
(Propoganda and Suggestion)

प्रचार में भी निर्देश की झलक स्पष्ट दीखती है। प्रचार करने में प्रचारक श्रोताओं को अपने मत से सहमत कराने के लिए वह बात, जिसकी सत्यता पर वह विश्वास करता है, कह डालता है और वह बात उनके हृदय में घर कर जाती है। इस तरह से यदि श्रोतागण प्रचारक के शब्दों में विश्वास कर लेते हैं तो हम कहते हैं कि निर्देशों ने अप्रत्यक्ष (indirect) रूप से प्रभाव डाला है। झूठे मतों तथा विश्वासों के विज्ञापन में निर्देशों के प्रत्यक्ष व प्रबल प्रयोग की आवश्यकता होती है। इसके लिए तरह तरह के तरीके हैं जिनके प्रभावशाली प्रयोग से श्रोतागणों को झूठी बातों में विश्वास कराया जा सकता है। टेलीविजन के इस आधुनिक युग में निर्देशों द्वारा प्रचार सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

विज्ञापन में निर्देशों का व्यापक क्षेत्र है। लोग विलियम जेम्स की कहानी

में अंकित उस स्त्री के समान कभी कभी कार्य करने लग जाते हैं जिसने एक दूकानदार को वही चीज देने के लिए विवश किया जिसके बारे में उसने विज्ञापन में खूब सुन रखा था। कभी कभी दूकानदार हमें आवश्यक चीज को खरीदने के लिए विवश कर देता है। हम उसे खरीद लेते हैं और बाद में अपने कार्य पर पश्चाताप करते हैं। दूकानदार हमारे न खरीदने की इच्छा पर प्रत्यक्ष रूप से आक्रमण नहीं करता अपितु वह बड़े ही पेचीदे व जटिल तरीकों को अपनाकर हम जैसे बुद्धिमानों को भी उपयुक्त चीज खरीदने के लिए विवश कर देता है और हम उसे खरीद लेते हैं।

शिक्षा में निर्देश का महत्व

शिक्षक तर्क संगत वादविवाद व बुरे कर्मों के करने के परिणाम को दिखा कर अपने शिष्यों के व्यवहार व चरित्र को प्रभावित कर सकता है। परन्तु प्रौढ़ों की अपेक्षा बच्चों के चरित्र व व्यवहार को तार्किक बात चीत द्वारा कम ढाला जा सकता है। उनके विकास की इस सीढ़ी में नैतिक चरित्र और नैतिक व धार्मिक आदर्शों का बड़ा महत्व है परन्तु इनका तर्क संगत प्रदर्शन नहीं किया जा सकता है। ऐसे क्षेत्र में अध्यापक को अपने प्रभाव व निर्देशों, उदाहरणों और आदर्शों का सहारा लेना होता है। परन्तु ऐसा करने में उसे एक बात का ध्यान रखना चाहिए और वह यह है कि अपने किसी विशेष विचार या विश्वास को आवश्यकता से अधिक बल देकर या उस पर अनावश्यक रूप से उपदेश देकर लड़कों को उसे अपनाने के लिए विवश नही करना चाहिए क्योंकि इससे विरोध होने की आशंका होती है।

यदि बच्चा अध्यापक के व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित है तो वह उसके निर्देश से अधिक प्रभावित होगा। अतः यह आवश्यक है कि अध्यापक में कुछ विशेष गुण होने चाहिए। वैलेन्टाइन ने निम्न लिखित गुणों की ओर संकेत किया है :—

१. अध्यापक में मित्रवत् भावना व उच्चता की भावना का समावेश होना चाहिए। थोड़ी बहुत गम्भीरता व आत्मसंयम भी होना चाहिए।

२. रहस्यमयी भावना भी होनी चाहिए जिससे वह बच्चे में आश्चर्य पैदा कर सके।

३. अपने स्थापित किए आदर्श के प्रति व्यापक रुचि व भावना होनी आवश्यक है।

४. पर्याप्त ज्ञान व सामान्य संस्कृति होनी चाहिए जिससे वह अपने बच्चों की श्रद्धा प्राप्त कर सकें।

५. उसको जीवन का गहरा अनुभव हो जो बच्चों को मोह ले।

अधिकांश यह देखा गया है कि कोई व्यक्ति समूह के विचारों से अधिक प्रभावित होता है। यदि किसी बच्चे को समूह में बिठाकर उपदेश दिया जाय तो वह अधिक निर्देशित होगा। वह उन उपदेशों या विचारों को सरलता से मान लेता है क्योंकि वह समझता है कि उन उपदेशों में पूरे समूह का विश्वास है। इसीलिये बालकों को समूह में उपदेश देना अधिक उचित है। इसलिये स्कूलों में कुछ ऐसी सभाएं होनी चाहिये जिनमें नैतिक या धार्मिक उपदेश दिये जायँ।

जैसा हमने अभी पहले पढ़ा है कि छोटे बच्चों में निर्देश योग्यता अधिक होती है। उनमें तर्क वितर्क की शक्ति अधिक नहीं होती। वे अपने बड़ों की बात को सच समझते हैं। इसलिये बच्चों से कोई ऐसी बात नहीं करनी चाहिए जिनसे प्रभावित होकर उसका उनमें बुरा प्रभाव पड़े। जैसे हम देखते हैं कि कुछ माताएं अपने बच्चों को यह कह कर डराती हैं कि उन्हें जानवर पकड़ ले जाएगा। बच्चे बिना सोचे विचारे यह समझ लेते हैं कि उन्हें सच ही जानवर पकड़ ले जावेगा। इस प्रकार जानवरों के प्रति उनमें भय पैदा हो जाता है। यदि इसका उपाय नहीं किया जाय तो यह भय जीवन भर बना रहता है। इसलिये बच्चों से ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये जिसका बुरा परिणाम उनको जीवन भर भुगतना पड़े।

कुछ बालकों में विरुद्ध निर्देश (Negative suggestions) की प्रवृत्ति होती है। यदि उनसे कहा जाय 'ऐसा मत करो' तो वे अवश्य वैसा करेंगे और कहेंगे हम ऐसा ही करेंगे। यही विरुद्ध निर्देश का उदाहरण है। यदि बालकों से कह दिया जाय कि उस मकान में रात्रि को न जाना क्योंकि वहाँ प्रेत रहते हैं तो यदि वह उस मकान में किसी रात्रि को पहुँचे तो उसे तुरन्त प्रेत का ध्यान आ जावेगा। भले ही वहाँ प्रेत न हो परन्तु उसको यह विश्वास होगा कि वहाँ प्रेत है। बालकों को अभावात्मक आदेश देना ठीक नहीं है। उनसे यह नहीं कहना चाहिये कि 'ऐसा मत करो' या 'झूठ मत बोलो' आदि। उन्हें भावात्मक निर्देश देने चाहिये—जैसे 'सच बोलो' आदि।

शिक्षा में आत्म निर्देश का भी प्रमुख स्थान है। यदि व्यक्ति सदा यह

कहता रहे कि वह एक अच्छा डाक्टर बनेगा और यदि उसे इस बात में दृढ़ विश्वास हो जाय तो अधिक सम्भव है कि वह एक दिन अच्छा डाक्टर बन जायेगा। यह आत्म निर्देशन आत्म शक्ति पर निर्भर रहता है। बालकों में आत्म शक्ति का संचार करना शिक्षकों का कर्तव्य है। हमारे सामने ऐसे अनेकों उदाहरण हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि आत्म शक्ति के आधार पर अनेकों पुरुष महानपुरुष बन गये।

इस प्रकार निर्देशों का शिक्षा में महत्त्व पूर्ण स्थान है।

अध्याय १३

व्यक्तित्व एवं व्यक्तित्व का मूल्याङ्कन

(Personality & Assessment of Personality)

व्यक्तित्व की परिभाषा :—व्यवहारिक ज्ञान पर आधारित बुद्धि की परिभाषाओं के समान ही व्यक्तित्व की व्यवहारिक परिभाषायें भी कुछ अधिक कठिन हैं। व्यक्तित्व की अनेक ऐसी परिभाषायें हो गई हैं जिनके समझने के लिये किया गया साहस स्वतः ही लगभग समाप्त हो जाता है। उदाहरणार्थ ऑलपोर्ट (Allport)[1] ने व्यक्तित्व की लगभग पचास परिभाषायें दी हैं जिनमें से किसी का कहीं और किसी का कहीं प्रयोग किया है। उनमें से अनेक परिभाषायें तो ऐसी हैं जो कि वास्तव में व्यक्तित्व के नियमित और आध्यात्मिक पहलू से सम्बन्धित हैं और मनोवैज्ञानिक पहलू से नहीं। व्यक्तित्व की वे परिभाषाएं जो कि स्वभावतः मनोवैज्ञानिक हैं, इन तीन विभिन्न अंगों में से किसी एक या सब पर बल देती हैं—

(अ) व्यक्ति के वाह्य या आन्तरिक स्वभाव में (ब) व्यक्तित्व के सामाजिक उद्वेग के पहलू में तथा (स) हमारे अद्वितीय होने या एक व्यक्ति बनने में व्यक्तित्व की सहायता में। एक स्थान पर ऑलपोर्ट ने व्यक्तित्व की परि-

---

१ Allport, G.W. : 'personality, a psychological interpretation', Holt, 1937.

भाषा इस प्रकार दी है—"व्यक्तित्व व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक ढंगों का वह मूल प्रवृत्यात्मक (Dynamic) संगठन है जो कि उसके वातावरण में उसके अद्वितीय व्यवस्थापन को निश्चित करता है।"

बर्ट (Burt) के अनुसार 'व्यक्तित्व सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार शारीरिक और मानसिक प्रतिक्रियाओं का वह संगठित प्रतिरूप (Unified Pattern) है जिसमें कि उन्हें स्वयं के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

मन (Munn) की व्याख्या है कि "व्यक्तित्व व्यक्ति की रचना, व्यवहारिक ढङ्ग, रुचि, अभिवृति, सामर्थ, योग्यता तथा अभिरुचि का विलक्षण योग है।" व्यक्तित्व की अधिकतर परिभाषाओं में अनन्य रूपता (Uniqueness) और अभिन्नता (Distinctiveness) के अङ्गों पर बल दिया जाता है। इन परिभाषाओं में व्यक्तित्व वह लक्षण या लक्षणों का समूह है जो कि हमें दूसरों से अलग करता है।

क्रियात्मक अथवा कार्ययोग्य परिभाषायें[1]—व्यक्तित्व की व्यवहारिक ज्ञान पर आधारित परिभाषा, इस विषय के बारे में जो कुछ हम जानना चाहते हैं या जानने का प्रयत्न करते हैं, उसका प्रतिनिधित्व करती है। ये परिभाषाएं सम्भवतः उस साधारण विचार की व्याख्या करती हैं जो कि व्यक्तित्व के विषय में बताने वाले अध्याय या पुस्तक को पढ़ते समय हमारे मस्तिष्क में रहता है। यह भी बहुत कुछ सम्भव है कि ये परिभाषाएं साधारण विचारों के रूप में उन अनुसंधान कर्त्ताओं के मस्तिष्क में रही हों जिन्होंने सर्व प्रथम व्यक्तित्व के तथ्यों का अध्ययन करने का प्रयास किया हो। उन्हें निस्संदेह रूप से संयुक्त, अनन्य रूप व्यक्ति तथा उसकी तुलना में दूसरे व्यक्तियों के बारे में कुछ सूचना प्राप्त करने की आशा रही हो।

उन अनुसंधानकर्त्ताओं की आशाओं तथा अभिप्रायों को अपने मस्तिष्क की पृष्ठभूमि में रखना हमारे लिए लाभदायक होगा। यह एक बड़ी भारी भूल होगी कि हम यह विचार कर लें कि अनुसंधानकर्त्ता ने पूर्णतः वही सब कुछ पाया होगा जो कि उनके मस्तिष्क में था। उसने उच्च अभिप्रायों के साथ ऐसे परीक्षण तैयार किये होंगे जिनमें उसे आशा होगी कि ये व्यक्तित्व के समस्त पहलुओं को प्रकाशित कर देंगे जब कि बाद में उसे यह ज्ञात हुआ होगा कि ये परीक्षण ऐसी बातें बता रहे हैं जो कि उनकी आशाओं के विपरीत हैं।

यदि हम अपने आप को इस कठिन तथ्य को मानने के लिये

१, Operational or working definitions.

तैयार कर लें तो हमें ठीक उसी प्रकार जैसा कि बुद्धि के विषय में होता है, यहाँ भी ज्ञात होगा कि वास्तव में यह अद्‌भुत अध्ययन, परीक्षण के स्वभाव या निरीक्षण के सिद्धान्त के द्वारा परिभाषित है। हमारा ज्ञान इन मापक यंत्रों द्वारा बताई हुई वस्तुओं तक ही सीमित है। यदि हमारे परीक्षण उन गुणों को प्रकट कर सकते हैं जिनसे कि व्यक्ति अनन्य रूप बनता है तो वही निरीक्षण हमारा वास्तविक अध्ययन होगा। यों कहना चाहिये कि व्यक्तित्व परीक्षा द्वारा हम व्यक्ति में उन गुणों की खोज करते हैं जो किसी व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों से भिन्न समझने में सहायक होते हैं। हो सकता है कि इस परीक्षण द्वारा हम उस व्यक्तित्व को ज्ञात न कर पावें जो कि वास्तविक है।

इस कठिन क्रियात्मक मार्ग को ही अपनाते हुए हमें अपने आपको उस अनुसंधानित व्यक्तित्व तथा वास्तविक व्यक्तित्व के अन्तर को जानने के लिये तैयार रखना चाहिए। अधिकतर अनुसंधानकर्त्ता संयोग और अनन्य रूपता पर बल नहीं देते बल्कि इसके विपरीत वे व्यक्तित्व के भिन्न गुणों (traits) पर अधिक बल देते हैं। अनुसंधान हेतु परीक्षणों में ऐसे गुणों से सम्बन्धित प्रश्न रखे जाते हैं जैसे मिलन सारिता, अन्तः परावर्त्तन, स्नायुरोग इत्यादि। व्यक्तित्व का यह उस प्रकार का पहलू है जिसके विषय में कि हम अनुसंधानों से जान सकते हैं। व्यक्तित्व जिसके विषय में कि हम अध्ययन करेंगे, अधिकतर ऐसे गुणों का एक समूह होता है जिसमें कि लोगों में विभिन्नता होती है।

व्यक्तित्व के गुण (Traits of Personality) :—यहाँ हमें अपने उद्देश्य को स्पष्ट कर देना चाहिये कि इस अध्याय में मुख्यतया हमारा अभिप्राय व्यक्ति के गुणों का मापन या निर्णय करना ही है। व्यक्तित्व के गुणों को ऐसे विशिष्ट व्यवहार की प्रतिक्रियाओं (Responses) का स्थायी योग या समूह समझना चाहिये जो कि विशिष्ट परिस्थितियों तक सीमित रहता है। इस प्रकार हम धैर्य के गुण के विषय में कह सकते हैं। यह व्यक्ति की यौगिक रचना (Make up) का स्थायी अंग है। धैर्य अनेक छोटी-छोटी विशिष्ट परिस्थितियों में दिखाई देता है, जैसे—गृहकार्य, बागवानी, प्रियकार्य (Hobby) तथा अन्य लोगों के साथ व्यवहार। व्यक्तित्व के गुणों का मापन कठिन है। प्रथम तो वे अपने अर्थ में बड़े ही संदिग्ध और अस्पष्ट होते हैं और अक्सर भिन्न-भिन्न लोगों के व्यवहार की रीति एक ही गुण में भिन्न-भिन्न होती है—उदाहरणार्थ एक ही व्यवहार जिसको एक व्यक्ति झगड़ालू किस्म का कहता है, दूसरे के द्वारा साहस के नाम से पुकारा जा सकता है। दूसरे व्यक्तित्व के गुणों की व्याख्या वैषयिक (objective)नहीं होती है वे निरीक्षक (observer) के ऊपर आधारित होते

हैं। उसका स्वयं का व्यक्तित्व और उसकी विचारधारा दोनों, अन्य व्यक्ति के व्यवहार में जो कुछ वह देखता है, उसे प्रभावित करते हैं। तीसरे, कोई भी विशिष्ट व्यवहार व्यक्तित्व संरचना एवं वातावरण के ऐसे तत्वों की बहुतायत पर निर्भर करते हैं जो कि हर समय गुण की समानता में प्रतिक्रिया नहीं करते हैं।

क्या इसका यह अभिप्राय है कि हमें व्यक्तित्व के गुणों का मूल्याङ्कन करने का प्रयास ही नहीं करना चाहिये और यदि हम करेंगे तो वे सही नहीं होंगे ? नहीं। अनेक व्यक्तिगत भावनामय एवं स्वभाव सम्बन्धी विशेषताओं के आधार पर व्यक्तियों का वर्गीकरण करने से हमें बहुत कुछ सत्य बातों का पता लगता है। उदाहरणार्थ संकीर्ण रुचियों, सहयोग की इच्छा, उत्सुकता तथा आनन्द आदि अनेक बातों के विषय में अवश्य सफलता मिलती है। ये वर्गीकरण आपस में सहसम्बन्धी हैं और इन वर्गों और समूहों के सम्बन्धित गुण तत्व विश्लेषण के आधार पर ज्ञात होते हैं।

व्यक्तित्व से प्रकार (types) :—व्यक्तित्व के प्रकारों (types) तथा गुणों (traits) में अन्तर होता है। इसके प्रकार इनके गुणों से अधिक सामान्य हैं और ये गुणों के समूह माने जाते हैं। अधिकतर व्यक्तित्व दो तरह के होते हैं—अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी। बहिर्मुखी प्रकार के अन्तर्गत प्रसन्नता, आत्म-विश्वास तथा ओछापन आदि के गुण हो सकते हैं जबकि अन्तर्मुखी प्रकार के अन्तर्गत समाज में आत्म विश्वास का अभाव, धैर्य तथा यथार्थता आदि आते हैं।

मनुष्य के व्यक्तित्व सम्बन्धी प्रकारों (types) में विभिन्नता होती है। कार्लयुङ्ग (Carl Jung) ने मानव को दो प्राथमिक प्रकारों (types) में विभाजित किया है जो कि 'अन्तर्मुखी' और 'बहिर्मुखी' प्रकारों के नाम से जाने जाते हैं। युंग के अनुसार बहिर्मुखी व्यक्तित्व सांसारिकता से बाहर की बातों में रुचि लेता है। ऐसा वास्तव में स्वयं के लिये ही होता है। सामान्यतः वह प्रसन्नमुख, आत्म-विश्वासी तथा अधिक बातें करने वाला होता है। वह उग्र (Aggressive) तथा स्वीकृत के लिये इच्छुक हो सकता है। जब वह सन्देह या कठिनाई में होता है तो वह समाज की शरण लेता है और विश्वासतथा सहायता की इच्छा करता है। उसके महत्त्वाकांक्षा का एक निम्न स्तर होता है और वह अपने पिछले किये गये कार्यों का अवागणन (underestimation) करने का कोई दृष्टिकोण नहीं प्रकट करता है। वास्तव में वह उनका अधिक मूल्याङ्कन करता है। जो अन्तर्मुखी व्यक्तित्व होता है वह ऐसी स्थिति में स्वयं की ओर अग्रसर होता है और संसार को वह वैषयिक ढङ्ग से नहीं देखता है। उसका

साथियों में विश्वास कम होता है। वह स्वीकृति की प्रतीक्षा अवश्य करता है किन्तु जब कठिनाइयों में पड़ जाता है तो अपनी चिन्ताओं को बहुत कम अपने साथियों को बताता है। उसके महत्वाकांक्षा का स्तर ऊँचा होता है और वह अपने पिछले कार्यों का बड़ी निर्दयता से अवागरान (Underestimation) करता है। एक उदाहरण से इन दोनों प्रकारों का अन्तर स्पष्ट हो जायगा। कल्पना कीजिये कि आपका साथी आपका रुपया लेकर भाग जाता है। इससे आपके हृदय में उसके प्रति एक बहुत बड़ा तनाव (Tension) या निराशा पैदा हो जाती है। अब आप इस तनाव को किस प्रकार दूर करेंगे ? यदि आप पूर्णरूपेण बहिर्मुखी हैं तो आपको प्रबल बाह्य क्रियाओं से अधिकतम सन्तुष्टि होगी। आप उस चोर के विषय में अधिक सोचने लगेंगे। कभी-कभी आप उससे लड़ने के लिये तैयार हो जायेंगे। ऐसा करने के पश्चात आपको कुछ सांत्वना मिल सकेगी। यदि आप पूर्णत: अन्तर्मुखी हैं तो आपको अपने विचारों में इस समस्या को सुलझाने में अधिकतम आराम मिलेगा। अपने जीवन के दर्शन को इस प्रकार फिर से संगठित करने के पश्चात आपको इस समस्या के विषय में अधिक अच्छा ज्ञान हो सकेगा। लोग इन दो विभागों के अन्तर्गत पूर्णत: नहीं आपाते हैं इसलिये 'कॉर्ल युंग' ने व्यक्तित्व का एक अन्य तीसरा प्रकार दिया है जिसे मध्य मुखी या उभय मुखी (Ambivert) कहते हैं। इसमें अन्तर्मुखी तथा बहिर्मुखी दोनों व्यक्तियों की विशेषताओं का मिश्रण रहता है। आजकल उन्माद (Insanity) के आसानी से ज्ञात होने योग्य दो प्रकारों की विषमता इस प्रकार है—प्रथम तो (Cyclic) अथवा manic-depressive तथा दूसरी Schizophrenic अथवा dissociative। किन्तु अब इनके स्थान पर समानता Cyclothyme और Schizothyme प्रयुक्त होते हैं।

व्यक्तित्व का मूल्यांकन

व्यक्तित्व के मूल्यांकन की चार प्रमुख विधियाँ हैं :—

(१) समक्ष कार (interview)

(२) वर्गक्रम एवं निर्णय (Rating and Judgement)

(३) व्यक्तित्व सम्बन्धी प्रश्न सूची (Questionnaires)

(४) प्रक्षेपी विधि (Projective techniques)

(१) **समक्षकार**—व्यक्तित्व का मूल्यांकन करने के लिये यह एक अत्यन्त पुरानी प्रत्यक्ष विधि है। समक्षकार के लिये उपस्थित व्यक्ति के व्यक्तित्व को मोटे तौर पर जांचने के लिये एक प्रथक एवं निर्यमित कार्य काल (session) को अपनाया जा सकता है। एक अच्छा ढंग यह होगा कि अनेक समक्षकार

हों जो कि समक्षकार के लिये प्रस्तुत व्यक्ति के विभिन्न परिस्थितियों में निरीक्षणों पर फैलाये गये हों। समक्षकार एक संतोषजनक विधि मालूम होती है क्योंकि यह व्यक्ति के वाह्य रूप, चेष्टाओं, आवाज तथा अभिव्यक्तियों के ढंगों और समक्षकार की परिस्थितियों में उसके व्यवहार के बारे में बतलाने में सहायक होती है। समक्षकार के लिये प्रस्तुत व्यक्ति तथा समक्षकार करने वाले व्यक्ति दोनों समक्षकार की बिधि को अच्छी समझते हैं। यह परीक्षण आदि की अन्य विधियों से कम खर्चीली विधि है। यह नवीन अभिप्रायों तथा विशेष परिस्थितियों के लिये लचीली भी है। अर्थात् परिस्थिति के अनुसार बदली जा सकती है।

इतना होते हुये भी समक्षकार विधि परिसीमाओं रहित नहीं है। यह समक्षकार के लिये प्रस्तुत व्यक्ति के व्यवहार का केवल एक नमूना ही देती है। कारण स्पष्ट है क्योंकि वह एक अच्छा प्रभाव दिखाने के लिये प्रयत्नशील रहता है और इस प्रकार उसका व्यवहार उसके विद्यालय के जीवन और कार्य से सामान्यतः भिन्न रहता है।

समक्षकार का प्रयोग अन्य विधियों की अनुपूर्ति के लिये लाभदायक हो सकता है।

समक्षकार की विश्वस्वता (Reliability of Interview)

समक्षकार की विश्वस्वता का निश्चय करने के लिये परीक्षण पुनः परीक्षण (test-retest) विधि का प्रयोग किया जा सकता है। लेकिन यह विधि कोई सन्तोषजनक विश्वस्वता गुणक प्रदान नहीं करती है क्योंकि परीक्षार्थी के विषय सम्बन्धा उत्तर उस समय भिन्न हो सकते हैं जबकि उसे दूसरी परिस्थिति का सामना करना पड़ता है। यहाँ इस बात को भी स्वीकार किया जाता है कि व्यक्तित्व की विशेषताएँ अस्थिर रहती हैं। समक्षकार की विश्दस्वता का निश्चय करने के लिये एक संतोषजनक विधि यह है कि दो या दो से अधिक निरीक्षकों (observers) के द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व के गुणों के बारे में बताई हुई बातों में समानता होनी चाहिये।इस विधि से विश्वस्तता-गुणक लगभग १.० तक होने की आशा की जाती है। व्यवहार में हम सामान्यतः विश्वस्वता गुणक ·६ के आस पास पाते हैं।

समक्षकार की वैधता (validity of interview)—वर्नन (Vernon) तथा पैरी (perry) ने उन विशिष्ट मनोवैज्ञानिकों अथवा कार्यकर्ता नियुक्ति अधिकारियों (personnel selection officers) के अध्ययनों के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं जिनमें उन्होंने अधिकारियों के प्रशिक्षण

के लिए नव सिखुए चुनने में पूर्ण सफलता प्राप्त की थी। समक्षकार की अधिक वैधता के विषय में बहुत कम सबूत प्राप्त हैं। मैकलेलेन्ड के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि अध्यापकों द्वारा औद्योगिकता तथा व्यक्तित्व की अन्य विशेषताओं के सम्बन्ध में दिये गये निर्णय वैध नहीं होत हैं।[1]

सारांशत: यह कहा जा सकता है कि समक्षकार के लिये एक अच्छे प्रशिक्षण की आवश्यक होती है। एक अप्रशिक्षित समक्षकार करने वाला व्यक्तित्व का सही सही मूल्यांकन कठिनाई से ही कर सकता है। समक्षकार की कुछ कमियों को दूर करना तो हमारे लिये आवश्यक है किन्तु इसे पूर्णत: व्यर्थ घोषित नहीं किया जा सकता है। यह अवश्य इच्छा की जाती है कि कुछ अधिक विषयक (objective) विधियाँ प्रस्तुत की जायँ। यदि समश्रकार को एक विषयक (objective) ढंग से अपनाया जाय तो यह एक अत्यधिक व्यावहारिक वस्तु सिद्ध होगी और इसका प्रयोग सीमा पर के (border line) विद्यार्थियों के लिये लाभदायक होगा।

(२) वर्ग क्रम एवं निर्णय विधि

प्रतिदिन हम दूसरों के प्रति और दूसरे हमारे प्रति अपने विचार प्रकट करते हैं। जैसे ही हम किसी व्यक्ति से मिलते हैं हम उसके विषय में अपना एक मत स्थिर कर लेते हैं। हम उसकी अभिव्यक्तियों, लक्षणों, क्रियाओं आदि के विषय में व्याख्या करने का प्रयत्न करते हैं और इस प्रकार उसके व्यक्तित्व के विषय में ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।

वर्गक्रम की निम्नलिखित विधियाँ होती हैं :—

(अ) क्रम से रखना तथा जोड़ी की तुलना (Ranking and paired comparisions)

(ब) सांख्यिक वर्ग क्रम (numerical Rating)

(स) मनुष्य से मनुष्य का मापन (Man to man scale)

(द) शाब्दिक और रेखांकित मापन (Verbal and graphic scale)

(य) विश्लेषणात्मक मापन (Analytic scales)

(र) मत देने और पहिचानने की विधि (Voting and guess who technique)

(ल) व्यक्तिगत वर्गक्रम (Rating within persons)

१. Mc Clelland, W. : 'Selection for Secondary Education' London, University of London press, 1942.

(अ) **क्रम में रखना तथा जोड़ों की तुलना** :—हम व्यक्तियों को व्यक्तित्व के गुणों की श्रेष्ठता के अनुसार क्रम में रखने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु यह विधि उस समय अनुपयोगी सिद्ध होती है जब कि व्यक्तियों की संख्या २० से अधिक बढ़ जाती है।

जोड़ों के तुलनात्मक अध्ययन की विधि में वर्गक्रम करने वाले को दो-दो नामों के जोड़े दिये जाते हैं और उससे कहा जाता है कि वह यह बतावें कि उन दोनों में कौन श्रेष्ठ है। अन्त में इन परिणामों को क्रम से रखा जा सकता है।

(ब) **सांख्यिक वर्ग क्रम** :—इस विधि के अनुसार हर व्यक्ति को उसके गुणों के लिये अङ्क दिये जाते हैं। ये अङ्क मापक (scale) के ५ या ७ बिन्दुओं में रख लिए जाते हैं जैसे—५, ४, ३, २, १ या +२, +१, ०, —१, —२ अथवा इन्हें अ ब स द य अक्षरों द्वारा व्यक्त किया जाता है या सर्वोत्तम, अधिकतम, उत्तम, अच्छा, कमजोर आदि शब्दों द्वारा प्रकट करते हैं। इस विधि में यह कमी है कि वर्गक्रम करने वाले व्यक्तियों के स्तर तथा विभाजनों में भिन्नता रहती है। संतोषजनक वर्गक्रम के लिये वर्ग क्रम करने वाले को यह पहिले से विचार कर लेना चाहिये कि पात्रों (Subjects) के किसी भी बड़े समूह का वर्गक्रम प्रसामान्य वितरण (Normal distribution) के रूप में हो, जैसे—

अ	ब	स	द	य
१०	२०	४०	२०	१०

(स) **मनुष्य से मनुष्य का मापन**—मनुष्य से मनुष्य का मापन एक ही गुण पर मनुष्यों का वर्गक्रम तथा मनुष्यों के समूह का अनेक लक्षणों पर एक ही समय वर्ग क्रम करना दोनों में लाभदायक सिद्ध हुआ है। इसका सर्व प्रथम उपयोग प्रथम विश्वयुद्ध के अवसर पर क्षमता वाले अधिकारी चुनने के लिये मनुष्यों का वर्गक्रम करने में हुआ था। सभी वर्गक्रम कर्त्ताओं को इस विधि को प्रयोग करने के लिये कई ऐसे व्यक्तियों से परिचित होना चाहिये जिनको वे एक क्रम से रख सकें। उदाहरण के लिये निम्नलिखित ढङ्ग अपनाया जा सकता है :—

व्यक्ति	**वर्गीकरण कर्त्ताओं का सर्वसम्मत निर्णय**
राम	इस विद्यालय के लिये सर्वोत्तम व्यक्ति
मोहन	उत्तम
सुरेश	औसतन अच्छा व्यक्ति
किशोर	कठिनाई से उत्तीर्ण होने यो..
विजय	अस्वीकृत

एक बार जबकि वर्गक्रम कर्त्ता इस मापन से सहमत हो जाते हैं तो फिर इसका प्रयोग वे कहीं भी किसी नये व्यक्ति के गुण ज्ञात करने के लिये कर सकते हैं।

(द) शाब्दिक तथा रेखाङ्कित मापन :—व्यक्तित्व के गुणों का वर्गक्रम करने में अक्षरों अथवा संख्याओं के स्थान पर हम शब्दों का प्रयोग भी कर सकते हैं। जैसे सर्वोत्तम, अधिक उत्तम, उत्तम, अच्छा, कमजोर आदि। रेखाङ्कित मापन के सम्बन्ध में प्रत्येक शब्द की ठोस तथा पूर्ण परिभाषा देनी होती है ताकि वर्ग क्रम कर्त्ता को इसके बारे में अधिक सोचना न पड़े तथा उसके स्तर के लिये अधिक परेशान न होना पड़े। नीचे एक रेखाङ्कित रूप दिया गया है जिसमें एक सरल रेखा में प्रत्येक शब्द को परिभाषा के रूप में दिया गया है।

जैसे :—वह छोटे-कोटे कामों को ध्यान से देखता है :—

१	२	३	४	५
दूसरों के कहने पर आश्रित नहीं रहता।	अधिकतर समय	औसत के लगभग	कभी कभी काम को छोड़ता है	कभी नहीं छोड़ता है

इसमें वर्गक्रम कर्त्ता केवल सही का या गुण का चिह्न जहाँ आवश्यक समझता है लगा देता है।

(य) विश्लेषणात्मक मापन—इस विधि के अन्तर्गत एक गुण को तीन भागों में बांट लिया जाता है जिनका वर्गक्रम तो अलग-अलग किया जाता है किन्तु उनके अङ्कों का योग कर लिया जाता है।

(र) मत देने और पहिचानने की प्रविधि :—यदि लगभग ९ वर्ष के बच्चे से कहा जाय कि वह दूसरे बच्चों में से, जिसे सब बातों में सबसे योग्य और सबसे अयोग्य समझता है उसे अपना मत दे, वह इस कार्य को पर्याप्त सही ढङ्ग से कर सकता है।

पहिचानने की विधि में चारित्रिक विशेषताओं का एक छोटा सा ढाँचा तैयार कर लिया जाता है जैसे बहुत सुस्त, सुस्त, औसत श्रेणी का, क्रियाशील तथा अधिक क्रियाशील। नीचे के उदाहरण से यह बात और स्पष्ट हो जायगी।

ये तीन व्यक्ति सदैव अपने आपको प्रसन्न रखते हैं और आनन्दित करते रहते हैं। उन्हें क्रोधित करना असम्भव है। वे कभी बदलते नहीं हैं। पहिचानिये वे कौन हैं—

(१)— (२)— (३)—

(ल) **व्यक्तिगत वर्गक्रम करना**—एक गुण के आधार पर व्यक्तियों को वर्गक्रम में रखने के विपरीत यह विधि, एक व्यक्ति में विद्यमान अनेक गुणों के आधार पर उसके गुणों को क्रमित करती है। एक व्यक्ति के विषय में यह जानना कि वह सुशीलता, अस्थिरता आदि गुणों में कहाँ तक अधिक पूर्ण है अधिक सरल होता है बनस्पति अनेक व्यक्तियों को उनकी सुशीलता के क्रम से रखने के।

वर्गक्रम विधि की परिसीमायें

(१) व्यक्तियों को सही वर्गक्रम में रखना कठिन कार्य है। जब हम यह कहते हैं कि अमुक व्यक्ति कभी-कभी कार्य की उपेक्षा करता है तो इससे हमें कोई वैषयिक परिणाम नहीं मिलता। इस विषय में विभिन्न वर्ग क्रम कर्त्ताओं की विभिन्न रायें हो सकती हैं।

(२) दूसरे वर्गक्रम कर्त्ता व्यक्ति के पूर्व यश के प्रभाव से प्रभावित हो जाता है। यह कहा जाता है कि एक वर्गक्रम कर्त्ता जो कि एक विद्यार्थी के किसी एक गुण से प्रभावित है वह उसके अन्य अनेक गुणों में भी उसको उच्च क्रम में रखेगा। कल्पना कीजिये कि किशोर आपका प्रिय विद्यार्थी है तो यह स्वाभाविक सत्य है कि आप उसे सहनशीलता एवं औद्योगिकता के गुणों में भी अच्छा ही समझेंगे।

(३) एक वर्गक्रम कर्ता का दूसरे वर्गक्रम कर्ता की अपेक्षा पक्षपात अधिक हो सकता है। किसी एक विशेष गुण में वर्गक्रम करने पर उसमें वर्गक्रम कर्त्ता की स्वयं की रुचि का भी कुछ प्रभाव रहता हैं।

वर्गक्रम करने में सुधार के उपाय

(१) यह ध्यान में रखने की बात है कि प्रकेवल वर्गक्रम (absolute Ratings) की अपेक्षा आपेक्षिक वर्गक्रम (Relative Rating) अधिक अच्छा होता है।

(२) संख्या या अक्षरों में मापन की अपेक्षा रेखांकित मापन अधिक उपयुक्त होता है।

(३) जहाँ तक सम्भव हो विश्लेषणात्मक विधि प्रयोग में लाई जानी चाहिये।

(४) किसी गुण के विषय में किसी व्यक्ति का वर्गक्रम करने से पहले उस गुण की पूर्ण व्याख्या अवश्य होनी चाहिये। उदाहरणार्थ 'पसन्द' के गुण की व्याख्या नीचे दी गई है—

एक 'पसन्द के योग्य' बालक वही होगा जिसे आप अपने साथ छुट्टी के दिन घुमाने ले जाना पसन्द करेंगे। एक 'पसन्द के योग्य' बालक वही होगा जिसे आप विद्यालय के बालचरों का प्रतिनिधि चुनेंगे।

(५) जब कि अनेक गुणों को वर्गक्रम में रखना हो तो एक समय हमें एक ही गुण में सब व्यक्तियों का वर्गक्रम कर लेना चाहिये न कि प्रत्येक व्यक्ति के सभी गुणों में।

(६) वर्गक्रम कर्ता को पूर्व यश से प्रभावित होने के लिये मना करना चाहिये।

(७ जब हमें किसी व्यक्ति का अनेक गुणों में वर्गक्रम करना हो तो यह अच्छी नीति होगी कि उन बातों को एक फार्म पर क्रम से रखलें। इससे सम्बन्धित सर्वाधिक वांछित एवं सर्वाधिक अवांछित व्यक्तित्व के गुण बारी-बारी से सम संभाविक ढंग (Random fashion) में आ सकेंगे, अन्यथा वर्ग क्रम कर्ता वाँछित या अवांछित गुणों को एक ही स्थान में लिखे रहने के कारण सही करता चला जायगा। इससे वर्ग क्रम में त्रुटि हो जायगी।

(८) व्यक्तिगत पक्षपातों को समाप्त करने के लिये तीन याचार वर्ग क्रम कर्त्ताओं के स्वतन्त्र निर्णयों पर विचार करना चाहिये।

(९) वर्ग क्रम मापन का प्रयोग करने के लिये वर्गक्रम कर्त्ताओं को प्रशिक्षण मिलना चाहिये।

(१०) वर्ग क्रम कर्त्ताओं को उस व्यवहार को अनेक बार देखने का अवसर मिलना चाहिये जिसका कि वे वर्गीकरण कर रहे हैं।

(३) **व्यक्तित्व की प्रश्न सूची** (Questionnaire method) व्यक्तिगत व्यवस्थापन के अधिकतर प्रदत्तों (Data) को व्यक्तिगत प्रदत्त सूची (Personal Data Sheet), व्यक्तित्व नामावली (Personality schedule) अथवा व्यक्तिगत गणना सूची (Personal Inventory) के कुछ रूपों के आधार पर एकत्रित किया गया है। आदर्श रूप से इन प्रश्न सूचियों (Questionnaires) में उन लक्षणों (Symptoms) अथवा परिवादों (Complaints) की एक लम्बी सूची होती है जिनसे उन व्यक्तियों का अध्ययन किया जा सकता है जो (Neurotic), अन्तर्मुखी अथवा बहिर्मुखी आदि होते हैं। परीक्षार्थी को साधारणतया इन प्रश्नों द्वारा प्रकाशित करना पड़ता है कि उसने इस लक्षण को कभी अनुभव किया अथवा नहीं।

सैकड़ों अथवा इससे भी अधिक प्रकाशित सूचियों प्रश्नों में से अधिकतर

इन तीन मूल रूपों के रूपान्तर या विस्तृत प्रतिरूप हैं—प्रथम वुडवर्थ (wood worth) की परसनल डेटा शीट'; दूसरी फ्राइड—हैड ब्रेडर (Freyd Heid breder) की 'इन्ट्रोवर्ट, एक्स्ट्रोवर्ट टेस्ट', तथा तीसरे आँलपोर्ट की 'एसेन्डेन्स सबमीशन—प्रतिक्रियात्मक अध्ययन।'

व्यक्ति प्रदत्त सूची (Personal Data sheet)—वुडवर्थ के 'परसनल' डेटा शीट' में ११६ प्रश्न हैं जो चिकित्सा शास्त्र के मनोविज्ञानकों द्वारा दिये गये स्नायु-रोगियों (neurotic patients) के गुणों के वर्णनों में से मौलिक रूप से छाँटे गये हैं। उनमें से कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं।[१]

(अ) क्या आप अपने आपको अधिकतर शक्तिशाली और निरोग अनुभव करते हैं ?

(ब) क्या आप सोने में घूमते हैं ?

(स) क्या आप सुबह जागने पर थकान का अनुभव करते हैं ?

(द) क्या आपके परिवार के किसी व्यक्ति को शराब पीने की या अन्य पीने वाली चीजों की आदत है ?

(य) आदि।

प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 'हाँ' या 'नहीं' में होता है और उनमें से एक उत्तर की आशा की जाती है। वह व्यक्ति जो परख हल कर रहा है वह वहाँ केवल यह बतायेगा कि उसने इन गुणों में से किसी का अनुभव किया है अथवा नहीं। जिस व्यक्ति में स्नायु सम्बन्धी लक्षण अधिक होंगे उसे स्नायु रोगी (neurotic patient) कहा जावेगा।

लेयर्ड[२] 'परसनल इनवेन्टरी बी०—२' में इसी प्रकार के पद (Items) है किन्तु वे बहु-निर्वचन (Multiple choice) रूप में हैं।

थर्स्टन (Thurstone)[३] की 'परसनैलिटी शिड्यूल' में २२३ पद हैं जो कि वुडवर्थ, लेयर्ड की प्रश्न सूचियों तथा अन्य साधनों से संग्रहीत किये गये हैं। इसके प्रतिशतीय सामान्य स्तर (Percentile Norms) कॉलेज के विद्यार्थियों के लिये उपलब्ध हैं।

---

१. Wood worth, R. S., : 'Personal Data Sheet', Chicago, stoelting, 1920.

२. Laird, D. A. : 'Detecting Abnormal Behaviour'; J. Abn. Soc. Psychol., 1925, 128-141.

३. Thurstone, L. L., and Thurstone, T. G., 'A Neurotic Inventory;' J. Soc. Psychol., 1930, 13-30.

फ्राइड-हैड ब्रैडर्स[१] 'इन्ट्रोवर्सन एन्ड एक्स्ट्रोवर्सन टैस्ट' :—युंग (Jung) के लेखों में से फ्राइड ने ५५ पद जिनमें अन्तर्मुखी वर्ग का वर्णन है संग्रहीत किये हैं जिनमें से कुछ नमूने के तौर पर यहाँ दिये जाते हैं : क्या कोई व्यक्ति—

१—स्वयं चेतन मन है ?

२—क्रियाओं में सुस्त है ?

३—सामाजिक अवसरों पर अपने आपको पृष्ठभूमि में रखता है ?

४—अनुभव करने के बजाय किसी वस्तु का केवल अध्ययन करना पसन्द करता है ?

हैड ब्रैडर ने इनको स्वतः वर्गीकृत (Self-rating) परख में परिवर्तित कर दिया जिसमें परख हल करने वाला व्यक्ति अपने हर पद में +, ? या – का चिह्न लगा कर उत्तर देता है ।

आलपोर्ट[२] 'ए० एस० रिएक्सन स्टडी' ('Altports' A.—S Reaction study) :—इसमें उद्रोह (ascendance) एवं अनुवर्त्ती (Submissiveness) के यथार्थ स्पष्टीकरण का प्रतिनिधित्व करने के लिये पदों का निर्माण किया गया है । इन पदों को प्रमापीकृत (standardized) करने के लिये इनकी उन विद्यार्थियों के उत्तरों से तुलना की गई थी जिनको कि संस्थाओं द्वारा उच्चकोटि के उद्रोही या अनुवर्ती बताया गया था । नीचे एक उदाहरण दिया जाता है ।

तुम चर्च में देर से आये और सामने की जगह छोड़कर अन्य सब भर गई हैं । क्या तुम चर्च में सामने बैठने को जाओगे ?—

सदैव	+३
कभी-कभी	०
कभी नहीं	—३

इसमें उत्तरों के सामने अंक लिखे हैं जिसके आधार पर यह ज्ञात किया जाता है कि व्यक्ति उद्रोही है या अनुवर्ती । इस प्रश्न सूची का स्त्रियों के लिये एक और रूप उपलब्ध है और बच्चों के लिये भी सुविधाजनक रूप बना लिया गया है !

अन्य गुणों की परख :—अन्य गुणों के लिये अनेक परख उपलब्ध हैं किन्तु

१. Freyd, M. 'Introverts and Extroverts; Psychol. Rev. 1924, 31, 74-87. Heidbreder, E.; 'Measuring Introversion & Extroversion'; J. Abn. Soc. Psychol., 1926, 21, 120-134.

२. Allport, G. W; 'A test for Ascendance-Submission'; J. Abn. Soc. psychol., 1928, 23, 118-136.

Allport, F. H., and Allport, G. W.; 'A.—S. Reaction study' Boston : Houghton Mifflin, 1928.

हैथावे[१] और एम० सी० किन्ले की 'मीनेसोटा मल्टी फेजिक पर्सनेलिटी इन्वेन्टरी (M. M. P. I,)' तथा बर्नरयूटर[२] की 'बर्नरयूटर पर्सनेलिटी इन्वेन्टरी' अधिक प्रसिद्ध है।

मीनेसोटा मल्टीफेजिक पर्सनेलिटी इन्वेन्टरी :—यह परख इंग्लैण्ड और अमेरिका के मानसिक अस्पतालों में अधिकतर प्रयुक्त होती हैं। इसमें ५५० कथन (statements) हैं जो कि अलग-अलग कार्डों पर लिखे हुए हैं। उनका प्रयोग व्यक्तिगत रूप से होता है और रोगी उन्हें अलग-अलग तीन 'सत्य' 'असत्य' तथा 'कहा नहीं जा सकता' नामक सन्दूकों में रखते हैं। इनमें आधे घन्टे से लेकर कई घन्टे तक समय लग जाया करता है। ५०० सामान्य बुद्धि प्रौढ़ों (Normal Adults) और ८०० नाना प्रकार (Miscellaneous) रोगियों की प्रतिक्रियाओं (Responces) के आधार पर प्रयोग सिद्ध गणनात्मक कुंजियाँ (Empirical scoring keys) बनाई गई हैं जिससे कि दमन, मूर्छा, पुरुषत्व, स्मीत्व आदि का पार्श्व चित्र (Profile) बनाया जाता है।

बर्नरयूटर पर्सनेलिटी इन्वेन्टरी :—यह इन्वेन्टरी चार गुणों—स्नायुयिक प्रवृति, अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी, प्रभुत्व-अनुवर्ती प्रकृति तथा आत्मविश्वास की माप करती है। इनमें प्रत्येक १२५ पदों की गणना प्रत्येक गुण के लिये होती है। उदाहरणार्थ 'क्या आप अधिकतर दिवास्वप्न (Day Dreams) देखते हैं।' की प्रतिक्रियाओं की गणना नीचे दी जाती है :—

		स्नायुयिक	अन्तर्मुखी	प्रभुत्व	आत्मविश्वास
हाँ	—	+५	+३	–१	+१
नहीं	–	–४	–४	+१	–१
संदिग्ध	–	–२	०	+२	+२

बालकों के लिये प्रश्न सूची :—१४ वर्ष से कम आयु के बच्चों से पूँछे गये

१. Hathway, S. R., and Mc Kinley, J. C.; 'Multiphasic Personality Shedule (Minnesota)', J. Psychol., 1940, 10, 249-254.

२. Bernreuter, R. G., : 'The Theory and Construction of the personality Inventory'; J. Soc. Psychol., 1933, 4, 387-405.

व्यक्तिगत प्रश्नों के उत्तरों पर भरोसा करना कठिन है। मैलर[1](Maller) ने बालकों के लिये एक प्रश्न-सूची बनाई जिसे कि 'मैलर्स करेक्टर स्केचेज' कहते हैं। इसमें २०० छोटे-छोटे वर्णन हैं। परखे जाने वाले व्यक्ति (Testee) को कहना पड़ता है कि वह वर्णित व्यक्ति की भाँति सोचता और कार्य करता है अथवा नहीं। उदाहरणार्थ—

'यह व्यक्ति दुखदायी स्मृतियों को भुला देने में कठिनाई का अनुभव करता है और उसके विषय में सोचने को टाल नहीं सकता है।'

प्रत्येक पद को परख में दूसरे स्थानों पर परिवर्तित रूप में स्थिरता पर रोक लगाने के लिये दुहराया गया है। जैसे—

'यह व्यक्ति दुखदायी स्मृतियों कोभुला देने में कठिनाई का अनुभव नहीं करता है और उनके विषय में सोचने को टाल सकता है।'

प्रश्नसूची की परिसीमाएँ:—(Limitations of Questionnaire):—

(१) वह व्यक्ति जो परखा जारहा है उन प्रश्नों को पूर्णतया समझ सकता है और उन उत्तरों को दे सकता है जिनके विषय में कि उसने सोचा है कि उसे अच्छे अङ्क मिलेंगे बनस्पत उनके जिन्हें कि वह सही समझता है। जब परखे जाने वाले व्यक्ति को यह ज्ञात हो जाता है कि यह प्रश्न-सूची अमुक गुण के लिये है तो वह दूसरों को या स्वयं को धोखा देने का प्रयत्न करता है। यद्यपि उस गुण या गुणों का नाम अधिकतर उससे गुप्त रखा जाता है जिसके लिये यह परख बनाई गई है जैसे—इन्वेन्टरी अथवा ए० एस० स्टडी की भाँति दूसरा नाम दे दिया जाता है, तथापि यह स्पष्ट है कि परख हल करने वाला (testee) परख के उद्देश्य को ज्ञात करने के लिये अपना अन्दाज लगाता है और प्रत्येक प्रश्न का उत्तर अपनी भावनाओं के अनुसार देता है और अपने अन्दर की उन बातों को प्रकट नहीं होने देता जिन्हें कि वह नहीं चाहता। इस प्रकार वही बात स्पष्ट होगी जिसे कि वह प्रकट करना चाहता है न कि जिसे हम जानना चाहते हैं।

(२) कभी कभी परख हल करने वाला व्यक्ति प्रश्न सूची के पदों के उत्तर किसी विशेष ढंग से देता है। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि उसके व्यक्तिगत व्यवस्थापन में किसी प्रकार की कमजोरी है वरन वह कभी-कभी शारीरिक आरोग्यता के कारण भी ऐसा करता है। इस प्रकार यदि वह आँल पोर्ट की ए० एस० रिएक्सन स्टडी के चर्च के विषय में पूछे गये प्रश्न का उत्तर 'सदैव'

१. Maller J. B.; 'Character Sketches', 1932; 'Personality Sketches', 1936, New York, Teachers College, Columbia University, Bureau of Publications.

कहकर देता है तो यह आवश्यक नहीं है कि वह प्रभुत्व सम्पन्न है। यह नितांत सम्भव है कि वह आगे वाली सीट पर इसलिये नहीं बैठता कि वह प्रभुत्व सम्पन्न है किन्तु इसलिये कि वह कम सुनता है। इस प्रकार की स्थितियों में प्रश्न-सूची गलत गुण प्रस्तुत करती है।

(३) अस्थाई चित्तवृत्तियों (Temporary mood)—आशाओं, चिन्ताओं आदि का भी परख सम्बन्धी प्रतिक्रियाओं पर प्रभाव होता है। परख परिस्थितियाँ उत्पन्न करने के लिये प्रयत्न करना जो कि स्वभाव सम्बन्धी प्रतिक्रियाओं के लिये प्राकृतिक उत्तेजना है, कभी कभी कठिन हो जाता है।

(४) प्रश्न-सूची की प्रयोग सिद्ध वैधता भी अत्यधिक विवाद का विषय रहा है। प्रश्न-सूची की प्रयोग सिद्ध वैधता ज्ञात करने के लिये मनोवैज्ञानिक प्रश्न सूची के अङ्कों का उस गुण के अन्य प्रमाणों के साथ सह सम्बन्ध स्थापित करते हैं। इलिस (Ellis) का अध्ययन यह बताता है कि प्रश्न-सूची का वैधता गुणक · के लगभग होता है। यह वैधता गुणक व्यक्ति के विषय में भविष्यवाणी करने के लिये बहुत कम है।

अन्त में यह परिणाम निकाला जा सकता है कि अत्यधिक कमजोरियाँ होते हुए भी प्रश्न-सूची को पूर्णतया छोड़ा नहीं जा सकता है। ठीक से निर्मित तथा प्रेरणात्मक परिस्थितियों में दी गई प्रश्न सूचियाँ प्रयोगात्मक अनुसन्धान तथा शयनिक (clinical) अथवा अन्य सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक कार्य दोनों के लिये अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

(४) **प्रक्षेपी विधि** (Projective technique):—कुछ व्यक्ति कहते हैं कि प्रक्षेपी विधियाँ फ्राइडियन सिद्धान्त 'प्रोजेक्शन' की उपज हैं। जब हमारे आत्म सम्मान के भाव को किसी अग्राह्य भाव के कारण ठेस पहुँचती है और हम उसके प्रत्युत्तर में कोई कार्य कर डालते हैं तो उस समय हम अपना दोष दूसरे के ऊपर मढ़ देते हैं और कहते हैं कि उसीने ऐसा किया था इसलिये मुझे ऐसा करना पड़ा। हमारे आत्म सम्मान के भाव की रक्षा दो प्रकार से होती है। पहला यह कि हम अपने अपराध को किसी दूसरे पर स्थानान्तरित कर देते हैं। हमें इस बात का पूर्ण विश्वास हो जाता है कि सभी अपराध हमारे साथी का है और इस प्रकार हम अपराध की भावना से पूर्णतः छुटकारा पा लेते हैं। प्रक्षेप (Projection) के उदाहरण अनेकों हैं। कभी हम जब किसी कार्य को करने में असफल हो जाते हैं तो काम करने के औजारों को दोष देने लगते हैं। इस प्रकार यह बच्चों में सामान्यतः पाया जाता है। जब उनसे कहा जाता है तुमने हमारी किताब पर क्यों लिखा तो जबाब होता है—मैंने नहीं

कलम ने लिखा है। इसी प्रकार जब हम पूंछते हैं इतना खराब काम क्यों किया है, तो कहते हैं मेज बहुत ऊँची थी। कभी-कभी हम अनिश्चित रूप से अपने विरोध के विषय में जानकारी रखते हैं किन्तु दूसरे के विरोध पर हमें विश्वास होता है अतः हम अपने अर्द्ध चेतन मन में अपने अपराध को बड़ा नहीं समझते हैं परन्तु दूसरे के अपराध को बड़ा समझते हैं। इसके द्वारा हमें अपने अपराध के लिये शान्ति मिलती है। कई परखों में से कुछ जो कि इस शीर्षक के अन्तर्गत रखे जाते हैं, फ्राइडियन प्रक्षेप (Freudian Projection) का ज्ञान कराते हैं बल्कि यों कहना चाहिये कि वे एक ऐसा साधन उपलब्ध करते हैं जिसके द्वारा परखा जाने वाला व्यक्ति अपने व्यक्तित्य की बनावट की व्याख्या करता है।

फ्रेन्क[१] ने कहा है कि प्रक्षेपी विधि एक ओर तो स्वतन्त्र साहचर्य और स्वप्न सम्बन्धी विश्लेषण के मनोविश्लेषणात्मक प्रविधियों (Psychoanalytic technique) के संयोग से निकली है और दूसरी ओर अवयवीवाद (Gestalt psychology) के संयोग से निकली है। स्वप्न तो अर्द्धचेतन मन के लिये शाही सड़क है; और लेखकों तथा कलाकारों का सृजनात्मक उत्पादन (Creative production) मनोविश्लेषण कर्त्ताओं के लिये एक ऐसी चीज है जिससे वे उन लेखकों या कलाकारों में छिपे हुए व्यक्तित्व के झुकावों तथा संघर्षों को प्रकट कर सकें।

ऐसी अनेक प्रक्षेपी विधियाँ हैं जोकि आजकल प्रयुक्त होती हैं किन्तु हमें उनमें से कुछ जो कि ठीक प्रकार से व्यवहार में काम आती हैं उन पर विचार करना चाहिये।

स्वतन्त्र शब्द साहचर्य (Free Word Association)—यह प्रविधि गाल्टन (Galton) के द्वारा सन् १८७६ में विकसित की गई थी। आजकल यह अधिक प्रयोग में नहीं लाई जाती है। इस प्रविधि में सामान्यतः ५० से १०० उत्तेजक शब्दों (Stimulus words) की सूची परखकर्त्ता के द्वारा पढ़ी जाती है; प्रत्येक शब्द के लिये पात्र (Testee) अपने मस्तिष्क में आये हुए प्रथम शब्द को उत्तर के रूप में बोलता है। अनेक साहचर्य, वाह्य मौखिक आदतें, विलोम, कवितायें आदि के रूप में होते हैं जैसे—काला-सफेद, माँ-बाप आदि। ये हमें किसी गुण का पता लगाने में शायद ही कोई सहायता करते हों किन्तु कुछ उत्तेजनायें (Stumuli) संवेगात्मक भावना ग्रन्थियों (Complexes) को

१. Frank, L. K. : 'Projective Methods for the Study of Personality', J. Psychol., 1938, 8, 389-413.

जान सकती हैं और हमें व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं की ओर लेजा सकती हैं। मनोवैज्ञानिक व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं की व्याख्या द्वारा उसके व्यक्तित्व के गुण का पता लगाने में समर्थ हो जाते हैं। परखकर्त्ता उत्तर देने वालों की प्रतिक्रियाओं का वर्गीकरण करता है। इस सम्बन्ध में वैल्स तथा मर्फी [1] ने बताया है कि विभिन्न परख कर्त्ताओं द्वारा जब ये प्रतिक्रियाऐं वर्गीकृत की जाती हैं तो उनमें विचारणीय कमियाँ रह जाती हैं और पात्र के व्यक्तित्व के सही गुणों में तथा परख द्वारा प्राप्त गुणों में निम्न सह-सम्बन्ध प्राप्त होता है।

प्रैसी क्रौस आउट टैस्ट[2] (Pressey Cross-out test):—यह परख एस० एल० प्रेसी (S. L. pressey) द्वारा सन् १९१९ में तैयार की गई थीं जो कि किसी विशेष गुण की परीक्षा न करके संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं को जगाने वाली उत्तेजनाओं को प्रगट करती है। इसके दो फार्म होते हैं— 'ए' फ़ार्म (Form 'A) युवकों के लिये तथा 'बी' फार्म (Form B) बालकों के लिये। 'ए' फार्म में चार उप-परख (Sub-test) होती हैं जिनमें से प्रत्येक में पाँच पाँच शब्दों की २५ पंक्तियाँ होती हैं। पहली उप-परख में पात्र (testee) उन सभी शब्दों को काटता है जो उसके लिये अप्रिय होते हैं और हर पंक्ति में उन शब्दों पर वृत खींच देता है जो उसके लिये सर्वाधिक अप्रिय होते हैं। दूसरी उप-परख में प्रत्येक पाँच शब्दों के समूह के पश्चात् एक शब्द बड़े अक्षरों (capitals) में लिखा होता है। इस उत्तेजना या उद्दीपक के सहचर शब्दों को पात्र काटता है और जो शब्द अधिक समीप के सहचर होते हैं उन्हें वृत्त द्वारा बन्द कर देता है। तीसरी में जो वस्तुएँ अशुद्ध समझी जाती हैं उन्हें काट देता है और सबसे अशुद्ध में वृत्त बना देता है। चौथी में वे वस्तुएँ काटी जाती हैं जिनसे वह चिन्तित या अधीर होता है। 'बी' फार्म में इसी प्रकार की तीन उप-परखें होती हैं। ये परखें क्रमशः अशुद्धि, चिंता तथा पसन्द अथवा रुचि सम्बन्धी प्रतिक्रियाओं के लिये होती हैं। प्रेसी ने संवेगात्मक साहचर्य (emotional Association) में उत्तेजना (Affectivity)

---

१. Wells, F. L. : 'Association type and Personality; psychol. Rev., 1919, 26, 371. Murphy, G., 'Types of word Association in Dementia Praecox, Manic-Depressives, and Normal Persons : Amer. J. Psychiat, 1223, 2, 539-571.

२. Pressey, S. L. : 'A Group Scale for Investigating the Emotions'; J. Abn. Soc. Psychol. 1921. 16, 55-64, Test Published by Stoelting, Chicago, 1919.

अथवा 'सम्पन्नता' (Richness) के मापन के लिये काटे हुए कुल शब्दों के योग को लिया है।

अपूर्ण वाक्य-परख—स्वतन्त्र शब्द साहचर्य की परिसीमाओं में से एक यह है कि एक ही शब्द से विश्लेषण के लिये बहुत कम सामग्री मिल पाती है। ए० एफ० पैनी (A. F. Payne) ने सन्. १९२८ में 'वाक्य पूरक-परख' (Sentence completion test) बनाई थी जो कि उक्तलिखित कमी को पूरा करती है। इस परख में कुछ छोटे अपूर्ण वाक्यांश एक छपे हुए फार्म में प्रस्तुत किये जाते हैं। उदाहरणार्थ—

My Brother...........

Home is............... आदि।

पात्र से कहा जाता है कि वह इन वाक्यांशों को सर्वप्रथम ध्यान में आये हुए कुछ शब्दों के द्वारा भरे। यह परख बहुत कुछ संवेगात्मक सामग्री प्रस्तुत करती है। यह परख-समूह-परीक्षा के लिये प्रयुक्त हो सकती है।

सर्वाधिक प्रसिद्ध विस्तृत प्रविधियों में से **'थीमैटिक एपरसेप्शन टेस्ट'** (Thematic Apperception Test) तथा **'रौशा इन्क ब्लॉट टेकनीक'** (Rorschach Ink Blot Technique) हैं।

थीमैटिक एपरसैप्शन टैस्ट—यह परख मॉर्गन (Morgan) तथा मरे (Murray)[1] द्वारा बनाई गई थी। इसमें परखे जाने वाले व्यक्ति को एक चित्र दिखाया जाता है। उदाहरणार्थ एक वृद्ध मनुष्य एक चौंकी हुई जवान स्त्री का हाथ पकड़े हुए है। उससे कह दिया जाता है कि यह कल्पना की उपज की परीक्षा है। उस चित्र के ऊपर एक कहानी रचने को उससे कहा जाता है। यह कहानी उस व्यक्ति की आशाओं (hopes), शंकाओं (fears) तथा आवश्यकताओं (needs) के विषय में बताती है। इस प्रकार के चित्रों का विशेष वर्ग किशोरों (१९ वर्ष वालों) के लिये तथा एक छोटे बच्चों के लिये है। बच्चों के 'एपरसैप्शन टेस्ट' के चित्रों में से एक में जानवरों का पर्याप्त प्रयोग किया गया है। ऐसा इस विचार से किया गया है कि बच्चे

---

१. Morgan, C. D., and Murray, M. A.; 'Method for Investigating Fantasies: The Thematic Apperception test'; Arch. Neurol and Psychiat., 1935, 34,289—306. Test Published by Harvard University press, 1943.

अपनी आवश्यकताओं तथा शंकाओं का जानवरों में अधिक अच्छी तरह से प्रक्षेप कर सकते हैं। जहाँ तक प्रमाणों का मत है, जानवरों का प्रयोग बालकों के ज्ञान में बहुत कम योग देता है और इस प्रकार प्राथमिक स्कूल के बच्चे इन परखों में अन्य प्रमापीकृत परखों से भिन्न प्रतिक्रिया नहीं देते।

मौर्गन तथा मरे ने ३० चित्रों का एक समूह संग्रहीत किया है जिनमें १० स्त्रियों के लिये १० पुरुषों के लिये तथा १० दोनों के लिये है। ये चित्र उसी प्रकार प्रयुक्त होते हैं जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया हैं। पात्र को चित्रों को दिखाने तथा इनके विषय में प्रतिक्रियाएँ प्राप्त करने म एक घन्टे से अधिक समय नहीं लगता हैं। चाहे वह व्यक्ति उन सभी चित्रों के विषय में प्रतिक्रिया नहीं कर पाता हो फिर भी समय की सीमा एक घन्टे से अधिक नहीं बढ़ती है। एक अन्य साक्षात्कार किया जा सकता है जिसे कि उन चित्रों के सम्बन्ध में वाद-विवाद में तथा उस व्यक्ति से उनकी व्याख्या में मदद लेने में लगाया जा सकता है।

सामान्यतः १० चित्रों का एक सेट (Set) प्रयुक्त होता है। इनमें से प्रत्येक के लिए यह आवश्यक है कि वह पात्र को ठीक प्रकार से चित्रित करता हो और वह उसी लिंग और लगभग उसी आयु का हो या उससे छोटा या बड़ा हो जिससे कि वह ठीक प्रकार से अपने आपको चित्र में पहचान (Indentify) सके और अपनी आवश्यकताओं और मनोभावों का, निराशाओं तथा संघर्षों को प्रक्षेप कर सके। यह परख एक समूह परख के रूप में भी प्रत्युक्त हो सकती है जिसमें कि चित्रों को कुछ मिनटों के लिये स्लाइडस के द्वारा दिखाया जाता है और प्रत्येक व्यक्ति को उन चित्रों के बारे में एक कहानी रचने के लिये कहा जाता है।

थीमैटिक एपरसैप्शन टैस्ट के रुचिपूर्ण महाद्वीपीय अनुवाद हैं। इनमें 'वान लेनेप' (Van Lennep) की 'चार-चित्र-परख' (Van Lennep's '4—Picture test), जेक्शन[१] का छः चित्रों का सेट (Jeckson's Set of 6

---

१. Jackson, L. : 'Emotional Attitude towards the family of Normal, Neorotic, and Delinquenk Children', Brit.

J. Psychol., 1950, 41, 35-51, 173-185, Test published by Methuen, London, 1952.

Pictures), पारवारिक अभिवृत्तियों का टेस्ट (A test of family Attitudes) जो इंग्लैन्ड में बच्चों के लिये अधिक उपयुक्त रिखाई देते हैं, आदि हैं। भारतवर्ष में उनकी अनुकूलता देखकर उनका प्रयोग किया जा सकता है। व्यूरो आफ साइकालॉजी, इलाहाबाद ने भी एक ऐसा ही सैट (set) भारतीय बच्चों के लिये बनाया है।

थीमेटिक एपूरसैप्सन टेस्ट की व्याख्या मनोवैज्ञानिकों की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि के आधार पर भिन्न होती है। मरे के अनुसार व्यक्ति की आवश्यकताए तथा दबाब (वाह्य वल जिसे कि व्यक्ति लाभदायक अथवा हानिकारक समझता है) इस कहानी रचना में बहुत ही महत्वपूर्ण भाग लेते हैं।

साइमन्ड्स (Symonds) का कहना है कि कहानियाँ उन दबी हुई प्रेरणाओं को व्यक्त करती है जो कि विकृत व्यक्तित्व (Overt personality) के गुणों के बहुत कुछ विपरीत होती हैं। बर्ट (Burt) तथा सैन (Sen) अपने अप्रकाशित लेख में कहते हैं कि यह विधि उन अनेकों विशेषताओं का मापन करती हैं जैसे—प्रबन्ध का स्तर, विस्तृत पर्यवेक्षण, मौखिक सम्पन्नता, कल्पना, मुख्य उद्देश्यों के अन्तमुंखी एवं बहिर्मुखी तत्व, प्रौढ़ता, बचपन तथा स्नायुरोग की शक्ति आदि।

थीमैटिक एपरसेप्शन टेस्ट को यदि रौशाटेकनीक आदि परखों के साथ प्रयोग करें तो वह मानसिक अस्पतालों के लिये अधिक लाभदायक सिद्ध हो हो सकते हैं। इस बात के प्रमाण हैं कि विभिन्न परखकर्त्ताओं की उसी सामग्री की व्याख्याए बहुत कुछ समान हैं।

रौशा इन्क ब्लौट टेस्ट (Rorschach Ink Blot test)[१]:—सबसे अच्छी तरह बनी हुई प्रक्षेपी प्रबिधि जो कि संरचना रहित (unstructured) परिस्थितियों को अधिक व्यवहार में लाती है वह रौशा इन्क ब्लौट टेस्ट है। यह शिक्षकों से अधिक चिकित्सकों के लिए लाभदायक है। रौशा टेकनीक एक स्विस मानसिक चिकित्सक रौशा के द्वारा सर्वप्रथम बनाई गई थी और उसी के नाम पर इसका भी नाम रखा गया था। इसमें १० कार्डों की एक श्रेणी होती है जिनमें से हर एक में एक स्याही का धब्बा होता है जो काले, सफेद अथवा अन्य रंगों के योग के साथ होते हैं। ये धब्बे स्वयं सर्वप्रथम हरमन

१. Rorschach, H. : Psychodiagnostics; New York, Grune and stratton, 1942, pp. 226.

रौशा (Harmann Rorschach) के द्वारा हजारों धब्बों में से जिनका उसने परीक्षण किया था चुने गये थे। इन धब्बों की श्रेणी का महत्व न केवल इस सत्य के कारण है कि वे उच्चकोटि के वाद-विवादों पर आधारित होकर चुने गये हैं वरन ये धब्बे एक निश्चित श्रेणी बनाने के लिये ही चुने गये हैं। इन कार्डों का प्रयोग एक ही श्रेणी या क्रम में हो सकता है। कार्ड संख्या २ कार्ड संख्या १ के बाद ही आ सकती है इसके विपरीत नहीं।

रौशा के प्रधान अनुसंधानों (discoveries) में से एक यह था कि विषय सूची (content) से स्वरूप (Feature) व्यक्ति की यह व्याख्या करने के लिए कि वह धब्बे में क्या देखता है, अधिक महत्वपूर्ण है। रौशा के पहले के मनोवैज्ञानिकों ने स्याही के धब्बों में व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं की विस्तृत व्याख्या की है किन्तु बल केवल इसी पर था कि वे उनमें 'क्या' देखते हैं। रौशा ने इस बात का अनुभव किया कि प्रतिक्रिया के सर्वाधिक महत्वपूर्ण अङ्ग की खोज, विषय सूची के अतिरिक्त तत्वों (factors) के अध्ययन पर होनी चाहिये।

रौशा के टेस्ट का प्रयोग बहुत साधारण है। इसमें धब्बे (कुछ काले-भूरे-सफेद कुछ रंगीन) अदल-बदल कर दिखाये जाते हैं और परखे जाने वाले व्यक्ति से कहा जाता है कि वह जो कुछ उनमें से प्रत्येक में से देखता है उससे हृदय में क्या विचार उठते हैं, बताये। उसको उतने सहचर (Associations) प्रस्तुत करने के लिये जितने कि सम्भव हों और उन कार्डों को घुमाने के लिये यदि वह चाहता हैं तो, उत्साहित किया जाता है। श्रेणी (series) को पूरा करने के पश्चात् प्रतिक्रियाओं पर वाद-विवाद किया जाता है ताकि यह ज्ञात हो सके कि वे ही प्रतिक्रियाएँ (responses) क्यों हुईं और धब्बे के किस अङ्ग को वे संकेत करती हैं।

रौशा ने, जिसको वह बहुत महत्वपूर्ण अङ्ग समझते थे उसके आधार पर प्रतिक्रियाओं का वर्गीकरण करने का ढङ्ग निकाला। रौशा के ढंग में जो सबसे विशेष बात थी वह यह कि उसमें प्रत्येक प्रतिक्रिया का दुहरा वर्गीकरण किया जाता है—एक तो उसकी 'स्थिति' (Location) के आधार पर और एक प्रतिक्रिया के प्रत्यक्ष निश्चयों (apparent determinants) पर। स्थिति से अभिप्राय है कि क्या धब्बे के द्वारा किसी वस्तु का पूर्ण प्रतिनिधित्व हुआ है या उस वस्तु की छोटी-छोटी बातों को विस्तार में बताया गया है। प्रतिक्रिया के निश्चय से अभिप्राय है कि निश्चय उस धब्बे की आकृति (form) का है, उसके रंग का है, उसकी छाया (shade) का है, उसकी चल-शक्ति (Movement) (क्योंकि जब व्यक्ति कहता है कि वह एक दौड़ता हुआ कुत्ता देखता

है) का है अथवा उस धब्बे के किसी अन्य अङ्ग (aspect) का है । विषय सूची (content) के कुछ वर्ग इस सूचना की व्याख्या पर विशेष बल देते हैं जैसे कि मानव अथवा जानवरों के अर्थ के विषयों पर। वर्तमान काल में रिकार्डिंग के तरीके भी प्रयोग में लाए जाते हैं। ⁶

उपर्युक्त बातों को निम्नलिखित प्रकार से सारांश के तौर पर बताया जा सकता है।

प्रत्येक प्रतिक्रिया की गणना तीन शीर्षकों में की जा सकती है :—

१ **रसानुभूति का ढंग** (Mode of appreciation):—इसके लिये विभिन्न चिन्ह होते हैं। सम्पूर्ण धब्बा 'डबल्यू' (W) से, एक साधारण व्याख्या 'डी' (D) से, असामान्य व्याख्या 'डी० डी०' (Dd.) से अथवा धब्बे में सफेद छोड़ी जगह पर आधारित को 'डी० एस०' (Ds.) से बताते हैं।

(२) **निश्चयात्मक** (Determinant):—ढाँचा (Form) अथवा आकृति (shape) (F+ अथवा –) से, रंग 'सी' (C) से, छाया (shading) अथवा काइरोस्क्यूरो (Chioroscuro) 'के' (K) से, एक प्रतिक्रिया जो चलायमान है 'एम' (M) से प्रदर्शित किये जाते हैं। रंगों एव हिलने डुलने की प्रतिक्रियाओं के सम्बन्धित भाग एर्लीबिनश्टाइपस अथवा अनुभव स्तर, एक्सट्रेटेन्सिव (Extratensive) जिसे कि हम रंगों की अधिकता कहते हैं, इन्ट्रोवर्सिव (Introversive) जिसे हम हिलने डुलने की अधिकता कहते हैं बताते हैं।

(३) **विषय-सूची** (Contents) :—मूल विषय सूची (original (content) को (O+or—) द्वारा सूचित किया जाता है। साधारण प्रतिक्रिया (common response) को (P) द्वारा, मनुष्य (Human) को (H) द्वारा, जानवर को (A) द्वारा सूचित किया जाता है। इसी प्रकार कई और संकेत भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाओं के लिये बनाए गए हैं।

तीस प्रतिक्रियाओं के सामान्य प्रस्तुतीकरण में पूरी परख लगभग आधे घन्टे से भी कम समय लेती है किन्तु प्रतिक्रियाओं के प्रकार अत्यधिक प्रकार के हो जाते हैं। कुछ रोगी तो इतने समय में १० से भी कम प्रतिक्रियाएं करते हैं और कुछ सैकड़ों तक पहुँचा देते हैं। इस प्रकार गणना और व्याख्या में कई घंटे लग जाते हैं।

दुर्भाग्यवश रौशा अपने कार्य की प्रशंसा को, जो कि विश्व ने मनोवैज्ञानिक मापन में एक विशाल कार्य के रूप में की, देखने के लिये अधिक दिन तक जीवित नहीं रह सके किन्तु आजकल प्रयोग में लाई जाने वाली रौशा टेकनीक के, जो कि अनेक उत्तम विचारों पर आधारित हैं, उत्पादन के लिये पूरा श्रेय उन्हीं को दिया जाना चाहिये। रौशा के पश्चात् उसी क्रम में कार्य करने वाले

बेक (Beck), हर्ट्ज़ (Hertz), क्लोफ़र (Klopfer) तथा अन्य विद्वानों को इस टेकनीक में संशोधन करने वालों के रूप में अवश्य मानना चाहिये न कि किसी नवीन पद्धति के जन्मदाता के रूप में।

यह इस पुस्तक के क्षेत्र के विल्कुल बाहर की वस्तुहै कि यहाँ उन सभी ढंगों (procedures) का सारांश दें जो कि एक व्यक्ति की धब्बों की प्रतिक्रियाओं की सूचना की व्याख्या के लिये प्रयुक्त होते हैं।

रौशा टेकनीक की वैधता (validity) तथा विश्वस्तता (reliability) का पता लगाना तो कठिन कार्य है क्योंकि रौशा का कथन है कि इस विधि में किसी भी अकेले अंक (Score) को अलग रखकर व्याख्या नहीं की जासकती। यदि यह संभव होता कि एक ही गणना की व्याख्या अर्थपूर्ण रीति से बिना किसी दूसरी गणना का सहारा लिए ही की जा सकती तो वैधता की समस्या अपेक्षाकृत अधिक सरल वन जाती।

वैधता ज्ञात करने हेतु हमें इस विधि द्वारा प्राप्ताङ्कों (जैसे चलायमान प्रतिक्रियाओं, रंगों का बताना आदि) की तुलना उस वास्तविक व्यवहार के अङ्कों से करनी होगी जिस व्यवहार का अध्ययन करने हेतु इस विधि का प्रयोग किया जाता है। चूँकि वास्तविक व्यवहार के अङ्क प्राप्त होना दुर्लभ है इसलिये अन्य परखों की परिस्थितियों द्वारा प्राप्त व्यवहार के अङ्कों से इन अङ्कों की तुलना की जाती है।

रौशा टेकनीक एक दक्ष परखकर्त्ता को वास्तव में मानसिक रोगियों के निदान (diagnosis) करने में सहायता कर सकती है। वह सामान्य व्यक्तियों (normal persons) के विषय में अपनी वैध विचारधारा प्रस्तुत करने में कुछ कम योग्य दृष्टिगोचर होती है।

कुछ और विषयिक प्रविधियाँ हैं जो यद्यपि अधिक प्रयुक्त नहीं होती हैं फिर भी व्यक्ति के व्यवस्थापन के विषय में पर्याप्त प्रमाण देती हैं। उनका एक संक्षिप्त वर्णन यहाँ किया जा रहा है—•

(अ) **आत्मवर्णन** (Self-Description) :— यहाँ पात्र (testee) से अपने विषय में २ संक्षिप्त वर्णन लिखने को कहा जाता है। जिनमें से पहला तो उसके किसी अच्छे मित्र के द्वारा उसके लिये हो सकता हो और दूसरा एक निष्पक्ष आलोचक के द्वारा हो सकता हो। इन वर्णनों की व्याख्या उस सामग्री के संसर्ग मेंजो कि साक्षात्कार के समय और अन्य विषयक परख प्रतिक्रियाओं द्वाराएकत्रित की गई है, मनोवैज्ञानिक अथवा मानसिक चिकित्सक द्वारा की जाती है।

(ब) **साहित्यिक कार्य** (Literary Production) :—यह स्वत. सिद्ध है

कि उत्पादक, लेखक, चित्रकार, संगीतकार, वैज्ञानिक अथवा दार्शनिक अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति अपने कार्यों की सूची और रीति से करते हैं। मनोवैज्ञानिक इन कार्यों की व्याख्या व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रकट करने के लिये करता है किन्तु ये व्याख्याएँ वैषयिक (objective) नहीं होती हैं।

(स) **रसिकता की परखें** (Sense of Humour tests) :—हँसोड़े (comic) के लिए की गई हमारी प्रशंसा में प्रक्षेप (projection) की कला अवश्य प्रवेश करती है और कुछ प्रयत्न इस प्रकार के किये भी गये हैं जिनमें कि प्रशंसित उपहासों के प्रकारों पर व्यक्तित्व की परख को आधारित किया गया है। आइजेंक (Eysenck) ने यह ज्ञात किया था कि जब मनुष्य मजाकों अथवा अन्य रसिक सामग्री को अपनी इच्छानुसार क्रमित करते हैं तो उनमें बहुत कम समानता पाई जाती है। कुछ मनुष्य अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कामुक (Sexual) मजाकों को अधिक महत्व देते हैं जबकि दूसरे चतुराई और चालाकी की रसिकताओं को।

सामान्यतः प्रक्षेपी परख अनिपुण व्यक्तियों को प्रयोग में नहीं लानी चाहिये। इसका प्रयोग बहुत ही सावधानी से करना चाहिये। इसकी गणना कठिन होती है तथा व्याख्या अत्यधिक जटिल।

व्यक्तित्व की स्थिरता

क्या व्यक्तित्व या सामाजिक अभिवृत्तियाँ (Sociaattitudes) हमारे साथ सम्बन्धित रूप से बिना बदले हीं रहती हैं अथवा व्यतीत होते हुए वर्षों के साथ साथ वे घटती बढ़ती रहती हैं। यह एक मूल प्रश्न है जिसका हमें उत्तर जान लेना चाहिये। यदि व्यक्तित्व दिन प्रतिदिन स्थिति के अनुसार अधिक घटता बढ़ता रहता है तो इसके अध्ययन की कोई अधिक आवश्यकता नहीं है। उस हालत में हमें व्यक्ति के अध्ययन के बजाय उन स्थितियों का अध्ययन करना चाहिये जिन पर कि व्यक्तिगत प्रतिक्रियाएँ आधारित रहती हैं।

अपने साधारण अनुभवों के आधार पर हम लोग अधिकतर यह मान लेते हैं कि व्यक्तित्व अधिकता से घटता बढ़ता नहीं है। अपने साधारण निरीक्षण से हम अनुभव करते हैं किव्यक्ति का व्यक्तित्व कुछ सीमा तक स्थिर रहता है। विभिन्न लोगों की विभिन्न स्थितियों में की गई प्रतिक्रियाओं से उनके भविष्य के बारे में हम सीमित रूप से पहले ही कह सकते हैं। हम कहते हैं कि "यह उद्देश्य किशोर ने पसंद किया होता" अथवा "हरी ने इस दृष्य की अवश्य प्रशंसा की होती"। इसी प्रकार हम कल्पना कर सकते हैं कि कैसे दूसरे व्यक्तियों को दूसरी स्थिति में आघात लगता, व्याकुलता होती अथवा व्यग्रता बढ़ती है। यह सही है कि हम कुछ अवसरों पर अपनी भविष्यवाणियों को पूरा होते नहीं

पाते । हो सकता है कि एक शर्मीला बालक एक उत्साहपूर्ण वाद-विवाद प्रतियोगिता में उस बालक की अपेक्षा जिस पर कि लोगों की आशायें थीं, अधिक अच्छा बोल सकता है । परन्तु अधिकांश ऐसा नहीं होता । ऐसे कुछ अध्ययन के प्रमाण हैं जिनसे कि वह बात और दृढ़ हो जाती है कि व्यक्तित्व अधिकता से घटता बढ़ता नहीं । मैक किनन [1] के द्वारा इस प्रकार का एक ऐसा रुचिपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया गया है जो कि नर्सरी स्कूलों के स्तर का है ।

इस अध्ययन में सोलह नर्सरी स्कूलों के बच्चों का निरीक्षण किया गया था और प्रत्येक बच्चे की मुख्य विशेषता निश्चित की गई थी । चार मुख्य विशेषताएँ प्रयुक्त हुई थीं जिनके नाम हैं—अनुरूपता (conformity), सावधानी (caution), शान्ति भंग (Aggression) तथा वापसी (with drawal) । पाँच या छः वर्ष पश्चात् इसी ग्रुप का फिर से वर्गीकरण किया गया । उस समय भी सोलह में से दस बच्चे अपने मौलिक (original) वर्ग में ही आ पाये । इन परिणामों से व्यक्तित्व की स्थिरता की बात बहुत कुछ हद तक पक्की हो जाती है और वह भी नर्सरी स्कूल पर ।

एक अन्य खोज भी है । जिसमें एक माँ [2] की डायरी में अपने छः बच्चों की बचपन के व्यक्तित्व की बातें लिखी थी । जब वे बच्चे प्रौढ़ होगये तो देखा गया कि उनके व्यक्तित्व में कोई परिवर्तन नहीं होता ।

इस विवाद से यह स्पष्ट होगया कि व्यक्तित्व एक व्यक्ति की विशेषता है और वह केवल क्षणिक स्थिति का परिणाम नहीं जिसमें कि वह अपने आप को पाता है ।

व्यक्तित्व के विकास के लिए कुछ सुझाव (Some suggestions for the development of personality):—इन पृष्ठों के पढ़ने के पश्चात् अब हम यह स्वीकार कर सकते हैं कि व्यक्तित्व स्वभाव, दक्षता, रुचि, योग्यता, संवेग तथा अवबोध का एक संयोग है । इन बातों का संयोग एक बहुत बड़ी बात है । अब हम उन अनेक गुणों का विवेचन करेंगे जो कि व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं ।

---

१. Mc Kinnon, Kathern M. : Consistency and change in Behaviour Manifestations; Child Development Monograph, 1942. 30.

२. Smith, Madorah, E. A., : "A Comparision of certain personality traits as rated in the same individuals in childhood and fifty years later'; Child Development. 1952, 23, 159-180.

(१) **क्या सामाजिक विचारों के (Social minded) बालक में हमें ध्यान देना चाहिए ?**—यह हो सकता है कि आप उस बालक के साथ जो कि दूसरों के साथ ही रहना चाहता है, उस समस्या का हल ढूंढ़ रहे हों जो कि उसको उसके व्यक्तिगत स्कूल-कार्य पर लगाने के सम्बन्ध में है। जब तक आप उसको उसके स्तर के अनुसार कार्य करा सकने में समर्थ होते हैं, उसकी सामाजिक प्रवृत्तियों का अवदमन करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये।

(२) **हम बालक को एकान्तवासी (Withdrawn) होने से रोकने के के लिये क्या कर सकते हैं ?**—शर्मीले बालक सामाजिकता की दिशा में जाने की अपेक्षा स्वयं में केन्द्रित होने की ओर अधिक ध्यान देते हैं। यह बात आप उसकी उन प्रवृत्तियों में पा सकते हैं जिनमें कि वह अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अपने में केन्द्रित होने को प्रमुखता देता है। यह सब उसकी सामाजिक स्वभाव की अपेक्षा पुस्तकीय स्वभाव के कारण तथा अपने आपको सामूहिक क्रियाओं से दूर रखने की प्रवृत्ति के कारण होता है। ऐक अन्तर्मुखी बालक को बहिर्मुखी बालक के रूप में बदलना संदेहपूर्ण है और शायद ऐसा करने का प्रयत्न करना अनुपयुक्त भी है। कुछ भी सही बच्चों को एकान्तवासी बनने से रोकने के लिये आवश्यक है कि यह देखा जाय कि उसे अपनी आयु तथा योग्यताओं में समान बालकों के साथ रहने का कितना अवसर मिलता है।

(३) **दैन्य (Submissiveness) होने के क्या कारण होते हैं ?**:—खोजों से यह ज्ञात किया गया है कि दैन्य होने के ये कारण होते हैं— १. शारीरिक दोष २. दूसरे व्यक्तियों से प्रतिकूल तुलना ३. घर के झगड़े ४. दूसरों के द्वारा मजाक उड़ाना, ५. यौनि सम्बन्ध में अपराध का अनुभव ६. कार्य करना सीखने के लिये अवसर का अभाव तथा माँ बाप का कठोर अनुशासन।

(४) **प्रभुत्व (Dominance) के क्या कारण होते हैं ?** :—प्रभुत्व के कारणों में अन्वेषकों ने निम्नलिखित महत्व पूर्ण खोज की है—१. उत्तरदायित्वों को शीघ्र मान लेना २. माँ बाप का प्रशिक्षण ३. घर में अनुशासन का न होना ४. उच्चकोटि की मानसिक अथवा शारीरिक योग्यता तथा ५. खेलों में असामान्य दक्षता।

(५) **तुम क्या चाहते थे लड़का या लड़की ?**:—शायद यह सौभाग्य की बात है कि प्रकृति हमें इस बात का अधिकार नहीं देती कि हमें पुत्र पैदा होगा या पुत्री! कभी हम सोचते हैं कि नवशिशु एक लड़का होगा अथवा कभी सोचते हैं कि वह लड़की होगी। वास्तव में हममें अधिकांश जो कुछ प्राप्त होता है उसी से प्रसन्न होते हैं। कभी-कभी किसी प्रकार हमें शिशु के लिंग पर असन्तोष भी होता है। अतः हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये

कि एक अभिवृत्ति (attitude) कभी कभी अनजाने में हमारे अन्दर विकसित हो जाती है। यदि हम पुत्र की लालसा करते हैं और पुत्री उत्पन्न होती है तो हम उस नवशिशु को लड़कों के कपड़े पहना कर अपनी लालसा को पूरा करने का प्रयत्न करते हैं। पुत्री की लालसा होने पर यदि पुत्र पैदा होता है तो उस नवशिशु के लम्बे बाल रखना आरम्भ कर देते हैं। यदि कहीं उस बालक को (पुत्र को) यह मालूम हो जाय कि उसके माता-पिता पुत्री की लालसा करते हैं और अभाग्यवश उनको पुत्र मिला है तो उसके व्यक्तित्व में इसका गहरा प्रभाव पड़ेगा। 'नामों' का भी व्यक्तित्व में प्रभाव पड़ता है। लड़कों का नाम लड़कियों से मिलता हुआ न हो और लड़कियों का लड़कों से मिलता नाम नहीं होना चाहिये।

(६) **शिशु का क्या नाम होना चाहिये ?**—शिशु का नामकरण करना उतना आसान नहीं है जितना कि हम पहिले ही सोच लेते हैं। एक लड़की का लड़के जैसा नाम रखने के लिये अनेक बार सोचना आवश्यक है। यही नहीं लड़के का तो लड़की जैसा नाम रखना ही नहीं चाहिये। परन्तु हम यही कहेंगे कि शिशु के लिए नाम ऐसा छाँटो कि वह बाद में पसंद करे।

(७) **क्या बच्चों में हीनता की भावना** (Inferiority feelings) **होती हैं ?**—अनेक मनोवैज्ञानिकों का यह विचार है कि व्यवहार में प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर किसी में एक प्रकार की और किसी में दूसरे प्रकार की हीनता की भावना विद्यमान रहती है।

वह बालक जिसकी भावनाओं को बड़ी आसानी से आघात पहुँच जाता है, जो अपनी कमजोरियों को छिपाने के लिये युक्तिपूर्वक व्याख्याओं (Rationalization) का प्रयोग करता है अथवा जो अपनी त्रुटियों के प्रति इतना चेतन रहता है कि किसी बात में ठीक प्रकार से आनन्द की प्राप्ति नहीं कर पाता वह बालक अवश्य हीनता की भावनाओं से ग्रसित है। उसकी हीनता की भावनाओं को दूर करने का एक मात्र सर्वोत्तम साधन यह है कि बालक की समस्या के समाधान में उसकी इस प्रकार सहायता करनी चाहिये कि वह आत्मविश्वास (self confidence) की प्राप्ति कर सके।

(८) **बालक आत्मविश्वास** (self confidence) **किस प्रकार प्राप्त करता है ?** :—आत्मविश्वास परिपूर्ति (Accomplishment) की भावना के द्वारा आता है और उसी प्रकार जैसे अन्य आदतें बढ़ती हैं वह भी बढ़ता है। अधिकतर एक बालक के लिए यह अधिक महत्वपूर्ण होता है कि वह समस्या के समाधान से सन्तोष की व्यक्तिगत भावना का अनुभव करे बजाय इसके कि दूसरों को प्रशन्न कर संतोष करे।

इसके लिये इन सुझावों को ध्यान में रखिए :—(१) वे कार्य अथवा समस्याएँ जो बालक को पहले पहल दी जा रही हों इतनी आसान होनी चाहिये कि आपको विश्वास हो जाय कि बालक उनमें सफल हो जायगा। (२) इन प्रारम्भिक सफलताओं के पश्चात उसे ऐसी कुछ अधिक कठिन समस्यायें हल करने को दीजिए कि उनमें बालक को अधिक प्रयत्नों की आवश्यकता हो लेकिन वे भी इतनी कठिन नहीं होनी चाहिए कि बालक निरुत्साहित हो जाय। (३) समस्या कभी भी इतनी जटिल न हो कि बालक उसे कभी हल न कर सके।

सामाजिक स्थितियों में आत्मविश्वास का जहाँ तक प्रश्न है, एक बालक अन्य बालकों अथवा प्रौढ़ों से मिलने तथा उनसे अपनत्व (Friendliness) का भाव रखने में कुछ पीछे रह सकता है। ऐसी स्थिति में उसे अन्य लोगों से मिलने का अवसर प्रदान कीजिए। धीरे-धीरे वह पहिले एक के साथ और फ़िर दूसरों के साथ रहना सीख लेगा और फिर अन्त में वह लोगों के साथ रहना पसंद करने लगेगा।

(९) **क्या चिन्ता को व्यक्तित्व का एक गुण समझना चाहिए ?**:—चिन्ता व्यक्तित्व की विशेषता है जो कि बालक तथा प्रौढ़ दोनों में पाई जाती है। एक बालक कुछ विशेष अवसरों पर ही चिन्तित होता है जबकि दूसरा लगभग सभी बातों पर चिन्तित होना आरम्भ कर देता है। एक व्यक्ति को 'चिन्ता करने वाला" कहकर पुकारा जाता है और दूसरा बातों को आसानी से हल करता है। चूँकि चिन्ता के थोड़े बहुत अंश हर व्यक्ति में पाये जाते हैं, हम चिन्ता को न्यायोचित रूप से व्यक्तित्व का एक गुण मान लेते हैं।

(१०) **बच्चों को चिन्ताओं से छुटकारा कैसे दिलाया जाय ?**:—चिन्ता से मुक्त होने के लिए निम्नलिखित कुछ सुझाव हैं :—

१. उस समस्या की जिसके कारण कि आपको चिन्ता है परिभाषा करो। जब आप ऐसा करना आरम्भ कर देंगे तो आप देखेंगे कि वास्तव में आपके पास कोई समस्या नहीं है।

२. यदि आपके सामने एक सही समस्या है तो आप उसके तथ्यों को लो और समस्या पर विचार करने के लिये एक समय निर्धारित करो।

३. बड़ी समस्याओं के लिए उन व्यक्तियों से राय लो जिनमें कि आपका विश्वास है।

४. प्राप्त तथ्यों के आधार पर जो आपने चिन्ता के कारण निश्चित किये थे उनके लिए कुछ क्रियात्मक कार्य करो।

(११) **बालक में चारित्रिक गुणों के विकास में गृह का क्या कार्य होता है?**:- वास्तव में सभी चरित्र सम्बन्धी प्रयोग इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि गृह का चरित्र के विकास पर सर्वप्रथम प्रभाव होता है। यद्यपि गिरजाघर, विद्यालय, बालचर समूह तथा अन्य संगठन भी चारित्रिक विकास में सहायक होते हैं किन्तु वे तभी जबकि गृह का वातावरण ईमानदारी, सत्यता, स्पष्ट वादिता तथा आत्माधिकार के विकास को बढ़ाने वाला हो। चरित्र का विकास अप्रत्यक्ष रूप से होता है और अनुभवों की एक निरन्तर माला के द्वारा वह सही दिशा में मुड़ता है। बालक उतने ही ईमानदार तथा सच्चे बन जाते हैं जितने कि वे व्यक्ति हैं जिनके अधिकतर वे साथ रहते हैं। यह बात उस समय तक सही होती है जब तक कि कोई बिगाड़ने वाला तथ्य विघ्न न डाल दे। वास्तव में यह अच्छी से अच्छी गृहस्थियों में भी होता है।

—: • :—

अध्याय १४

चरित्र

(Character)

चरित्र की परिभाषा :—चरित्र की परिभाषा विभिन्न प्रकार से दी जा सकती है। इस अध्याय में हमारा अभिप्राय नैतिक चरित्र से है। प्रायः आधुनिक विचारधारा में इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में होता है। चरित्र को हम व्यक्तित्व का वह अंग कह सकते हैं जिसे सामाजिक मान्यता पूर्ण रूप से मिली हो। उदाहरणस्वरूप, ईमानदारी चरित्र का अंग है पर हास को हम चरित्र का अङ्ग नहीं मान सकते। एक ईमानदार व्यक्ति हमारे समाज द्वारा अत्यधिक प्रशंसित होता है जब कि बेईमान सर्वत्र तिरस्कृत होता है और वह कभी-कभी कारागार में भी बन्दी रहता है। परन्तु अत्यन्त विनोदप्रिय व्यक्ति के चरित्र को हम उच्च चरित्र नहीं कह सकते हैं भले ही उसका व्यक्तित्व मनोहारी क्यों न हो।

चरित्र के अनेकानेक अर्थ किये जा सकते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार चरित्र का संकेत व्यवहार की विश्वशनीयता से होता है। इस प्रकार से हिटलर एकचरित्र वाला व्यक्ति था क्योंकि उसका व्यवहार सर्वदा एक सा

रहा। वैलन्टाइन (Valentine) इसी विचार को मानते हैं। उन्हीं के शब्दों को हम यहाँ पर उद्धृत कर रहे हैं—

"The more a man ceases to be the creature of varying and often conflicting impulses, or to be dominated by the influence of persons with him at the moment, and the more he builds up a few main sentiments and especially one master sentiment which dominates his conduct, and the nearer he comes controlling all his actions by some ideal conduct or ideal of his own 'self', in short, the more stable and consistent he becomes, the more he reveal what we usually call 'Character'? This term implies essentially something relatively permanent: the organisation of the self as revealed in conduct— whether that conduct be on the whole morally good or bad.[1]

अर्थात् "जितना ही व्यक्ति परिवर्तनशील व प्रतिकूल भावना शून्य होगा, अथवा अपने चारों ओर रहने वाले व्यक्तियों से क्षण भर में प्रभावित नहीं होगा; जितना ही अधिक वह कुछ मुख्य स्थाईभावों, विशेषकर एक प्रधान अर्थात आत्म गौरव के स्थाईभाव जो उसके सम्पूर्ण व्यवहार को प्रभावित करे, का विकास अपने में कर ले; जितना ही अधिक वह अपने सम्पूर्ण कार्यों को व्यवहार के अथवा 'स्व' के आदर्श द्वारा नियंत्रित कर ले या संक्षेप में जितना ही वह स्थाई व्यवहार वाला हो सके उतना ही हम उसे चरित्र वाला व्यक्ति कहेंगे। वस्तुतः 'चरित्र' शब्द के अन्तर्गत निश्चय रूप से स्थाईपन की भावना निहित रहती है। अपने 'स्व' के सुसंगठित रूप को, चाहे वह अच्छा हो अथवा बुरा, व्यवहार में लक्षित करना ही चरित्र है।"

कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि चरित्र व्यक्ति का वास्तविक स्वरूप है। कुछ लोगों का कहना है कि चरित्र व्यक्ति के आन्तरिक विश्वासों का नाम है। कुछ मनोवैज्ञानिकों का यहाँ तक कहना है कि चरित्र किसी व्यक्ति विशेष का मनुष्य तथा परमात्मा के प्रति अभिवृति का दूसरा नाम है। इस प्रकार से चरित्र की भिन्न-भिन्न परिभाषायें हैं। व्यक्ति का चरित्र इस बात पर भी निर्भर करता है कि वह स्वाभाविक रूप से या अचेतन होकर अथवा ऐसे स्थानों पर जहाँ पर वह समझता है कि उसे कोई नहीं देख रहा है कैसा व्यवहार करता है।

---

१ Valentine, C. W.: Psychology & its bearing on Education; Methuen & Co. Ltd. London, 36 Essex Street Strand, W. C. 2. 1955, p. 169.

इन मनोवैज्ञानिकों ने चरित्र की पच्चीस विशेषताओं अथवा गुणों में अपना विश्वास प्रकट किया है परन्तु इनमें से सच्चाई, उत्तरदायित्व, दया और नैतिक साहस इन चार गुणों का प्रायः उल्लेख किया जाता है। जहाँ तक नैतिक चरित्र का प्रश्न है हम इसके अन्तर्गत पांच मुख्य गुणों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करेंगे और वे हैं सच्चाई, उत्तरदायित्व, भक्ति, नैतिक साहस तथा मित्रता की भावना। इनमें से प्रारंभिक चार को हम चरित्र की प्रधान विशेषतायें कहते हैं, जब कि मित्रता की भावना नैतिक तथा अनैतिक गुणों के मध्य में आती है। यदि व्यक्ति के चरित्र का अध्ययन इन सभी पाँचों गुणों के अन्तर्गत किया जाय तो वह उसके नैतिक चरित्र का सच्चा प्रतिनिधि होगा।

चरित्र को प्रभावित करने वाले प्रतिकारक

एक व्यक्ति का व्यवहार उसके सामाजिक वातावरण तथा उसके व्यक्तिगत् गुणों की उपज है। सामाजिक वातावरण के अन्तर्गत घर, पाठशाला, पास-पड़ोस, समुदाय आदि आते हैं। यही सब मिलकर बच्चे के व्यवहार को नियमित करते हैं।

व्यवहार की सम्पूर्ण नियमावली उपरोक्त साधनों द्वारा बच्चे तक पहुँचती है या यों कहना और भी अधिक उपयुक्त होगा कि इन साधनों द्वारा बच्चे को नियमावली का पालन करने के लिए विवश किया जाता है। इन्हीं से बच्चा यह भी सीखता है कि समाज उससे क्या आशा करता है, और इन्हीं के द्वारा ही बच्चे को उन आशाओं के अनुकूल या प्रतिकूल चलने पर पुरस्कार मिलता है अथवा वह दंड का भागी होता है। व्यक्ति के व्यक्तिगत गुण जैसे, उसकी व्यक्तिगत विशेषतायें, बुद्धि, जीवन के उद्देश्य, उसकी प्रेरणायें, उसकी रुचियाँ और विभिन्न परिस्थितियों में अपने को अनुकूलित करने की शक्ति आदि उसके चारित्रिक विकास में अत्यधिक प्रभाव डालती हैं। गोकि बच्चे के ये व्यक्तिगत गुण उसे पैतृक निधि के रूप में मिलते हैं फिर भी यह निश्चित है कि उसके प्रारंभिक सामाजिक अनुभवों का भी इनके भी निर्धारण में हाथ है।

नैतिक चरित्र का विकास

जैसा हम जानते हैं कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहता है—उसका समाज के साथ एक विशेष सम्बन्ध हो जाता है। अतएव अपने पड़ोसी के सुख सुविधा के लिए उसे अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों तथा प्रेरणाओं में सुधार करना पड़ता है। एक बहुत ही मोटा उदाहरण ले लीजिए। भूखा बच्चा खाने की मेज पर बैठते ही खाने के लिए लड़ाई झगड़ा करने लग जाता है। उसके लिए यह भी स्वाभाविक है कि थाली में बढ़िया चीज को

पहिले से ही उठा कर खाने लग जाय। परन्तु सुव्यवस्थित परिवार में वह यह तत्काल सीख लेता है कि उसे अपनी बारी आने तक धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करनी चाहिए या खाने के समय वह अपना ही न्यायोचित भाग ले। यह कहना अनुचित न होगा कि यदि हमें प्रारम्भ में शिक्षा न मिली हो या हमारी शिक्षा अनुचित हुई हो तो हमारा व्यवहार कुछ और ही होगा। शिक्षा का यह मुख्य कार्य होना चाहिये कि वह बच्चे को अपने को समाज के अनुकूल बनाने की शिक्षा दे। सामाजिक अनुकूलन (social adjustment) के प्रशिक्षण के सिद्धान्त को विभिन्न नामों द्वारा व्यक्त किया जाता है। कभी-कभी हम इसके बाह्य रूप पर बहुत बल देते हैं और कहते हैं कि हम बच्चे को सदाचार या शिष्टाचार सिखाते हैं। कभी इसके मानसिक पहलू पर बल दिया जाता है जब हम कहते हैं कि हम बच्चे को नैतिक प्रशिक्षण अथवा नैतिक चारित्रिक प्रशिक्षण देते हैं।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया कि चरित्र अर्जित व्यवहार है। यह चार सामान्य प्रकार से सीखा जाता है—

(२) पुरस्कार तथा दण्ड द्वारा भी चरित्र निर्माण होता है। सामाजिक वातावरण में ही नैतिक व्यवहार का मूल्य है क्योंकि यह निरन्तर सामाजिक प्रशंसा या तिरस्कार पर अवलम्बित है। यदि व्यक्ति कुछ नैतिक गुणों, या आदतों को सीख लेता है तो उसे घर, स्कूल, खेल मण्डली तथा सम्पूर्ण समाज में प्रशंसा मिलती है। अनैतिक आदतों या मूल्यों को प्रकट करने पर उसे दंड मिलता है। उसके पुरस्कारों का मूर्त रूप हो सकता है पर प्रायः उनका सामाजिक सम्मान या प्रतिष्ठा वाला ही रूप अधिक देखने को मिलता है। उसे शारीरिक दण्ड भी दिया जा सकता है पर सामाजिक बहिष्कार या समाज से तिरस्कार किसी दण्ड से कम नहीं है।

(२) अचेतन अनुकरण द्वारा चारित्रिक विकास में सहायता मिलती है। जब बच्चा कुछ बड़ा हो जाता है तो वह उन व्यक्तियों का अनुकरण करना सीखता है जिनको वह सम्मानित समझता है। सबसे पहिले वह अपने माता-पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यों का अनुकरण करता है। बच्चा शीघ्र ही यह भी सीख लेता है कि बड़े भाई तथा पिता जैसा व्यवहार करने पर उसकी प्रशंसा होती है। वह उनकी बातचीत के तरीके, उनके उठने बैठने के ढङ्ग तथा नैतिक व्यवहार आदि का अनुकरण करने लग जाता है।

(३) तर्क संगत विचार द्वारा भी चरित्र का विकास होता है। नैतिक परिस्थितियों के बारे में विचार करने और सम्भावित परिणामों द्वारा विभिन्न प्रकार के व्यवहारों की खोज से नैतिक व्यवहार विकसित होता है। उन

निष्कर्षों पर पहुँचने से, जिनसे भावी व्यवहार का नियंत्रण होगा, नैतिक व्यवहार सीखा जा सकता है। यदि इस विधि का बहुधा प्रयोग किया जाय तो बहुत से नैतिक नियमों का विकास होगा जो भावी जीवन की परिस्थितियों में लागू हो सकते हैं। परन्तु इसमें तार्किक यथार्थता को सुरक्षित रखने के लिए पथ प्रदर्शन की आवश्यकता होती है। बदलते हुये समाज में, जो प्रतिदिन व्यक्ति के सम्मुख नवीन नैतिक समस्यायें उत्पन्न करता है, यह नितान्त आवश्यक है कि व्यक्ति सामान्य नैतिक नियमों से परिचित हों और वह उन्हें विशिष्ट परिस्थितियों में बुद्धिमत्ता से प्रयोग करे।

(४) आदर्श 'स्व' (ideal self) के निर्माण द्वारा भी नैतिक चरित्र का विकास सम्भव है। यह सिद्धान्त अनुकरण के नियम से मिलता जुलता है। माता पिता में से किसी एक की प्रतिमा से 'आदर्श स्व' का प्रारम्भ होता है। आगे चलकर उसमें परिवार के अन्य सदस्यों, बाहर के प्रौढ़ लोगों, सिनेमा की चलती फिरती तस्वीरों के शानदार चरित्रों, हास्य पुस्तकों, समाचार पत्र के शीर्षकों, ऐतिहासिक या साहित्यिक व्यक्तियों की विशेषताओं का समावेश हो जाता है।

बच्चे के चारित्रिक विकास में माता पिता तथा अध्यापक का हाथ

स्थाई भावों को निश्चित दिशा में मोड़ने से बच्चे के नैतिक प्रशिक्षण की अधिकांश क्रिया पूरी हो जाती है। बच्चों में अध्यापक जिन गुणों का विकास करना चाहता है वह उन्हें प्रथम निश्चित कर लेता है और फिर उन्हीं गुणों के प्रति उनके स्थाई भावों का निर्माण करने लग जाता है।

दुर्भाग्यवश घर के वातावरण की अपेक्षा अध्यापक का बालक के चरित्र निर्माण में कम हाथ रहता है। अध्यापक के वचनों में बालक विश्वास कर सकता है परन्तु वह प्रतिदिन अपने घर में एक प्रकार के जीवन के प्रतिरूप का अभिनय देखता रहता है जो उसके चरित्र को प्रभावित करता है। घर के वातावरण से ही वह जीवन के विषय में अपने विचार बनाता है, परिवार के एक सदस्य की दूसरे सदस्य के प्रति सही अभिवृति समझता है तथा परिवार के बाह्य संसार के साथ सम्बन्धों आदि को सीखता है। यदि बच्चा ऐसे परिवार में है जिसमें परस्पर प्रेम और सहिष्णुता है, जहाँ माँ बाप ऋणी नहीं हैं, अपना कार्य उचित रीति से करते है तथा पड़ोसियों से सद्भावनापूर्ण व्यवहार करते हैं तो वहाँ बच्चा अच्छी नैतिक शिक्षा पायेगा और वह अपने जीवन में इन गुणों का समावेश करेगा। परन्तु यदि उसका जीवन अपराधियों के

मध्य में व्यतीत होता है, सच्चे व ईमानदार व्यक्तियों को वह दब्बू समझना सीखता है, प्रतिदिन के कार्य को करने में बुद्धि हीनता समझता है तो आगे चलकर इन विचारों में परिवर्तन लाना यदि असम्भव न होगा तो कठिन अवश्य होगा। यदि बच्चे ने एक बार भी जीवन के प्रति दृष्टिकोण स्थिर कर लिया है तो उसके परिवर्तन करने में उसे अनेक यातनाएं सहनी पड़ेंगीं। हम सहज में ही समझ सकते हैं कि जीवन में परिवर्तन लाने के पूर्व हमें विचारों में परिवर्तन लाना होगा। और विचारों में परिवर्तन तभी सम्भव होगा जब व्यक्ति अपने विचारों को असफल हुआ समझ ले और यह विश्वास तभी होगा जब उन विचारों से उत्पन्न क्रियाओं के दुष्परिणाम का व्यक्ति को अनुभव हो सके इसी स्थान पर दण्ड देना न्यायोचित सिद्ध किया जा सकता है।

प्रत्येक माता पिता—तथा अध्यापक का कर्तव्य है कि वह अपने सिद्धान्तों तथा विचारपूर्ण निर्णयों का बच्चे में हस्तान्तरण कर देवे। यदि उसके उपदेश व उदाहरण में समन्वय रहा तो बच्चा उन सभी बातों को अपना लेगा जो उसे बताई जावेंगीं। यदि बच्चे को उसके पालन पोषण के समय अच्छी बातें बताई गईं तो वह उन बातों तथा कार्यों को अपना लेगा और अन्ततः वे ही परिवार की परम्परा में परिणित हो जावेंगी। प्रत्येक श्रेणी के परिवार में समाज सेवा की परम्परा को उच्च स्थान दिया जाता है। कुछ ऐसे भी परिवार हैं जहाँ सभी सदस्य मिलकर या तो चित्रकारी करते हैं या किसी वाद्य को बजाते हैं। चरित्र की यह शिक्षा घरेलू जीवन का महत्वपूर्ण अङ्ग है।

स्कूल जीवन में ही सम्पूर्ण चरित्र का सङ्गठन संभव नहीं है। ज्यों ज्यों हम बढ़ते हैं स्थाई भावों का एक क्रम प्रधान बन जाता है और अन्य स्थाई भाव गौण बनकर उसके चारों ओर बद्ध रहते हैं। मैग्डूगल (McDougall) का विचार है कि आत्मगौरव का ही एक स्थाईभाव ऐसा है जो चरित्र संगठन कर सकता है परन्तु यह अक्षरशः सत्य नहीं है। कभी मनुष्य के जीवन में वैज्ञानिक रूप से कार्य करने का स्थाईभाव प्रधान होता है और वह जिज्ञासा की मूल प्रवृत्ति पर आधारित रहता है। यह निश्चित है कि किसी भी प्रधान स्थाईभाव से आत्मगौरव का स्थाईभाव जुड़ सकता है और यही कारण है कि हम अपने को कार्य द्वारा ही विजयी या असफल हुआ समझने लग जाते हैं परन्तु सम्पूर्ण संगठन आत्मगौरव के स्थाईभाव से ही नहीं बनता। वस्तुतः चरित्र की उच्चता प्रधान स्थाईभाव पर ही आधारित रहती है। एक कंजूस अपने धन के प्रति प्रेम तथा अरक्षित के भय से आक्रान्त रहता है और उसे सामाजिक तिरस्कार की भावना का पात्र बनना पड़ता है परन्तु मानवता का प्रेमी समाज को अपने द्वारा लाभान्वित कर सकता है।

इस अध्याय के आरम्भ में ही हम कह आये हैं कि नैतिक चरित्र की चार प्रमुख विशेषतायें हैं जिन पर प्राय: सभी का ध्यान जाता है । और वे हैं उत्तरदायित्व, सच्चाई, भक्ति, नैतिक साहस और मित्र भावना । अब हमें इस पर भी विचार कर लेना उचित होगा कि इनका विकास कैसे किया जाय। उत्तरदायित्व के स्तर का अधिकाधिक विकास तथा उनका प्रयोग विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में ही होता है। इसके लिए स्कूल, घर, और अपने व्यवसाय के प्रति कर्त्तव्यों को गम्भीरता से निभाना चाहिए। स्कूल मीटिंग में समय से पहुँचना, स्वीकृत कार्य को ईमानदारी से निभा देना तथा परिवार की आर्थिक सहायता करना आदि इसके लिये आवश्यक हैं और इन्हें सामान्य मान्यता प्राप्त हो चुकी है ।

सच्चाई के प्रत्यय को सम्पत्ति के उपयोग तथा सत्य बोलने के विचार द्वारा बढ़ाया जा सकता है । इसके लिए बिना आज्ञा के उधार लेना और परिवार के धन के छोटे से छोटे अंश को बिना आज्ञा खर्च करने की आदतों का सख्ती से तिरस्कार करना चाहिए । अपने स्वामी, मां-बाप तथा अध्यापक से सत्य बातें बताने के नियम को सर्वत्र तथा सामान्य रूप से अपनाया जाना चाहिए तथा उसका स्वागत किया जाना चाहिए ।

जहाँ तक भक्ति का प्रश्न आता है, यह कई प्रकार की हो सकती है— मित्र के प्रति भक्ति, परिवार के प्रति भक्ति, स्कूल और उसके कार्यवाहियों के प्रति भक्ति आदि । प्राय: स्कूल की भक्ति से हमारा अभिप्राय केवल स्कूल के नियमों के पालन तक ही सीमित रहता है—स्कूल के प्रीतिभोज में सम्मलित होना और स्कूल के कार्यों में भाग लेने को हम विशेष महत्व नहीं देते । स्कूल के प्रति भक्ति की परीक्षा इस बात से की जा सकती है कि बालक स्कूल की भलाई के लिये कितना सहयोग देता है, मित्रों द्वारा मजाक बनाये जाने पर भी वह स्कूल की कार्यवाहियों में कितना हाथ बटाता है तथा मित्रों की कटु आलोचना के बावजूद भी स्कूल के उचित कार्य के प्रति कहाँ तक दृढ़ रह सकता है आदि । नैतिक साहस का सबसे जबरदस्त पहलू अपने तथा दूसरे के अधिकारों की रक्षा करना है ।

मित्रता की भावना का सर्वग्राही सिद्धान्त है कि सबके प्रति सुन्दर, मनमोहक व्यवहार करना तथा अपने मृदुल व्यवहार, तथा प्रेम सनी वाणी से सर्वप्रिय होकर असंख्य मित्र बना लेना ।

माता पिता तथा अध्यापकों को बच्चे के अन्दर इन गुणों के अधिकाधिक विकास करने के तरीके खोज निकालने चाहिए ।

—: ० :—

अध्याय १५

मानसिक स्वास्थ्य

(Mental Hygiene)

प्रस्तावना—

वर्तमान युग में जो अन्तर्राष्ट्रिय आतति (International tension) दिखाई देती है उसका मुख्य कारण ही यह है कि हर राष्ट्र के कुछ व्यक्तियों में, जो कि उस राष्ट्र के एक अङ्ग हैं, असुरक्षितता की भावना, कुसमायोजन (maladjustment) तथा विरोध भाव (hositility) आ गया है। किसी व्यक्ति को उसकी चिन्ता या उसकी असुरक्षितता की भावना अभ्याक्रामी (aggressive) बना देती है। व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य का एक साँकेतिक चिन्ह यह है कि उस व्यक्ति को चिन्ता, भय, तथा असुरक्षितता की भावना नहीं हो। परन्तु यह भी सही है कि कुछ सीमा तक भय का बना रहना अच्छा है ताकि वह व्यक्ति सतर्क रहे। यह तब अच्छा है जब उस व्यक्ति को यह भी ज्ञान हो कि उसे क्या क्या सावधानियाँ लेनी चाहिये जिससे वह भय सरलता पूर्वक दूर किया जा सके। किसी व्यक्ति के भय, चिन्ता या असुरक्षितता के भाव को आज के समाज में सरलतापूर्वक दूर करना दुर्लभ है। कम से कम व्यक्ति अपने भय व चिन्ताओं को स्वयं तो दूर करने में असमर्थ ही रहता है।

उसके लिये आज के समाज में रोटी प्राप्त करना एक कठिन कार्य है। इसी-लिये वह किसी नेता की शरण लेता है चाहे वह धार्मिक नेता हो और चाहे राज-नैतिक। इस प्रकार भिन्न भिन्न नेताओं के भिन्न-भिन्न समूह होते हैं। यदि इन समूह के व्यक्तियों में चिन्ता व भग्न आदि की भावना न हो तो पूरे समाज में शान्ति रहेगी और वह समाज स्वस्थ कहलायेगा।

अध्यापक तथा बालक का मानसिक स्वास्थ्य---हमें देखना यह है कि मानसिक स्वास्थ्य के लिये अध्यापक को कौन-कौन सी बातें ध्यान में रखनी हैं। आजकल शिक्षक बालक को न केवल विषय सम्बन्धी ज्ञान ही देता है वरन वह उसके वैयक्तिक व्यवस्थापन (Personal adjustment) को भी ध्यान में रखता है और यह शिक्षा का एक आवश्यक उद्देश्य है। इतना अवश्य है कि अध्यापक बालक की विषय सम्बन्धी समस्या को तो सरलता से हल कर सकता है परन्तु वैयक्तिक व सामाजिक व्यवस्थापन सम्बन्धी समस्या को हल करना उसके लिये दुर्लभ होता है। पहली प्रकार की समस्याओं का हल अध्यापकों के पास रहता है परन्तु दूसरी प्रकार की समस्याओं का कोई एक विशेष हल नहीं होता। ऐसी स्थिति में अध्यापक को व्यक्तित्व सम्बन्धी मामलों में केवल प्रदर्शन (guide) करना चाहिये।

एक समय था जबकि अध्यापकों तथा मानसिक स्वास्थ्यविदों (Mental Hygienists) के विचारों में मतभेद था। अध्यापकों को विद्यार्थी के केवल उस व्यवहार से चिन्ता होती थी जो उसे विषय सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने में बाधा डालता था। मानसिक स्वास्थ्यविदों को बालक के उस व्यवहार से चिन्ता होती थी जो उसके वैयक्तिक व्यवस्थापन (personal adjustment) में बाधा डालता था। अध्यापक उस बालक के व्यवहार से चिन्तित होता था जो चोरी करता था या शरारती होता था या लिंग सम्बन्धी खेल (sex play) खेलता था। दूसरी ओर मानसिक स्वास्थ्यविदों को इन व्यवहारों से कोई चिन्ता नहीं होती थी। वे तो उस बालक के व्यवहार से चिन्तित होते थे जो अधीरता (nervousness), कायरता (timidity) आदि प्रकट करता था। आजकल लोगों की धारणा है कि अध्यापक को इन उक्त लिखित दोनों प्रकार के व्यवहारों की चिन्ता करनी चाहिये। ठीक है कि विषय सम्बन्धी ज्ञान देना उसका मुख्य कर्तव्य है परन्तु उसे बालक के उन व्यवहारों पर भी ध्यान देना चाहिये जो उसके वैयक्तिक व्यवस्थापन में तथा व्यक्तित्व के विकास में बाधक होते हैं।

अध्यापक को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि किसी प्रकार स्कूल के कार्यों से बालक के व्यक्तित्व विकास में बाधा न पड़े। यह कहना तो उचित

नहीं है कि भिन्न भिन्न विषयों को पढ़ने में तथा उनके परीक्षा सम्बन्धी परिणामों के अनुभवों से बालक के व्यक्तित्व विकास में रुकावट नहीं आनी चाहिये। ऐसा करना तो कठिन कार्य है, परन्तु फिर भी अध्यापक को ऐसी स्थिति में सावधानी से काम लेना चाहिये।

बालक को वास्तविकता का अनुभव करवाना—बालक के व्यक्तित्व विकास का एक अच्छा साधन यह भी है कि उसे वास्तविकता (reality)का अनुभव करने का अवसर प्रदान करना चाहिये। बिना अनुभव किये ही वास्तविकता को ग्रहण कर लेना भी अच्छा नहीं है इससे बालक के वैयक्तिक व्यवस्थापन में बाधा पड़ सकती है। हमें चाहिये कि बालक को ऐसे अवसर प्रदान करें जिससे वह वास्तविकता का साहस व धैर्यता के साथ अनुभव कर सके। यहाँ यह बता देना भी आवश्यक होगा कि वास्तविकता का अनुभव करना बालक के लिये कहीं एक दुर्लभ कार्य न हो अन्यथा बालक उसे छोड़ कर पीछे भगने का प्रयत्न करेगा। इतना तो अवश्य है कि वास्तविकता का आरम्भ में अनुभव करने में कुछ न कुछ कष्ट तो अवश्य होता है परन्तु हमें चाहिये कि बालक को उसे धैर्यता के साथ सहन करने का आदेश दें। अध्यापक को यह भी देख लेना चाहिये कि बालक को उसी वास्तविकता का अनुभव करवाना चाहिये जो उसके स्तर के अनुकूल हो। मान लीजिये एक छोटा बालक स्याही फैलाकर अपनी पुस्तकें व कपड़े बिगाड़ लेता है और आप उसे पीटना शुरू कर देते हैं। क्या इससे वह समझ सकता है कि स्याही फैलाना बुरा है। यदि बालक बहुत छोटा है तो उसे पीटना व्यर्थ है। बाद में चलकर वह बालक स्वयं ही यह समझ जावेगा कि स्याही फैलाने पर उसके मित्र उस पर हँसेंगे। वह यह स्वयं ही जान जावेगा कि यह कार्य अवांछनीय है। ऐसी चीजों के वास्तविक अनुभव करवाने के लिये हमें कुछ दिनों इन्तजार करना होगा। ऐसी चीजों का व्यवस्थापन (adjustment) बालक स्वयं ही एक निश्चित आयु में कर लेगा।

कई विधियों द्वारा अध्यापक विद्यार्थी को वास्तविकता का अनुभव करवा सकता है। एक तो यही है कि कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की जावें जिनसे बालक वास्तविकता का अनुभव कर सके। परन्तु ऐसा करने में यह विशेष ध्यान रखना होगा कि अनुभव करना बालक के लिये दुष्कर कार्य न हो। वास्तविकता का अनुभव एक तो उस वास्तविकता की प्रकृति (nature) पर निर्भर है और इससे भी अधिक निर्भर वह इस बात पर होता है कि वह बालक अनुभव करने के लिये कहाँ तक ठीक है। संसार के महायुद्ध के समय इस बात के उदाहरण मिलते हैं। महायुद्ध के समय इंगलैंड में कई बच्चों के माता पिता अपने

बच्चों को छोड़-छोड़ कर युद्ध में काम करने चले गये थे। बच्चों को दूर स्थानों में भेज दिया गया था। वहीं उनको शिक्षा आदि दी जाती थी। बच्चे कई अवसरों पर बमों की आवाजों से, जहाजों के शोरगुल से तथा आग की लपटों व मकानों के गिरने की आवाजों से डरते थे। उन्होंने इस प्रकार एक वास्तविकता का अनुभव किया। उनको अपने माता-पिता का स्नेह नहीं मिलता था। वे अपने को असुरक्षित परिस्थिति में पाते थे। ऐसी भयङ्कर परिस्थिति का सामना कई बालक धैर्यता पूर्वक व साहस के साथ कर पाये। कई साहसी बालकों ने अपने को ऐसी परिस्थिति से अनुकूलित (adapted) कर लिया और वे बालक अपने को असुरक्षित अनुभव नहीं करते थे। जो बालक अपने को अनुकूलित नहीं कर पाये उनमें असुरक्षितता की भावना उत्पन्न हो गई, वे भयभीत होते रहते थे और इससे उनके वैयक्तिक व्यवस्थापन में अधिक बाधा पड़ी। इससे हम यह परिणाम निकालते हैं कि प्रत्येक बालक में समान रूप से अनुकूलित करने की सामर्थ्य नहीं होती और दूसरा यह भी आवश्यक है कि बालकों को मानसिक स्वास्थ्य के लिये अपने वैयक्तिक व्यवस्थापन की आवश्यकता है। उनमें किसी भी प्रकार भय तथा असुरक्षितता की भावना नहीं आनी चाहिये।

बालकों में अध्यापक की व माता पिता की चिन्ताओं का संक्रमण :—

बालकों में असुरक्षितता की भावना का एक मुख्य कारण यह भी होता है कि कभी-कभी अध्यापकों में स्वयं ही असुरक्षितता की भावना तथा भय की भावना होती है। यदि किसी अध्यापक से यह कह दिया जाय कि जिस कक्षा को वह पढ़ायेगा उसमें अनुशासन की बहुत समस्या उसके सम्मुख आयेगी तो ऐसी स्थिति में अध्यापक स्वयं ही सोचता है कि ऐसी कक्षा को पढ़ाने के लिये वह असुरक्षित है। उसे ऐसी कक्षा को पढ़ाने के लिये भय भी पैदा हो जाता है। यदि अध्यापक निपुण नहीं है और उक्त लिखित भावनाएं उसमें घर कर गई हों तो स्वाभाविक ही है कि ये ही भावनाएं उसके विद्यार्थियों में भी आ जावेंगी। ऐसे अध्यापक के लिये यह कठिन कार्य हो जावेगा कि वह अपने बालकों में सुरक्षितता की भावना फैला कर सके। बालकों में चिन्ता व भय की भावना अपने माता पिता से भी जाग्रत हो सकती । माता पिता को चिन्तित देखकर वे स्वयं भी चिन्तित हो जाते हैं। स्टीफैन्स (Stephens) ने ठीक ही कहा है—"It is obvious that teacher's own insecurity may readily pervent him from giving the student a measure of security. Extreme lack of security and anxiety is desperatly infectious. Children, especially prove to be affected by anxiety in parents or older associates. Children facing severe ordeals will often react more to the attitude of the parents than to the actual

objective facts. Even in the face of a genuine tragedy such as the father's loss of a job or serious financial reverse, the children will be more affected by the anxiety of the parents than by the objective misfortune."[१] जिस प्रकार माता पिता की चिन्ता का संक्रामण (infection) उनके बच्चों में होता है। उसी प्रकार अध्यापक के चिन्ताओं का संक्रामण उसके विद्यार्थियों में होता है, जो अध्यापक इन्सपैक्टर के निरीक्षण से चिन्तित हो जाते हैं या जो अध्यापक पब्लिक इम्तहानों में अपने विद्यार्थियों के परिणामों से चिन्तित होते हैं वे चिन्ता की भावना से अपने विद्यार्थियों को मुक्त करने में असमर्थ रहते हैं।

बालकों में हीनता का भाव :—जिन बालकों में असुरक्षिता की भावना होती है या जो बालक दूसरों द्वारा अस्वीकृत (rejected) किये जाते हैं उनके व्यवहार में एक विशेष प्रकार का परिवर्तन दीखता है। ऐसे बालकों में इस बात का भय पैदा हो जाता है कि समाज उनको स्वीकार नहीं करेगा या उनके अन्दर बहुत कमी है। इस प्रकार से इन बालकों में हीनता (inferiority) का भाव उत्पन्न हो जाता है। बेगबी (Bagby) ने कहा है कि "Inferiority complexs are fear reactions to social disapproval or selfcriticism. Fear reactions become attached to social situations involving attitudes of disapproval. There arises a sense of personal inferiority'[२]

जिन बालकों में हीनता का भाव उत्पन्न हो जाता है वे सदा अकेले रहने का प्रयत्न करते हैं। उनको अकेले में काम करना अच्छा लगता है। ऐसे बालक हूष प्रकृति (sensitive nature) के होते हैं। यदि कोई उनका अभिस्ताव (commend) करता है तो वे ओछेपन का सा व्यवहार करने लगते हैं। वे बात को इस प्रकार घुमाकर करते हैं जिससे बात करने वाला उनकी तारीफ करे। यदि कोई उनकी समालोचना भी करता है तो वे उसको ऐसा अर्थ देते हैं जिससे वे उसको तारीफ समझने लगें। दूसरों के कार्यों तथा प्रयोजन (motive) में उन्हें सन्देह होता है। वे कभी प्रतियोगिता (Competetion) सम्बन्धी कार्यों में भाग नहीं लेते।

जब बालक में हीनता की भावना अधिक सीमा तक बढ़ जाती है तो उसको दूर करना तो कठिन कार्य है। हाँ इतना अवश्य है कि उस बालक को

---

१. Spephens, J. M. : 'Educational Psychology' Constable and Co. Ltd., London, W. C. 2, 1956, p. 644.

२. Bagby, E. : 'The Psychology of Personality'; Henry Holt, N. Y. 1926.

यह समझोया जाय कि उसमें हीनता की भावना आगई है और उसे दूर करना चाहिये। इसके लिये यह आवश्यक है कि उन लक्षणों की खोज की जावे जिनके कारण वह हीनता की भावना उत्पन्न हुई है। इससे भी यह तो नहीं है कि उस बालक से हीनता की भावना पूर्ण रूप से दूर हो जावेगी परन्तु कम अवश्य हो जावेगी और वह समाज के सामने अपने को आकुलता (embarrassment) से बचा सकेगा।

बालक की आधारभूत आवश्यकताएँ (Primitive needs of the child) :—शिक्षक के लिये इस बात की भी परम आवश्यकता है कि बालक की आवश्यकताओं को भली भांति समझ सके। बालक की कुछ आवश्यकताएँ आधारभूत होती हैं जिन्हें निम्नश्रेणी में रखा जासकता है तथा अन्य आवश्यकताओं को उच्चश्रेणी में रखा जा सकता है।यदि बालक की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति पूर्ण रूप से नहीं हुई तो उसकी उच्च श्रेणी की आवश्यकताओं की पूर्ति दुर्लभ हो जावेगी। मासलो (Maslow) की आवश्यकता उच्चोच्च्य परम्परा(hierarchy of need) के अनुसार दैहिक आवश्यकताएँ (physiological needs) आधारभूत आवश्यकताएँ हैं। इसके बाद भय (danger) तथा दर्द की आवश्यकता, फिर स्नेह की आवश्यकता, फिर आत्मनिष्ठा या आत्म गौरव (Self-esteem) की आवश्यकता तथा अन्त में आत्म व्यक्त करने की (Self-expression) की आवश्यकता आती है। यदि हम किसी बालक की भय तथा दर्द की आवश्यकता पूर्ति करना चाहें तो हमें यह विश्वास होना चाहिये कि उसकी कोई आधारभूत आवश्यकता पूर्ति में कमी नहीं है जैसे—वह भूखा नही है या थका नहीं है आदि। एक बालक आत्मनिष्ठा की आवश्यकता को सहन कर सकता है यदि उसके स्नेह की आवश्यकता की पूर्ति हो चुकी हो। कहने का तात्पर्य यह है कि चाहे हम मासलो साहब की आवश्यकता उच्चोच्च्य परम्परा मानें या अपनी स्वयं बनाएँ हमें यह निश्चित रूप से ज्ञात होना चाहिये कि किसी बालक की उच्च श्रेणी की आवश्यकता पूर्ति से पहले उससे निम्नश्रेणी की आवश्यकता की पूर्ति हो जानी चाहिये।

आत्मनिष्ठा की आवश्यकता की पूर्ति के अभाव से बालकों के व्यवहार में अनेकों प्रकार के अवांछनीय परिवर्तन आजाते हैं। इस पुस्तक के ग्यारवे अध्याय में उनका वर्णन किया जाचुका है। वहाँ हमने देखा कि किस प्रकार अपनी आत्मनिष्ठा (Self-esteem) की रक्षा के लिये बच्चे नाना प्रकार के प्रतिरक्षा यन्त्र-न्यास (denfence mechanism) अपनाते हैं जिनको हम प्रक्षेप (Projection), न्याय संगत सिद्ध करना (rationalisation), अभिज्ञान (Identification), अवदमन (repression), समतोलन (Compensation), कल्पना

(Fantasy), शोधन (Sublimation) आदि कहते हैं। इनको फिर से यहाँ वर्णन करना व्यर्थ है।

आवश्यकताओं की पूर्ति कुछ सीमा तक इस प्रकार से भी होती है कि यदि हम उनको अभिव्यक्त कर सकें। इससे उस आवश्यकता के बल में कुछ न कुछ कमी हो सकती है। मान लीजिये हमें किसी जानवर को देखकर डर लगा हो तो हम दूसरों से अपने भय की कहानी कह-कह कर अपने भय को कम कर सकते हैं। क्या यह सत्य नहीं है कि अपने दुःखों को दूसरों से कह-कह कर हम अपने दुःखों को कम करते हैं? कभी रोकर भी दुख कम किये जाते हैं। आपने सुना होगा यदि अपने किसी विशेष सम्बन्धी की मृत्यु पर किसी व्यक्ति को असहनीय दुःख होता है तो उसे रुलाई नहीं आती। ऐसे अवसर पर यह प्रयत्न किया जाता है कि किसी प्रकार वह दुःखी व्यक्ति रोकर अपने दुःख को अभिव्यक्त कर सके और उसे कम कर सके।

अध्यापक को यह चाहिये कि यदि विद्यार्थी अपनी कुछ आवश्यकताओं को किसी दूसरे रूप में अभिव्यक्त कर रहा है तो कुछ सीमा तक उसे सहन करे। कभी-कभी तो कुछ स्वाभाविक रूप से वह अपनी आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। यदि बालक को आपने पीटा तो उसे दर्द होगा और वह रोकर उसे अभिव्यक्त करेगा। परन्तु स्वाभाविक विधियों के अभाव में बालक दूसरे रूप से जैसे—शोधन (Sublimation) द्वारा भी अपनी आवश्यकता को अभिव्यक्त करता है। लिंग सम्बन्धी आवश्यकता की अभिव्यक्ति किसी बच्चे के गानों, नृत्यों या सिनेमा देखने में होती हैं। इन चीजों से वह अपनी इस आवश्यकता को कम कर पाता है।

प्रतियोगिता के प्रत्याबल से बचाव

(Protection against undue Stress of Competetion)

शिक्षक को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि बालकों में प्रतियोगिता के कारण अधिक दबाब न पड़े। एक बालक जो प्रतियोगिता में बार-बार अनुत्तीर्ण होता है उसकी आत्म-प्रतिष्ठा की हानि होती है जो बालक के लिये असहनीय होती है। उन बालकों को तो प्रतियोगिता में भाग लेने से बचना ही चाहिये जो स्वयं ही आत्म-प्रतिष्ठा या आत्मगौरव की हानि के भाव से ग्रसित हों। प्रतियोगिता को इतना कठिन कभी न बनाया जाय जिससे अनेकों बालकों की आत्म-प्रतिष्ठा की हानि हो जावे।

असफलता की समस्या (The Problem of failure)—असफलता बालक के वैयक्तिक व्यवस्थान में बहुत अधिक बाधा डालती है। कुछ मनोवैज्ञानिकों की तो यह तक धारणा है कि यदि किसी विद्यार्थी को किसी कक्षा में रोक

दिया जावे तो उससे उसे आगे कोई लाभ नहीं होता। खैर यह तो वाद-विवाद का विषय हो सकता है। सब लोग इस बात का समर्थन नहीं करेंगे। भग्नाश (frustration) के चिन्ह बालक में तब स्पष्ट दिखाई देते हैं जब कि वह सफल होने की आशा करता है परन्तु अभाग्यवश असफल हो जाता है। इस प्रकार की असफलता से लोगों के व्यवहार में अवांछनीय परिवर्तन आ जाता है। कभी-कभी जो विद्यार्थी बार-बार फेल हो जाते हैं वे छोटे बच्चों का सा व्यवहार करने लगते हैं। कभी-कभी तो असफलता के दुःख की भावना बालक के लिये असहनीय हो जाती है। इससे बालकों के वैयक्तिक व मानसिक व्यवस्थापन (mental adjustment) में बाधा पड़ती है। इन्हीं में से वे बालक होते हैं जो असफल होने पर आत्महत्या कर लेते हैं।

बालक की रक्षा की भी सीमा होनी चाहिये—यह ठीक है कि बालकों को ऐसे अनुभवों के कठोर आघात से बचाया जाय जिससे उनके वैयक्तिक व मानसिक व्यवस्थापन में बाधा पड़ती है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्हें अरुचिकर वास्तविकता (unpleasant reality) का अनुभव ही न कराया जाय। हमारा तो ध्येय यह होना चाहिये कि बालक में धीरे-धीरे इस बात का अभ्यास डालें कि वह अरुचिकर वास्तविकता के अनुभव से पीछे न हटे। ऐसा करने में हमें आरम्भ में सहायता करनी होगी परन्तु धीरे-धीरे हम बालक को ऐसा करने के लिये अकेला छोड़ सकते हैं।

सामाजिक मान्यता (Social acceptance)

इस बात का ध्यान भी रखना आवश्यक है कि बालकों को उनके उचित कार्यों के लिये सामाजिक मान्यता मिलनी चाहिये। इससे उसे सन्तोष होता है। इससे एकता की भावना में वृद्धि होती है। स्कूलों में पाठवाह्य कार्यों में बालकों को अच्छे कार्यों के लिये मान्यता देना उनकी एकता की भावना को बढ़ावा देता है। अध्यापकों को इस बात पर अत्यन्त ध्यान देना चाहिये।

अनुशासन तथा मानसिक स्वास्थ्य (Discipline and mental Hygiene)-कुछ लोग बालकों के कक्षा में अनुशासन से यह समझते हैं कि बालक कक्षा में चुपचाप शान्तिपूर्वक बैठे रहें। किसी प्रकार का शोर गुल न हो। क्रियाशीलता तो बालकों की प्रकृति है। हमें उस स्कूल का अनुशासन उच्चकोटि का नहीं समझना चाहिये जहाँ कि बच्चे शोरगुल न मचावें और चुपचाप अकेले पढ़ते रहें या अकेले टहलते रहें। प्रोफेसर हावर्ड लेन (Professor Howard Lane) ने एक बार कहा था "If I were rating schools I would give the highest ratings to those in which one could not tell at a

given time whether or not the pupils were in recess.'' बालकों को तो मिलकर कार्य करने की आदत डालनी चाहिये और ऐसा करने में निश्चय है कि वे चुपचाप नहीं रह सकते। बालक एक साथ खेलना व काम करना पसन्द करते हैं। एक अच्छा अध्यापक बालकों की इस सामाजिक प्रवृत्ति को उनको नये नये कार्यों को सीखने में प्रयोग कर सकता है। सामाजिक क्रियाओं में बालक दूसरों की सहायता करना सीखता है और दूसरों से सहायता लेना भी सीखता है। उसे ऐसी क्रियाओं में उत्तरदायित्व को संभालने के अवसर भी मिलते हैं और ये चीजें बालक के मानसिक स्वास्थ्य के लिये लाभप्रद सिद्ध होती हैं। खेल के मैदान में इस प्रकार के अनेकों उदाहरण मिलते हैं। बच्चे खेल करने में एक दूसरे को सहायता देना सीखते हैं और उनमें आपसी भावना भी दृढ़ होती जाती है। खेल करने में बालक बातचीत भी करते हैं। इसका यह अर्थ तो नहीं हुआ कि उनमें अनुशासन की कमी है। वास्तविक अनुशासन तो वह है जहाँ बच्चे मिल-जुलकर काम करते हैं और एक दूसरे को सहायता देने के लिये तत्पर रहते हैं। इसी प्रकार के अनुशासन से सामाजिक लाभ हो सकता है क्योंकि इस प्रकार के अनुशासन में पले हुए बच्चे आगे चलकर समाज के कल्याण में अपना हित समझते हैं।

स्कूल तथा घर में बालक के मानसिक स्वास्थ्य के लिये सम्बन्ध

हमें यह नहीं सोचना चाहिये कि बालक के मानसिक स्वास्थ्य का पूरा भार या तो घर के ऊपर है और या स्कूल के ऊपर। यह कार्य तो स्कूल तथा घर को मिलकर ही सम्भव है। माता-पिता बालक के पूर्व विकास के बारे में अधिक ज्यादा जानकारी रखते हैं। वे इन बातों को बालक के अध्यापक को बता सकते हैं। अध्यापक को बाल्य मनोविज्ञान में प्रशिक्षित होना चाहिये ताकि वह बालक की मनोविज्ञान सम्बन्धी बातें मालूम कर सके। अध्यापक यह अच्छी तरह समझ सकता है कि बालक की बुद्धि का स्तर क्या है और उसकी अभिवृति किसी अन्य बालक के प्रति क्या है। अध्यापक बालक को नवीन अनुभव करवाकर उसकी कमी ज्ञात कर सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बालक के विकास में घर तथा स्कूल दोनों ही का सम्बन्ध अनिवार्य है। मानलीजिये एक अध्यापक किसी बालक को पढ़ाने की नई रीति अपनाता है। हो सकता है बालक के माता पिता उस रीति को अच्छा न समझें क्योंकि उसके कारण बालक को घर में ज्यादा व्यस्त रहना पड़ता हो। इस

प्रकार की बातों से माता पिता में असन्तोष पैदा होता है। और बालक ठीक से उन्नति नहीं कर पाता। ऐसी अवस्था में माता पिता का अध्यापक के साथ सम्बन्ध अनिवार्य हो जाता है। कभी-कभी हम देखते हैं कि घर में माता की बीमारी के कारण दुखी होकर बालक स्कूल में पढ़ने में जी चुराता है। यदि अध्यापक को उसके माता पिता की विमारी के बारे में जानकारी नहीं हैं तो वह उस बालक के जी चुराने या असहयोग के कारण को नहीं समझ सकता।

यदि हमें बालकों के मानसिक स्वास्थ्य में सही ध्यान देना है तो माता पिता तथा अध्यापकों के सम्बन्धों को दृढ़ बनाना होगा जिससे वे बालकों के घर तथा स्कूल सम्बन्धी कमियों को समझ सकें और उन्हें मिलकर दूर करने का प्रयत्न कर सकें।

—: ० :—

Bibliography

1. Allport, G. W. : 'Personality : A psychological interpret-tion'; Holt, New York, 1937.
2. Anderson, H. H. and Anderson, G. L. : 'An Introduction to projective Techniques'; Prentice Hall, New York.
3. Anastasi, A. : 'Psychological Testing'; M/S Macmillan and Co, New york, 1954.
4. Bhatia, C. M. : Performance test of Intelligence undcr Indian conditions' Geoffery cumberlege,; Oxford University Press,1954.
5. Ballard, P. B. : 'Group test of Intelligence'; University of London Press, London.
6. Binet & Simon : 'The Development of Intelligence in children' (Kites' translation, Training School, Vineland, New Jersey, 1916.)
7. Burt, C. : 'Evidence for the concept of Intelligence'; B. J. of Educ. Psycho., Nov. 1955.
8. Burt, C. : Is the Doctrine of Instinct Dead ? Conclusion —B. J. Educ. Psycho. XIII, Part 1, 1943.

9. Collin, M. and Drever, J. : Psychology and Practical life'; University of London Press Ltd., London E. C. L.

10. Cattle, R. B. : 'A Guide to Mental Testing'; University of London Press, London, 1936.

11. Dorothy, M. A. and Donald, G. P. : 'Measured Characteristics of Clerical workers'; Minneapolis : University of Minnesota Press, 1934.

12. Eysenck, H.J. : 'The Dimensions of Personality', Kegan Paul, London.

13. Eysenck, H. J. : 'The structure of Personality'; Methuen, London.

14. Fleming, C. M. : 'Social Psychology of Education'; Reutledge; Kegan Paul, London.

15. Eleming, C, M. : 'Adolescence'; Routledge, Kegan Paul, London.

16. Green, H. A. : "Measurement and Evaluation in Secondary School'; Longman, Green & Co, New York 1955.

17. Hilgard, E. R. : 'Theories of Learning'; Appleton century, New york.

18- Hull, C. L. : 'Principles of Behaviour'; Appleton century, N. Y.

19. James, W. : 'Talks to teachers', Longman London, 1910

20. James, W. : 'Principles of Psychology'; vol. 1 Holt, New york.

21. Jung, C. G. : 'Psychological Types', Harcourt, New york.

22. Katz, D. : 'Gestalt Psychology, Methuen, London.

23. Knight, R. : 'Intelligence and Intelligence Tests'; Methuen, London, 1932.

24. Koffka, K. : Principles of Gestalt Psychology' Harcourt Brace, New york. 1935.

25. Kohler, W. : 'Gestalt Psychology'; Liveright, New york.

26. Lewin, K. : 'A Dynamic theory of Personality'; McGraw-Hill, New york.

27. Miller, N. E. and Dollard, J. : 'social learning and Imitation', Kegan Paul, London.

28. McDougall, W. : 'An outline of Psychology', Methuen, London,

29. McDougall, W. : 'Introduction to Psychology', Methuen, London.

30. Munn, N. L. : 'Psychology'; Houghton Mifflin, Boston

31. Nancy Catty : 'The theory and Practice of Education'; Methuen, London, 1954.

32. Nunn, T. P. : 'Education, Its Data and First Principles'; Edward Arnold and co., London, 1949.

33. Owen, R. : 'New view of Society', 1813, Reprinted in Everyman's Library, 1927.

34. Pavlov, I. P. : 'Lectures on conditioned Reflexes'; Oxford university Press, London.

35. Palmer, G. H. : 'The teacher', Boston, Houghton Mifflin Co., 1909.

36. Peel, E. A. : 'Psychological Basis of Education', Oliver and Boyd, London, 1956.

37. Rawat, D. S. : 'Experimental Psychology', Vinod Pustak Mandir, Hospital Road, Agra, 1960.

38. Ross, J. M. : 'Ground work of Educational Psychology; George G. Harrap & Co. London, 1947.

39. Rawat, D. S. : 'Educational Maasurement, its principles History, and application'; Gaya Prasad and sons, Agra, 1959.

40. Rawat, D. S. : 'a comparative study of the standard of General Science in certain Secondary Schools in England and in U. P. (India) for pupils of a'chosen age Range', M. A. Education Thesis, Birmingham University, 1957.

41. Sherif, M. and Cantril, H. : 'Psychology of Ego-Involvements'; Wiley New york.

42. Spearman, C. : 'The abilities of man'; Macmilllan, London.

43. Stephens, J. M. : 'Educational Psychology'; constable and Co. Ltd., London, W. c. 2, 1956.

44. Thomson, G. H. : 'The Factorial Analysis of Human Abilities'; University of London Press, London.

45. Valentine, C. W. : 'Psychology and its Bearing on Education' Methuen, London, 1955.

46. Vernon, P. E. : 'Personality tests and asse ssments', Methuen, London.

47. Watson, J. B. : 'Behaviourism', Kegan Paul, London.

48. Wood worth, R. S. : 'Experimental Psychology'; Henry Holt, New york, 1938.

59. Woodrow, H. : 'The Effect of Type of Training upon Transference', J. Educ. Psychol., 1927.

50. Woodworth, R. S. : 'Psychology', Methuen, 1949.

अंग्रेजी से हिन्दी में परिभाषिक शब्दों की सूची
तथा
अनुक्रमणिका

E

F

G

H

I